जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय

लाडनूँ - 341 306 (राजस्थान) भारत

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

स्नातक (बी.ए.) तृतीय वर्ष

द्वितीय पत्र

विषय - प्रेक्षाध्यान : व्यक्तित्व विकास

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

© जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय,
लाडनूँ – 341 306 (राजस्थान)

लेखक :
मुनि धर्मेश कुमार

संस्करण : 2013

मुद्रित प्रतियाँ : 500

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ संख्या
इकाई –1 व्यक्तित्व विकास : एक परिचय		
1.	व्यक्तित्व : अर्थ और परिभाषाएं	01 – 11
2.	व्यक्तित्व के निर्धारक तत्त्व	12 – 26
3.	व्यक्तित्व विकास : अर्थ और स्वरूप	27 – 37
4.	व्यक्तित्व : प्रकार, संगठन–विघटन एवं समायोजन	38 – 47
इकाई –2 उन्नत व्यक्तित्व का विकास और प्रेक्षाध्यान		
5.	व्यक्तित्व विकास और स्व–प्रबन्धन	48 – 56
6.	प्रेक्षाध्यान और अखण्ड व्यक्तित्व विकास	57 – 66
7.	व्यसन की समस्या : प्रेक्षा का समाधान	67 – 75
8.	उन्नत व्यक्तित्व और चारित्रिक विकास	76 – 90
इकाई –3 सफल व्यक्तित्व का विकास		
9.	लक्ष्य निर्माण और लक्ष्य प्राप्ति	91 – 103
10.	सकारात्मक दृष्टिकोण और आत्म विश्वास	104 – 114
11.	समय प्रबन्धन	115 – 121
12.	लेखन क्षमता का विकास	122 – 129
इकाई –4 स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास		
13.	स्वास्थ्य प्रबन्धन	130 – 138
14.	आहार प्रबन्धन और स्वास्थ्य रक्षा	139 – 150
15.	तनाव प्रबन्धन	151 – 161
16.	भावात्मक विकास और भावात्मक स्वास्थ्य	162 – 171
इकाई –5 सक्षम व्यक्तित्व का विकास		
17.	स्मृति विकास	172 – 180
18.	उच्च मानसिक शक्तियों का विकास	181 – 189
19.	कार्यक्षमता का विकास	190 – 198
20-	अभिव्यक्ति कौशल का विकास	199 – 211

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 1 व्यक्तित्व – विकास : एक परिचय

पाठ – 1 व्यक्तित्व : अर्थ और परिभाषाएँ

रूपरेखा

1.0.0 उद्देश्य
1.1.0 भूमिका
1.2.0 व्यक्तित्व का अध्ययन
1.2.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
1.2.2 व्यक्तित्व सिद्धान्त
1.2.3 भारतीय व्यक्तित्व सिद्धान्त
1.2.4 पश्चिम व्यक्तित्व सिद्धान्त
1.2.5 निष्कर्ष
1.3.0 व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषाएं
1.3.1 प्राचीन परिभाषा
1.3.2 लोकप्रिय परिभाषा
1.4.0 मनोवैज्ञानिक परिभाषाएं
1.4.1 आलपोर्ट के अनुसार
1.4.2 आइजेन्क के अनुसार
1.4.3 चाइल्ड के अनुसार
1.4.4 वाल्टर मिसकेल के अनुसार
1.4.5 बेरोन के अनुसार
1.4.6 श्रीवास्तव डी.एन. के अनुसार
1.5.0 परिभाषाओं के प्रकार
1.5.1 संग्राही
1.5.2 समाकलनात्मक
1.5.3 सोपानित
1.5.4 समायोजन आधारित
1.6.0 व्यक्तित्व का अर्थ
1.6.1 मनोदैहिक तन्त्र
1.6.2 गत्यात्मक संघटन
1.6.3 संगतता
1.6.4 अनन्य समायोजन
1.7.0 सारांश
1.8.0 अभ्यास प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.0.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों ! आप स्नातक तृतीय वर्ष के द्वितीय पत्र ''प्रेक्षाध्यान : व्यक्तित्व विकास'' का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस पत्र का उद्देश्य व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं के विकास में प्रेक्षाध्यान के महत्व व उपयोगिता को उजागर करना है। व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले अनेक कारक तत्व हैं। उसमें से व्यक्ति के अपने अधीन, विशेषकर मनोवैज्ञानिक कारक तत्व होते हैं। उनका विकास चाहे तो व्यक्ति स्वयं कर सकता है। इससे वह अपने व्यक्तित्व को प्रभावशाली एवं उन्नत बना सकता है। मनोवैज्ञानिक कारक तत्वों के विकास में प्रेक्षाध्यान की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः प्रस्तुत पत्र में हम इसका विस्तार से अध्ययन करेंगे।

प्रस्तुत पत्र की प्रथम इकाई का उद्देश्य व्यक्तित्व का सामान्य परिचय कराना है। इसके अन्तर्गत आपको व्यक्तित्व के अध्ययन का महत्व, उसका संक्षिप्त इतिहास, अर्थ एवं कारक तत्वों से परिचित करना है। अतः इसके प्रथम पाठ के अध्ययन के पश्चात् आप –

1. व्यक्तित्व के अध्ययन के महत्व को जान सकेंगे,
2. व्यक्तित्व – अध्ययन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को संक्षेप में समझ सकेंगे,
3. विभिन्न दृष्टियों से की गई व्यक्तित्व की परिभाषाओं को समझ सकेंगे,
4. व्यक्तित्व के अर्थ एवं स्वरूप को निर्धारित कर सकेंगे।

1.1.0 भूमिका

दुनिया में ऐसे व्यक्तित्व वाले लोग भी होते हैं जिनका जीवन असफलता, असंतोष, अप्रसन्नता और सामाजिक अस्वीकृति से भरा हुआ होता है। आधुनिक युग में खुशमिजाज व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का बहुत महत्व है। उसे अधिकांश लोग पसंद करते हैं। वह सभी के साथ समायोजित होने में सफल रहता है। उनके जीवन में सफलता, खुशियाँ और सामाजिक स्वीकृति जब चाहे तब मिलती रहती है। ये गुण और विशेषताएं जो भी व्यक्ति चाहे वह इन्हें बहुत कुछ अर्जित कर सकता है। यह भी तब ही संभव है, जब वह इसके लिए अन्तर्मन से सतत प्रयास करे। आज किशोरावस्था से युवावस्था तक के व्यक्तियों में अपने व्यक्तित्व को उन्नत करने की बहुत चाह रहती है। प्रत्येक आयु वर्ग के स्त्री–पुरुष अपने व्यक्तित्व को बेहतर बनाना पसंद करते हैं और वे इस दिशा में प्रयास भी करते हैं।

आज के युग में प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है। सामाजिक और पारिवारिक जीवन जटिल हो रहा है। सभी लोग यह मानते हैं कि अच्छा और प्रभावशाली व्यक्तित्व होने पर व्यक्ति अनेक उपलब्धियां प्राप्त कर सकता है। उनकी उपलब्धियों के पीछे उनके व्यक्तित्व का बहुत हाथ रहता है। लोग यह भी विश्वास करते हैं कि आज उनका जो व्यक्तित्व है उसको बदला जा सकता है, उन्नत किया जा सकता है। अतः वे आज टी.वी., अखबार या पत्रिकाओं के माध्यम से उन तरीकों की खोज करते रहते हैं जिनके द्वारा व्यक्तित्व को ***बदला*** और ***उन्नत*** किया जा सकता है। इस संबंध में वह अपने परिचितों और मित्रों से भी विचार–विमर्श करता है। कुछ लोग व्यक्तित्व को जन्मजात उपहार या ईश्वरीय उपहार भी मानते हैं। ऐसे व्यक्ति व्यक्तित्व के परिवर्तन और उन्नत होने में अपेक्षाकृत कम विश्वास करते हैं।

1.2.0 व्यक्तित्व का अध्ययन

व्यक्ति की सम्यक् जानकारी के लिए व्यक्तित्व का अध्ययन बहुत आवश्यक है। इससे व्यक्ति स्वयं अपने व्यक्तित्व को उन्नत बना सकता है। आधुनिक युग में मनोविज्ञान ने इस दिशा में बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। अतीत में भी व्यक्तित्व के अध्ययन को बहुत महत्व दिया जाता रहा है।

1.2.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्यक्तित्व को जानने में रूचि हजारों साल से विद्वानों और जनमानस में रही है। भारतीय चिन्तनधारा में मानव व्यक्तित्व के सिद्धान्तों का विवेचन ***वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग, जैन आगम और बौद्ध पिटक*** में विस्तृत रूप से हुआ है। यहाँ मुख्यतः व्यक्तित्व को जीवात्मा कहा गया है। यह संप्रत्यय (concept) व्यक्तित्व के मनोदेहिक संरचना से सम्बद्ध न होकर उसके नैतिक एवं आध्यात्मिक पक्ष से संबंधित है।

इसी प्रकार पश्चिम में भी व्यक्तित्व सिद्धान्त का इतिहास पुराना रहा है। इसकी उत्पत्ति पौराणिक, ग्रीक, जैसे हिप्पोक्रेट्स, प्लेटो तथा अरस्तु द्वारा मानव स्वभाव एवं व्यवहार के बारे में व्यक्त किये गये विचारों से हुई है। आधुनिक व्यक्तित्व सिद्धान्त में इन महान पौराणिक सिद्धान्तों एवं आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के विचारों का प्रतिबिम्ब मिलता है तथापि आधुनिक मनोविज्ञान में व्यक्तित्व संबंधी मनोवैज्ञानिक अध्ययनों का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। यह इतिहास मात्र एक शताब्दी का इतिहास है।

व्यक्तित्व का अध्ययन गूढ़ एवं जटिल होने से इसका अध्ययन प्रयोगशाला में करना कम संभव रहा। अतः प्रारम्भ में मनोवैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर कम ही गया। इसमें भी प्रारम्भ में मनोवैज्ञानिकों का ध्यान प्रत्यक्षीकरण अधिगम संबंधी अध्ययनों पर अधिक रहा है। व्यक्त्वि अध्ययन के क्षेत्र में सर्वप्रथम व्यवस्थित अध्ययन मनोचिकित्साशास्त्रियों द्वारा प्रारम्भ किया गया। ***फ्रायड का इस दिशा में योगदान अधिक महत्वपूर्ण और लोकप्रिय रहा***। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में व्यक्तित्व संबंधी अध्ययनों का अर्थ केवल व्यक्तित्व इतिहास (Case History) से था। इसके बाद व्यक्तित्व के अध्ययनों में इस विषय की खोज की जाने लगी जिससे व्यक्तित्व के विकास पर प्रकाश डाला जा सके। यह अध्ययन 1930 तक चलते रहे। उसके बाद व्यक्तित्व निर्माण में सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों को अधिक महत्व दिया जाने लगा। स्टैग्नर, आलपोर्ट, मरे के योगदान ने मनोवैज्ञानिकों का ध्यान व्यक्तित्व की ओर आकर्षित किया। वर्तमान में व्यक्तित्व के जो सिद्धान्त प्रचलित हैं उनमें आलपोर्ट जैसे अनेक मनोवैज्ञानिकों (G.W. Allport 1937, 1961 E.G. Borning, 1950, S. Dunford, 1963) का योगदान महत्वपूर्ण है।

सन् 1950 से मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यक्तित्व संबंधी अध्ययनों को बढ़ावा मिला। इन अध्ययनों के फलस्वरूप व्यक्तित्व मनोविज्ञान का क्षेत्र बहुत बढ़ गया। ***पिछले पांच दशक में व्यक्तित्व मापन की दिशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं*** जिनकी सहायता से व्यक्तित्व का मापन और अध्ययन अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक ढंग से किया जाने लगा।

1.2.2 व्यक्तित्व सिद्धान्त

वर्तमान युग में आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का विभिन्न दृष्टिकोणों से विस्तार से अध्ययन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि आज व्यक्तित्व के बारे में अनेक सिद्धान्त प्रचलन में हैं। सिद्धान्त वस्तुतः किसी विषयवस्तु से संबंधित एक दृष्टिकोण से किये गये विचारों का संग्रह है। दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व के जितने भी सिद्धान्त हैं वे वास्तव में विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों एवं विचारधाराओं के प्रतिनिधि हैं।

व्यक्तित्व का अध्ययन करते समय किसी एक सिद्धान्त को समग्र रूप से सही नहीं माना जा सकता। कोई सिद्धान्त अपने आप में पूर्ण नहीं है, सभी सिद्धान्तों में कुछ न कुछ विशिष्टताएं हैं और उनकी अपनी कुछ सीमाएं भी। हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि प्रत्येक सिद्धान्त में जो–जो विशेषताएं हैं, उन्हें ग्रहण कर लें एवं उसे अपने चिन्तन के द्वारा उन्हें सही प्रकार से व्यवस्थित कर लें इसके लिए–

1. व्यक्ति की उन बातों को जो ठीक लगे उन्हें व्यक्ति में देखने का प्रयास करें।
2. निरीक्षण के द्वारा प्राप्त बातों का हम विधिवत् वर्गीकरण करें। फिर
3. उनके आपसी संबंधों को समझने का प्रयास करें।
4. अन्त में देखें कि वे व्यक्तित्व के स्वरूप को किस प्रकार स्पष्ट करती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वर्तमान में व्यक्तित्व को समझने के लिए जितने सिद्धान्तों का विकास हुआ है वे प्रायः पश्चिमी देशों, युरोप व अमेरिका में विकसित हुए हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तित्व के कुछ ऐसे सिद्धान्त है जिनका प्रतिपादन भारत, चीन तथा जापान जैसे देशों में हुआ। इन देशों में विभिन्न धर्म–दर्शन पर आधारित व्यक्तित्व के कई स्वतंत्र विचाराधाराओं का जन्म हुआ है।

व्यक्तित्व के सिद्धान्त मुख्यतः दो प्रकार के हैं –

(1) पश्चिमी विद्वानों द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त।
(2) पूर्वी भारतीय ऋषियों और विद्वानों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त।

भारतीय व्यक्तित्व सिद्धान्त और पश्चिमी व्यक्तित्व सिद्धान्तों के दृष्टिकोण एक–दूसरे से पूर्णतया भिन्न है। दोनों की अपनी–अपनी मौलिक विशेषताएं हैं। इनकी स्वतंत्र उपयोगिता है। इसी कारण आज वे एक–दूसरे के पूरक बन रहे हैं। ***व्यक्तित्व को उन्नत करने में भारतीय मनोविज्ञान की प्रमुख देन योगविद्या और पूर्वी ध्यान का बहुत उपयोग बढ़ा है। ध्यान एवं योग के परिणामों के मापन व प्रमाणीकरण में पश्चिमी मनोविज्ञान की प्रमुख देन व्यक्तित्व मापन की विधियों का बहुत उपयोग हो रहा है।*** इस तरह वस्तुतः वे एक–दूसरे के पूरक बन रहे हैं।

1.2.3 भारतीय व्यक्तित्व सिद्धान्त

भारतीय दर्शन में व्यक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए आत्मा का उल्लेख किया गया है। मनुष्य न केवल शरीर है बल्कि उसके भीतर एक दिव्य आत्मा का निवास है। उससे व्यक्तित्व का आध्यात्मिक स्वरूप प्रकट होता है। दूसरे शब्दों में मानव शरीर और आत्मा का समग्र पुंज है। मनुष्य के केवल शारीरिक, बौद्धिक और भावनात्मक व्यवहारों से उसके व्यक्तित्व का सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। व्यक्तित्व अध्ययन में समग्रवादी दृष्टि अधिक उपयोगी है। इसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. भारतीय (पूर्वी) व्यक्तित्व सिद्धान्तों का प्रतिपादन अन्तर्दर्शन, अनुभव, मनन, साधना और आत्मसिद्धि जैसी विधियों पर आधारित है।
2. इस सिद्धान्त की मुख्य धारणा यह है कि ***व्यक्ति को आदर्श और उन्नत व्यक्तित्व में विकसित किया जा सकता है।***
3. इसमें यह बताया गया है कि जागरूकता, ध्यान और योग के द्वारा व्यक्ति निरोग रह सकता है और सामान्य, शान्त और उन्नत जीवन व्यतीत कर सकता है। यह इसकी प्रमुख विशेषता है। आधुनिक युग में ध्यान योग की पद्धति व्यक्तित्व विकास में बहुत उपयोगी बन रही है।
4. आत्मा को व्यक्तित्व का केन्द्र बिन्दु माना गया है। आत्मा की उच्च अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। आत्मा को शुद्ध तत्व माना गया है। ***वहां तक पहुंचने का मार्ग भी बताया गया है।***

सीमा –

1. भारतीय व्यक्तित्व सिद्धान्त दार्शनिक धार्मिक व पराभौतिक परम्परा से जुड़े हुए हैं। विज्ञान अभी पराभौतिक साक्ष्यों को पूर्ण रूप से जुटा पाने में सफल नहीं हुआ है। अतः इसके वैज्ञानिक साक्ष्य या प्रमाण उपलब्ध नहीं हो पाये हैं। आधुनिक मनोविज्ञान की तरह इसमें व्यक्तित्व के मापन की व्यवस्था भी नहीं है।

1.2.4 पश्चिमी व्यक्तित्व सिद्धान्त

1. पश्चिमी सिद्धान्त का प्रतिपादन निरीक्षण विधि, प्रयोगात्मक विधि, दीर्घकालीन विकासात्मक विधि (Longitudinal Developmental Mrthod) और कारक विश्लेषण विधि आदि द्वारा आंकड़े एकत्रित कर और आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर किया गया है। अधिकांश सिद्धान्त वैज्ञानिक परम्परा से जुड़े हुए हैं तथा वैज्ञानिक साक्ष्यों पर आधारित है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. ***पश्चिमी व्यक्तित्व सिद्धान्त में व्यक्तित्व के मापन की व्यवस्था है। यह इसकी विशिष्टता है।***

3. इसमें यह भी व्यवस्था है कि रोगी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों की मनोचिकित्सा की विधियां अपना कर रोगी व्यक्ति को निरोग करके सामान्य व्यक्ति बना सकते हैं।

4. इसमें भी कुछ सिद्धान्तों में स्वयं को व्यक्तित्व का केन्द्र बिन्दु माना गया है। किन्तु ''स्व'' के संबंध में वे पूर्ण रूप से एकमत नहीं है।

5. ये सिद्धान्त व्यवहारात्मक है। मुख्यतः ये सिद्धान्त चेतन अवस्था, सुप्तावस्था, स्वप्नावस्था और अचेतन अवस्था के अनुभवों, घटनाओं और व्यवहारों से संबंधित है।

सीमा –

1. इनका मानना है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व जिस प्रकार का है उसे आदर्श रूप में उन्नत नहीं किया जा सकता।[1] अतः उसके लिए वैसी कोई व्यवस्था भी नहीं बताई गई है।

1.2.5 निष्कर्ष

पश्चिम में वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन बढ़ा, तब व्यक्तित्व सिद्धान्त में भी उन सिद्धान्तों की प्रधानता बढ़ी जिसका वैज्ञानिक विधि से अनुसंधान किया जा सके। वस्तुनिष्ठ पद्धति से व्यक्तित्व के विभिन्न लक्षणों के अध्ययन एवं शोध की संभावना बन सके। अतः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व का जो ज्ञान इस समय उपलब्ध है वह भौतिक, मानसिक व भावनात्मक स्तर तक ही ले जाता है। जहां तक व्यक्तित्व के अन्तरंग, चैतसिक एवं अति मानसिक पक्षों का संबंध है वह पश्चिमी मनोविज्ञान में अभी तक सामने नहीं आया है। जैसे–जैसे व्यक्तित्व के आध्यात्मिक और अतिमानसिक आयामों से मनोवैज्ञानिकों का परिचय बढ़ेगा वैसे–वैसे हर मानव के व्यक्तित्व का सर्वांगीण ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

बोध प्रश्न

---

1. भारतीय व्यक्तित्व सिद्धान्त और पश्चिमी व्यक्तित्व सिद्धान्त किस रूप में एक–दूसरे के पूरक बन रहे हैं ?
2. भारतीय व्यक्तित्व सिद्धान्त की मुख्य धारणा और प्रमुख विशेषता क्या है ?
3. पश्चिमी व्यक्तित्व सिद्धान्त की विशिष्टता क्या है ?

1.3.0 व्यक्तित्व की परिभाषाएँ

प्रत्येक व्यक्ति में अनेक गुण होते हैं। कुछ विशेष गुण या विशेषाताएं भी होती हैं जो दूसरे व्यक्ति में नहीं होती। इन गुणों और विशेषताओं के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति एक–दूसरे से भिन्न होता है। व्यक्ति के इन समस्त गुणों का संगठन ही व्यक्ति का व्यक्तित्व कहलाता है।

जन साधारण में व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य और व्यक्त रूप से लिया जाता है। मनोविज्ञान में व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के आंतरिक और बाह्य समस्त गुणों की समष्ठी से है। दर्शनशास्त्र में व्यक्तित्व को आन्तरिक तत्व जीव, आत्मा या जीवात्मा माना जाता है। व्यक्तित्व एक स्थिर अवस्था न होकर परिवर्तनशील समष्ठी है। परिवेश के प्रभाव से

---

1 श्रीवास्ताव, व्यक्तित्व मनोविज्ञान, पृ. 537

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उसमें बदलाव भी आता रहता है। व्यक्तित्व विशेष लक्षणों का योग न होकर व्यक्ति के व्यवहार की समग्रता है। व्यक्ति के आचार, विचार, व्यवहार, क्रियाएं और विभिन्न गतिविधियों में व्यक्ति का व्यक्तित्व झलकता है। आन्तरिक परिवेश या बाह्य वातावरण के साथ तालमेल बिठाने और उसके समायोजन के लिए व्यक्ति अपना समस्त व्यवहार करता है।

1.3.1 प्राचीन परिभाषाएं

अनेकान्त दृष्टि से देखा जाए तो मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व का अपने–अपने दृष्टिकोण से अध्ययन किया है, अतः यह स्वाभाविक है कि व्यक्तित्व की अनेकानेक परिभाषाएं हो गई। परिभाषाओं के क्रम में सबसे पुरानी परिभाषा व्यक्तित्व शब्द की उत्पत्ति से संबंधित है। व्यक्तित्व का अंग्रेजी शब्द ''पर्सनालिटी'' (Personality) है। यह लैटिन भाषा के शब्द ''परसोना'' (Persona) से उत्पन्न हुआ है। आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व व्यक्तित्व के लिए इसी परसोना शब्द का उपयोग किया गया। इसका अर्थ है –मुखौटा, नकाब (Mask) अथवा वेशभूषा। इसे नायक नाटक प्रस्तुत करते समय पहनते थे। रोमनकाल में विशेष गुणयुक्त पात्र को ही पर्सोना कहा जाने लगा। इस दूसरे अर्थ को ही आधुनिक मनोविज्ञान के पर्सनलिटी में लिया गया है। इस शाब्दिक अर्थ को ध्यान में रखते हुए व्यक्तित्व को बाहरी वेशभूषा तथा दिखावे (external appearnce) के आधार पर परिभाषित किया गया था। जिस व्यक्ति का बाहरी दिखावा भड़कीला और आकर्षक होता था, उसका व्यक्तित्व उतना ही अच्छा समझा जाता था तथा जिस व्यक्ति का बाहरी दिखावा साधारण होता था, उसका व्यक्तित्व उतना अच्छा नहीं समझा जाता था।

1.3.2 लोकप्रिय परिभाषा

यदि एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को अधिक और शीघ्रता से प्रभावित करता है तो उसके व्यक्तित्व को अधिक प्रभावशाली और अच्छा समझा जाता है। वास्तव में ***आम जनता की भाषा में व्यक्तित्व का अर्थ होता है – जनप्रिय गुणों की अभिव्यक्ति,*** अर्थात् वह व्यक्ति उदार होता है, आकर्षक दिखता है, दूसरे लोगों के साथ आसानी से घुलमिल जाता है, अपने भावों की अभिव्यक्ति अच्छे ढंग से कर लेता है, सामाजिक रूप से वांछनीय गुणों की अभिव्यक्ति करता है, शिष्ट व्यवहार करता है, सच्चा एवं निष्कपट है तथा दूसरों के साथ सद्भाव दिखाता है। ऐसे व्यक्ति को उत्तम व्यक्तित्व वाला समझा जाता है। यह लोकप्रिय परिभाषा है। इसे आलपोर्ट (Allport 1937) ने जैव सामाजिक परिभाषा की संज्ञा दी है।

1.4.0 मनोवैज्ञानिक परिभाषाएं

मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में ये लोकप्रिय परिभाषाएं सर्वमान्य नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का एक व्यक्तित्व अवश्य होता है जो बाहर की दुनिया में अभिव्यक्त होता है। भले ही वह सामाजिक दृष्टि से उत्तम, विशिष्ट या असाधारण हो अथवा निम्न, साधारण, घिनौना या असामान्य ही क्यों न हो। ***लोकप्रिय परिभाषा की एक सीमा यह भी है कि इसमें बाह्य, स्पष्ट एवं व्यक्त पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।*** दूसरी ओर व्यक्ति के आंतरिक, अस्पष्ट और अव्यक्त पहलुओं की अपेक्षा हुई है।

आलपोर्ट (Allport 1937) ने व्यक्तित्व की दी गई सभी परिभाषाओं को एकत्रित किया और पाया कि व्यक्तित्व की 49 परिभाषाएं दी जा चुकी है। इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने के बाद आलपोर्ट ने अपनी ओर से व्यक्तित्व की 50वीं परिभाषा दी, उस परिभाषा में भीतरी गुणों पर विशेष बल दिया गया है। वह आज भी अनेक मनोवैज्ञानिकों को मान्य है। यह परिभाषा काफी विस्तृत (comprehensive) और वैज्ञानिक (Scientific) है।

1.4.1 आलपोर्ट (Allport 1937) के अनुसार परिभाषा

''व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील संगठन है जो वातावरण में उसके अनन्य समायोजन को निर्धारित करता है।'' (''Personality is the dynamic organisation within the individual of

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

those psychophysical systems that determine his unique adjustments to his environment" Allport personality – A psychological Interpretation, 1937, p.38)

1.4.2 आईजेन्क के अनुसार

आईजेन्क (Eysenck 1952) के अनुसार ''व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, (Charactger), चित्त प्रकृति (Temprament), बुद्धि (Intellect) तथा शरीर गठन (Physiace) का करीब–करीब एक स्थायी एवं टिकाऊ संगठन है जो वातावरण में उसके अनन्य समायोजन का निर्धारण करता है। ("Personality is the more or less stable and enduring organization of a persons character, temperament, intellect and physique that determine his unique adjustment to his environment" Eysenck The Scientific study of personality, 1952, p.16)

आलपोर्ट व आइजेन्क की उपरोक्त परिभाषाओं में व्यक्तित्व के भीतरी गुणों (Inner qualities) तथा बाहरी यानी व्यवहार को सम्मिलित किया है परन्तु भीतरी गुणों पर अधिक बल डाला। चाइल्ड (Child 1968) तथा वाल्टर मिसकेल (Walter Mischel, 1981) ने ऐसी परिभाषा दी जिसमें उपरोक्त परिभाषाओं की कमी दूर हो गई। उन्होंने अपनी परिभाषाओं में व्यक्तित्व के भीतरी गुणों के अलावा व्यवहार पर भी समान रूप से बल डाला। उनकी परिभाषा आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के बीच अधिक लोकप्रिय हुई।

1.4.3 चाईल्ड (Child 1968) के अनुसार

''व्यक्तित्व से तात्पर्य कमोवेश स्थायी आन्तरिक कारणों से होता है जो व्यक्ति के व्यवहार को एक समय से दूसरे समय में संगत बनाता है तथा तुल्य परिस्थितियों में अन्य लोगों के व्यवहार से अलग करता है।'' ("Personality refers to more or less stable and enduring organization of a person's behaviour consistent from one time to another and different from the behaviour other people would manifest in comparable situations." Child 'Personality in culture, in Barsatta, lembert (eds) Handbook of personality Theory and Research, 1968, p.83)

1.4.4 वाल्टर मिसकेल (Walter Mischel, 1981) के अनुसार

प्रायः व्यक्तित्व से तात्पर्य व्यवहार के उस विशिष्ट पैटर्न (जिसमें चिन्तन एवं संवेग भी सम्मिलित हैं) से होता है जो प्रत्येक व्यक्ति के जिन्दगी की परिस्थितियों के साथ होने वाले समायोजन का निर्धारण करता है।'' ("Personality usually refers to the distinctive patterns of behaviour (Including thoughts and emotions) that characterize each individual's adaptation to the situations of his or her life." Walter Mischel – Introduction of personality. 1981. p.2)

1.4.5 बेरोन (Beron 1993) के अनुसार

''व्यक्तियों के अनुठे संवेगों, चिन्तनों तथा व्यवहारों के सापेक्ष रूप से स्थिर पैटर्न के रूप में व्यक्तित्व को सामान्यतः परिभाषित किया जाता है।'' (वर्गर, 1990, बर्न एवं सुल्ट 1990) ("Personality is generally defined as individual's unique and relatively stable patterns of behaviour, thoughts and emotions." (Berger 1990, Byrne and Schulte1990) Boron- Psychology 1993 p.982.

1.4.6 श्रीवास्तव डी.एन. के अनुसार

व्यक्तित्व शीलगुणों (चिन्तन, भाव, संवेग, ज्ञानशक्ति) अभिप्रेरणात्मक व्यवस्थाओं और व्यवहार का सापेक्ष रूप से स्थायी गतिशील विशिष्ट नमूना (पैटर्न) है जो वातावरण की परिस्थितियों के साथ व्यक्ति के समायोजन को निर्धारित करता है।

1.5.0 परिभाषाओं के प्रकार

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस तरह मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों एवं समाजशास्त्रियों ने व्यक्ति के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न परिभाषाएं दी है। व्यक्तित्व की सैंकड़ों परिभाषाएं अब तक दी जा चुकी है। गिल्फोर्ड, 1960 के अनुसार '' व्यक्तित्व शीलगुणों का एक समन्वित पैटर्न है। "Personality is the integrated patterns of the traits (J.P. Guilford1960)

यहां हम उन व्यक्तित्व की परिभाषाओं की कोटियों अथवा प्रकारों से परिचित होंगे। अध्ययन की सुविधा दृष्टि से व्यक्तित्व की परिभाषाओं को गिलफोर्ड (Guilford) ने चार भागों में बांट दिया है। जो निम्नलिखित हैं –

1. संग्राही (Ominibus) परिभाषाएं
2. समाकलनात्मक (Intergrative) परिभाषाएं
3. सोपानित परिभाषाएं (Hierarchical Definitions)
4. समायोजन (Adjustment) आधारित परिभाषाएं

उपरोक्त वर्गों को ध्यान में रखते हुए व्यक्तित्व की परिभाषाएं इस प्रकार दी जा सकती हैं –

1.5.1 संग्राही (Ominibus) या सर्वांगीण परिभाषाएं

इस वर्ग में वे परिभाषाएं आती हैं जो व्यक्ति की समस्त अनुक्रियाओं, प्रतिक्रियाओं तथा जैविक गुणों के समुच्चय पर ध्यान देती है। इसमें कैम्फ (Kempf) तथा मार्टन प्रिंस की परिभाषाएं महत्वपूर्ण है।

कैम्फ (1919) के अनुसार, 'व्यक्तित्व उन प्राभ्यास संस्थाओं का या उन अभ्यास के रूपों का समन्वय है जो वातावरण में व्यक्ति के विशेष सन्तुलन को प्रस्तुत करता है।'' मार्टन प्रिंस (Morten Prience 1924) के अनुसार 'व्यक्तित्व व्यक्ति की समस्त जैविक, जन्मजात विन्यास, उद्वेग, रूझान, क्षुधाएं, मूल प्रवृतियां तथा अर्जित विन्यासों एवं प्रवृतियों का समूह है।''

1.5.2 समाकलनात्मक (Intergrative) परिभाषाएं

इस वर्ग की परिभाषाओं में व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों, गुणों एवं तत्वों के योग पर बल दिया जाता है। व्यक्ति संबंधी जितने गुण एवं लक्षण हैं उनमें एक आपसी संबंध पाया जाता है। इसके अभाव में व्यक्तित्व की समग्रता संभव नहीं होती है। इसी प्रकार गुणों के समाकलन से व्यक्ति में एक विशेषता उत्पन्न हो जाती है। इस वर्ग की परिभाषाओं में वारेन तथा कारमाइकल (1930) तथा मेकर्डी की परिभाषाएं उल्लेखनीय है।

वारेन तथा कारमाइकल (Warren and Carmichal) के अनुसार 'व्यक्ति के विकास की किसी अवस्था पर उसके सम्पूर्ण संगठन को व्यक्तित्व कहते है।' मेकर्डी (J.T. Maccurdy) के शब्दों में व्यक्तित्व रूचियों का वह समाकलन है जो जीवन के व्यवहार में एक विशेष प्रकार की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है।

1.5.3 सोपानित परिभाषाएं (Hierarchical Definitions)

विलियम जैम्स तथा मैस्लो जैसे कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के कई सोपान बताए हैं। इन मनोवैज्ञानिकों ने मुख्य रूप से व्यक्तित्व के चार सोपान माने हैं –

1. भौतिक व्यक्तित्व (Material Self)
2. सामाजिक व्यक्तित्व (Social Self)
3. आध्यात्मिक व्यक्तित्व (Spiritual Self)
4. शुद्ध अहम् (Pure Ego)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रथम सोपान के अन्तर्गत व्यक्ति के शरीर की बनावट में आनुवांशिकता से प्राप्त विशेष गुण सम्मिलित है। जबकि द्वितीय सोपान में सामाजिक संबंधों और सामाजिक विकास का उल्लेख होता है। ***व्यक्तित्व का तीसरा सोपान आध्यात्मिक व्यक्तित्व है। इस सोपान वाले व्यक्ति की रूचि आध्यात्मिक विषयों में होती है और सामाजिक संबंधों से इसे अधिक महत्व देता है।*** इससे उसके आध्यात्मिक व्यक्तित्व का विकास होने लगता है। चौथे सोपान में व्यक्ति अपने आत्म स्वरूप का पूर्ण ज्ञान कर लेता है और सभी वस्तुओं में अपनी आत्मा का दर्शन करता है तब वह अपने अन्तिम सोपान पर पहुंचता है। श्री अरविन्द ने भी व्यक्ति विकास के क्रम में करीब–करीब इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने भौतिक (Physical), भावात्मक या प्राणिक (Vital), बौद्धिक (Mental), चैत्य (Psyche), आध्यात्मिक (Spiritual) तथा अतिमानसिक (Supermental) सोपानों का उल्लेख किया है।

1.5.4 समायोजन (Adjustment) आधारित

मानव शरीर की संरचना में यह विशिष्टता रहती है कि वहां विभिन्न अंगों की क्रियाओं में एक प्रकार का संतुलन रहता है। इसे समावस्थान (homeostasis) कहा जाता है। इस विशिष्टता के कारण ही शरीर प्रतिकूल परिस्थितियों में समस्याओं का समाधान स्वयं करता रहता है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के सन्दर्भ में समावस्थान समायोजन का रूप धारण कर लेता है। ***व्यक्ति को निरन्तर दबावों का सामना करना पड़ता है। दबावों से सफलतापूर्वक निपटने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी इच्छाओं और सामाजिक मांगों के बीच समायोजन स्थापित करें।*** इस बात को बल देकर व्यक्तित्व की समायोजन आधारित परिभाषाएं निर्मित की गई हैं।

इस वर्ग की परिभाषाओं में मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के व्यक्तित्व के अध्ययन तथा व्याख्याओं में समायोजन को महत्वपूर्ण मानते हैं। व्यक्ति में ऐसे गुण जो उसको समायोजित करने में उसकी सहायता करते हैं, चाहे वे शारीरिक हो या मानसिक उन सबका गठन इस प्रकार का होता है कि वे निरन्तर गतिशील रहते हैं। इन गुणों की गत्यात्मकता के कारण ही एक विशिष्ट प्रकार की अनन्यता या अपूर्वता (Uniqueness) व्यक्ति में पैदा हो जाती है। बोरिंग के अनुसार ''व्यक्तित्व व्यक्ति का उसके वातावरण के साथ अपूर्व व स्थायी समायोजन है।

व्यक्तित्व की परिभाषाओं में देखा जाए तो कहा जा सकता है कि किसी परिभाषा में व्यक्तित्व की कुछ विशेषताएं हैं तो किसी दूसरे व्यक्तित्व की परिभाषा में कुछ अन्य विशेषताएं हैं। व्यक्तित्व परिभाषाओं के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के अर्थ को अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में जो आधुनिक युग में अध्ययन हुए हैं उन अध्ययनों से व्यक्तित्व की परिभाषा या अर्थ में क्रमिक बदलाव आया है। व्यक्तित्व मनोविज्ञान के क्षेत्र में अब तक जिन परिभाषाओं का प्रतिपादन हुआ है वे परिभाषाएं बहुत कुछ आलपोर्ट की परिभाषाओं से मिलती जुलती है।

आलपोर्ट ने 1961 में अपने द्वारा दी गई 1937 की परिभाषा में संवर्धन करते हुए व्यवहार शब्द को भी विशेष स्थान दिया।[1] वह परिभाषा अधिकांश मनोवैज्ञानिकों द्वारा पूर्ण परिभाषा के रूप में स्वीकार की गई है।

आलपोर्ट (1961) के अनुसार ***''व्यक्तित्व व्यक्ति के उन मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो उसके विशिष्ट व्यवहार, समायोजन और विचारों को प्रभावित करता है।*** (Personality is the dynamic organization with in the individual of those psychophysical systems that determine his characteristic behaviour, adjustment and thoughts.)

1.6.0 व्यक्तित्व का अर्थ

सभी परिभाषाओं का एक संयुक्त विश्लेषण करने पर व्यक्तित्व का अर्थ अधिक स्पष्ट हो जायेगा। इनमें निम्नलिखित कुछ विशेषताएं अधिक महत्वपूर्ण हैं, जैसे –

---

1 व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, अरुणकुमार सिंह, आशिषकुमार सिंह पृ. 8

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.6.1 मनोदैहिक तन्त्र (Psychophysical System)

मौटे तौर पर व्यक्तित्व में मुख्य रूप से दो तन्त्र होते हैं – प्रथम मनोवैज्ञानिक (Psychological) तथा दूसरा शारीरिक (दैहिक) तन्त्र। ये दोनों ही तन्त्र आपस में अन्तःक्रिया (Interaction) करते हैं। मनोवैज्ञानिक तंत्र में शीलगुण (traits), संवेग (emotion), आदत (habit), ज्ञानशक्ति (intellect), चित्त प्रकृति (temprament), चरित्र (character), अभिप्रेरक (motives) और विश्वास (faith) आदि आते हैं। दूसरी और व्यक्ति के भौतिक या शारीरिक तंत्र में शारीरिक विशेषताएं जैसे उसका रंग–रूप, लम्बाई–चौड़ाई, शारीरिक अवस्थाएं आती हैं। यह मनोदैहिक तंत्र व्यक्ति के वंशानुक्रम पर तो आधारित होते ही हैं साथ–साथ यह व्यक्ति के अधिगम (Learning), और अन्तर्नोद (Drives) के भी प्रतिफल हैं। इन पर व्यक्ति के जीवन के अनुभवों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

1.6.2 गत्यात्मक संगठन (Dynamic Organization)

संगठन से तात्पर्य यह है कि मनोशारीरिक तंत्र (Psychopsysical System) के भिन्न–भिन्न तत्व (elements) जैसे शीलगुण, आदत आदि एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं, उन्हें एक–दूसरे से पूर्णतः अलग नहीं किया जा सकता।

गत्यात्मक से तात्पर्य है कि इस संगठन में स्थित तत्वों में परिवर्तन संभव है। उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति नौकरी पाने के पहले ईमानदार, जिम्मेदार तथा समय का पाबन्द हो सकता है। नौकरी पाने के बाद इन गुणों में परिवर्तन हो सकता है। गुणों की मात्रा कम हो सकती है अथवा बढ़ भी सकती है। कभी–कभी इन गुणों के ठीक विपरीत स्थिति भी घटित हो सकती है। वही व्यक्ति बेईमान, गैर जिम्मेदार तथा समय का ध्यान न रखने वाला भी हो सकता है। इन परिवर्तनों और विचलनों के कारण ही व्यक्तित्व का मापन कठिन है। इस तरह के संगठन में विसंगठन भी सम्मिलित होता है जिसके सहारे असामान्य व्यवहार (abnormal behaviour) की व्याख्या होती है।

1.6.3 संगतता (Consistency)

व्यक्ति में संगतता का तात्पर्य है कि एक समय से दूसरे समय में तथा समान परिस्थिति में व्यक्ति का व्यवहार एक समान या संगत होता है। व्यक्ति के व्यवहार में इसी संगतता के आधार पर उसमें अमुक शीलगुण (trait) के होने का अनुमान लगाया जाता है।

1.6.4 वातावरण में अनन्य समायोजन का निर्धारण (Determination of unique adjustment to environment)

व्यक्ति में अनन्य का अर्थ व्यक्ति की उन विशेषताओं से हैं जिनके कारण वह दूसरों से भिन्न दिखाई देता है। कोई भी दो व्यक्ति यहां तक की दो जुड़वां बच्चों को भी एक समान अनुभव नहीं होते, क्योंकि अपने मनोदैहिक गुणों के कारण जो कुछ सीखते हैं, वे उसी के आधार पर व्यवहार करते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार एक–दूसरे से अलग और विशिष्ट होता है। इसके कारण वातावरण के साथ समायोजन करने का ढंग भी प्रत्येक व्यक्ति में अलग–अलग होता है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि ***व्यक्ति आन्तरिक एवं बाह्य गुणों का ऐसा गत्यात्मक संगठन है जिसका व्यवहार किसी भी वातावरण में अपने ढंग का अलग या विशेष ही होता है।***

1.7.0 सारांश

- व्यक्तित्व को उन्नत बनाने के लिए व्यक्तित्व का अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसका अध्ययन भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों धाराओं में प्राचीन काल से चला आ रहा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- भारतीय धरा पर प्राचीनकाल से ही वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग, जैन आगम और बौद्ध पिटकों में व्यक्तित्व के सिद्धान्तों का विश्लेषण होता रहा है। भारतीय व्यक्तित्व सिद्धान्त का सबसे बड़ा योगदान व्यक्तित्व को उन्नत करने की पद्धतियों, योग–विद्या एवं ध्यान की पद्धतियों का विकास करना है।
- वर्तमान युग में पाश्चात्य जगत् से व्यक्तित्व के अध्ययन में बहुत तीव्रता आई। अनेक नये–नये सिद्धान्त सामने आये और विपुल साहित्य का सृजन हुआ। इसके प्रारम्भ में सिग्मण्ड फ्रायड का योगदान बहुत उल्लेखनीय रहा है। पश्चिमी व्यक्तित्व सिद्धान्त का महत्वपूर्ण योगदान व्यक्तित्व के मापन की व्यवस्था है।
- 'व्यक्तित्व' शब्द 'पर्सोना' जिसका अर्थ मुखौटा, नकाब आदि से बना है। आम जनता की दृष्टि में व्यक्तित्व का अर्थ है– लोकप्रिय गुणों की व्यक्ति में अभिव्यक्ति। मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में ये परिभाषाएं व्यक्ति के केवल बाह्य एवं जनप्रिय गुणों की अभिव्यक्ति करती है। इनमें आन्तरिक व समस्त गुणों की अभिव्यक्ति नहीं हुई है। वर्तमान में आलपोर्ट की परिभाषा सर्वाधिक मान्य हुई है। यह परिभाषा विस्तृत और वैज्ञानिक है। इसके अतिरिक्त व्यक्तित्व को अलग–अलग दृष्टि से समझने के प्रयास में आज सौ से अधिक परिभाषाएं दी जा चुकी है।
- गिलफोर्ड ने अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से व्यक्तित्व की परिभाषाओं को चार भागों में बांटा – संग्राही, समाकलनात्मक, सोपानित और समायोजन आधारित।
- सभी परिभाषाओं के आधार पर व्यक्तित्व के अर्थ के संबंध में यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व में दैहिक व मनोवैज्ञानिक पहलुओं का समावेश होता है। इनमें परस्पर अन्तःक्रिया होती है। इन पहलुओं या तत्वों में भी पूर्णतया स्थिरता न होकर परिवर्तनशीलता भी है। समान बाह्य परिवेश में प्रायः समान व्यवहार दर्शाने की प्रवृत्ति व्यक्तित्व की एक प्रमुख विशेषता है। साथ ही व्यक्ति का वह व्यवहार दूसरे व्यक्तियों से भिन्न अर्थात् अनन्य और विशेष भी होता है।

बोध प्रश्न

1. आम जनता की भाषा में व्यक्तित्व का अर्थ क्या है ?
2. किस परिभाषा को आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा पूर्ण परिभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है? परिभाषा का उल्लेख करें।
3. दबावों का सामना करने के लिए क्या आवश्यक है ?

1.8.0 अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मानव व्यक्तित्व के सिद्धान्तों का विवेचन भारतीय चिन्तन धारा में कहां–कहां हुआ ?
2. वर्तमान में व्यक्तित्व के अध्ययन में सर्वप्रथम व्यवस्थित अध्ययन किसने किया ?
3. समायोजन किसके बीच होना चाहिए ?
4. गिलफोर्ड ने व्यक्तित्व की परिभाषाओं को कितने भागों में बांटा ? नाम बताएं।
5. अनन्य समायोजन से क्या तात्पर्य है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. उत्तम व्यक्तित्व वाला किसको समझा जाता है ? तथा यह व्यक्तित्व की किस प्रकार की परिभाषा है ?
2. व्यक्तित्व के चार सोपान कौनसे हैं ? विस्तार से बताएं।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. आलपोर्ट की परिभाषा के साथ व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उसके अर्थ को स्पष्ट करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 1 व्यक्तित्व – विकास : परिचय

पाठ – 2 व्यक्तित्व के निर्धारक तत्त्व

रूपरेखा

2.0.0 उद्देश्य
2.1.0 भूमिका
2.2.0 जैविक या दैहिक निर्धारक तत्त्व
2.2.1 आनुवंशिकता
2.2.2 शारीरिक गठन
2.2.3 शारीरिक रसायन
2.2.4 नाड़ी संस्थान
2.2.5 अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ
2.2.6 समस्थिति
2.2.7 स्वास्थ्य
2.3.0 सांस्कृतिक निर्धारित तत्त्व
2.4.0 पारिवारिक निर्धारित तत्त्व
2.4.1 माता–पिता का प्रभाव
2.4.2 घर में अन्य सदस्यों का प्रभाव
2.4.3 व्यक्ति पर जन्म क्रम का प्रभाव
2.5.0 शैक्षिक निर्धारक तत्त्व
2.5.1 शिक्षा का प्रभाव
2.5.2 शिक्षकों का प्रभाव
2.5.3 सहपाठियों का प्रभाव
2.5.4 शिक्षण संस्थान का वातावरण
2.6.0 मनोवैज्ञानिक निर्धारक
2.6.1 बौद्धिक निर्धारक
2.6.2 संवेगात्मक निर्धारक
2.6.3 आकांक्षा एवं उपलब्धि सम्बद्ध निर्धारक
2.7.0 सामाजिक निर्धारक
2.8.0 सारांश
2.9.0 अभ्यास प्रश्न

2.0.0 उद्देश्य

ज्ञानार्थी भाई–बहनों ! इस पाठ का उद्देश्य आपको व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले सहायक तत्वों के बारे में जानकारी देना है। इस पाठ के अध्ययन से आप जान पाएंगे कि कौन–कौन से तत्त्व किस–किस रूप में हमारे व्यक्तित्व को कितना प्रभावित करते हैं। हम स्वयं अपने व्यक्तित्व निर्माण में किस प्रकार से एवं कितना महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। अतः इस पाठ के अध्ययन से आप व्यक्तित्व–निर्धारण में –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. आनुवंशिकता, शारीरिक गठन, नाड़ी संस्थान, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों, स्वास्थ्य आदि के योगदान को जान पाएंगे।
2. सांस्कृतिक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका का अंकन कर पाएंगे।
3. पारिवारिक सदस्यों के प्रभाव को जान पाएंगे।
4. शैक्षिक तत्त्वों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को समझ सकेंगे।
5. मनोवैज्ञानिक तत्त्वों, लक्ष्य निर्माण, संवेग, बुद्धि आदि के सर्वाधिक प्रभावकारक योगदान का बोध हो सकेगा।
6. सामाजिक वातावरण के प्रभाव को समझ सकेंगे।

2.1.0 भूमिका

व्यक्तित्व के विकास में आन्तरिक और बाह्य जिन–जिन तत्त्वों का गहरा असर होता है उन बिन्दुओं पर मनोवैज्ञानिकों ने विस्तृत चिन्तन किया है। एक संस्कृत श्लोक का सार यह है कि ''एक बालक–बालिका पर एक प्रतिशत शिक्षक का, नौ प्रतिशत पिता का एवं नब्बे प्रतिशत माता का प्रभाव पड़ता है। एक दृष्टि से यह ठीक भी लगता है। किन्तु अनेकान्त दृष्टि से विचार करें तो इनके अतिरिक्त भी अनेक तत्त्व हैं जिनका बहुत व्यापक व गहन प्रभाव हमारे व्यक्तित्व पर पड़ता है। मनोवैज्ञानिक कारक तत्त्व वे प्रमुख कारक हैं जो व्यक्ति के अपने नियंत्रण के दायरे में होते हैं। इनका उपयोग एक जागररुक युवक कर सकता है। इससे वह अपना व्यक्तित्व सार्थक, प्रभावशाली व चिर स्मरणीय बना सकता है।

व्यक्तित्व को विकसित करने और दिशा देने में कुछ तत्त्वों का विशेष हाथ रहता है। उन्हें हम व्यक्तित्व के निर्धारक या कारक तत्त्व कहते हैं। कुछ निर्धारक तत्त्व व्यक्तित्व को अधिक महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं, तो कुछ कारक कम प्रभावित करते हैं। कुछ कारक जन्म से पूर्व प्रभाव डालना प्रारम्भ करते हैं और जीवनभर प्रभावित करते हैं। कुछ कारक जीवन के अलग–अलग कालखण्डों में प्रभाव डालते हैं। इनमें से प्रभावित करने वाले किन्हीं भी कारकों की उपेक्षा नहीं की जा सकती हैं। तथापि कुछ विद्वानों ने व्यक्तित्व के निर्धारण में जैविक आधार को प्रमुख माना है तथा कुछ ने पर्यावरण संबंधी आधार को प्रधानता दी है, परन्तु व्यक्तित्व के विकास में सभी निर्धारकों का हाथ रहता है। सभी निर्धारकों को निम्नलिखित छह वर्गों में बांटा जा सकता है –

1. जैविक या दैहिक निर्धारक तत्त्व (Biological or Physical Determinants)
2. सांस्कृतिक निर्धारक तत्त्व (Cultural Determinants)
3. पारिवारिक निर्धारक तत्त्व (Environmental Determinants)
4. शैक्षिक निर्धारक तत्त्व (Educational Determinants)
5. मनोवैज्ञानिक निर्धारक तत्त्व (Psychological Determinants)
6. सामाजिक निर्धारक तत्त्व (Social Determinants)

2.2.0 जैविक या दैहिक निर्धारक तत्त्व (Biological or Physical Determinants)

जैविक कारक से तात्पर्य स्पष्टतः वैसे कारकों से होता है जो आनुवंशिक होते हैं। जो व्यक्ति के जन्म अथवा जन्म से पूर्व गर्भधारण के समय से ही व्यक्ति में विद्यमान रहते हैं। वे जीवनभर व्यक्तित्व विकास की दिशा को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार के निर्धारकों में कुछ प्रमुख निर्धारक निम्न प्रकार से हैं –

2.2.1 आनुवंशिकता

व्यक्ति की शारीरिक संरचना से संबंधित विशेषताएं जैसे – शरीर का कद, रंग, गठन आदि पर आनुवंशिकता का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अतः प्रायः लम्बे माता–पिता के बच्चे भी लम्बे होते हैं तथा नाटे माता–पिता के बच्चे भी नाटे होते हैं। गोरे माता–पिता के बच्चे प्रायः गोरे तथा सांवले माता–पिता के बच्चे प्रायः सांवले होते हैं। इन समानताओं का एक मुख्य कारण वंशानुक्रम है। कभी–कभी यह समानता माता–पिता से न मिलकर उनके पूर्वज दादा–दादी या नाना–नानी से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मिलती है। आनुवंशिकी (Heredity) के क्षेत्र में मेण्डेल (Mendel) जैसे वैज्ञानिकों ने शोध करके यह दिखला दिया कि बच्चों की शारीरिक विशेषताएं माता–पिता की शारीरिक विशेषताओं के औसत ही होती हैं। जैसे पिता अधिक लम्बे हैं और माता अधिक नाटी है तो बच्चों की शारीरिक लम्बाई इन दोनों के औसत लम्बाई के बराबर होने की संभावना है।

एक अध्ययन (Shields, 1962) में यह देखा गया कि गर्भकालीन अवस्था में माँ की सक्रियता और निष्क्रियता, माँ के आहार, भ्रूण (Fetus) की आवश्यकताएं, माँ का संवेगात्मक स्वास्थ्य आदि पैदा होने वाली शिशु की विशेषताओं को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए स्टोट (Stott, 1957) ने अपने एक अध्ययन में देखा कि अन्तिम कुछ सप्ताह में ***माँ की चिन्ता और तनाव पैदा होने वाले शिशु में बौद्धिक दुर्बलता के साथ–साथ अनेक व्यवहार संबंधी विकार उत्पन्न कर देते हैं।*** इस प्रकार आनुवंशिकता या पूर्वजों का व्यक्ति की शारीरिक संरचना, मानसिक एवं भावात्मक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

2.2.2 शारीरिक गठन

आनुवंशिकता से प्राप्त शरीर की बाह्य संरचना और दशा का जीवनभर व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। जिन बालकों की शरीर रचना का अनुपात सामान्य और अच्छा होता है उन बालकों के व्यक्तित्व प्रतिमान अधिक समायोजित प्रकार के होते हैं। शरीर रचना आकर्षक और सुन्दर होने पर माता–पिता, आस–पास के लोगों, शिक्षक, साथियों एवं अन्य लोगों का व्यवहार प्रशंसात्मक तथा काफी अनुकूल होता है। फलस्वरूप ऐसे बच्चों में अच्छे सामाजिक शील गुणों जैसे – श्रेष्ठता–भाव (feeling of superiority), आत्मविश्वास (self-confidence), उत्तरदायित्व (responsibility), सामाजिकता तथा समय प्रतिबद्धता (punctuality) आदि का विकास तीव्रता से होता है। दूसरी तरफ जिन बच्चों की शारीरिक संरचना खराब और अनाकर्षक होती है, उसके प्रति अधिकतर लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। फलस्वरूप ऐसे बच्चों में हीनता का भाव, संवेगात्मक अस्थिरता, संकोचशीलता आदि का गुण विकसित हो जाता है। ***प्रायः शरीर रचना के आधार पर ही यह कह दिया जाता है कि अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व अच्छा है। यद्यपि शरीर रचना ही सम्पूर्ण व्यक्तित्व नहीं है।***

बच्चों के शरीर में जब वास्तविक विकृति होती है तो इससे उनमे मानसिक शीलगुण भी प्रभावित होते हैं। शेफर (shaffer,1962) ने एक अध्ययन में देखा कि अपंग लड़कियों में सांवेगिक स्थिरता सामान्य लड़कियों की अपेक्षा कम थी। जब किसी का समायोजन अधिक दिनों तक दोषपूर्ण रहता है तो उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के विघटित होने की संभावना बढ़ जाती है। कुछ लोग शारीरिक दोष के कारण लज्जा, संकोच व असंतोष का अनुभव करते हैं। इससे सामाजिक गतिविधियों से दूर रह की एकाकी जीवन जीना पसंद करते हैं। कुछ लोग विशेष कार्य करके शारीरिक दोष की क्षतिपूर्ति करने की भी कोशिश करते हैं।

2.2.3 शारीरिक रसायन

व्यक्ति की बाह्य संरचना की तरह आन्तरिक रासायनिक क्रियाओं का भी व्यक्तित्व पर काफी प्रभाव पड़ता है। ***शरीर में समय–समय पर होने वाले रासायनिक परिवर्तन, नाड़ी ग्रन्थि तंत्र के क्रिया–कलाप, शरीर की समस्थिति आदि का व्यक्ति के शरीर, मन और भावों पर तात्कालिक एवं अनेक बार दीर्घकालिक प्रभाव भी पड़ता है।*** उदाहरण के लिए रक्त–शर्करा का ग्लाइकोजिन के रूप में परिवर्तन रासायनिक क्रियाओं पर निर्भर करता है। यदि रासायनिक क्रियाएं सामान्य ढंग से सम्पादित नहीं होती है तो निश्चय ही मांसपेशियों में ग्लाइकोजिन की कमी के कारण थकान शीघ्र आयेगी और व्यक्ति सुस्त दिखाई देगा। इसी प्रकार पाचनक्रिया ठीक नहीं होगी तो व्यक्ति में सुस्ती, थकान, उदासी, चिड़चिड़ापन आदि के लक्षण उत्पन्न हो जायेंगे।

आयुर्वेद व युनानी चिकित्सा में शरीर में स्थित चार प्रकार के रसायनों के आधार पर भी व्यक्तित्व का निरूपण मिलता है –

1. ***रक्त की अधिकता से व्यक्ति आदतन आशावादी और उत्साही होता है।***

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. पित्त की अधिकता से व्यक्ति क्रोधी अथवा चिड़चिड़ा हो जाता है।
3. कफ की अधिकता वाले व्यक्ति शान्त और आलसी होते हैं।
4. तिल्ली द्रव्य या श्यामपित्त की प्रधानता वाले व्यक्ति उदास रहने वाले होते हैं।

2.2.4 नाड़ी संस्थान

व्यक्तित्व और व्यक्तित्व विकास के जैविक निर्धारकों में स्नायुमण्डल का प्रमुख स्थान है। ***जिन व्यक्तियों का स्नायुमण्डल अधिक विकसित होता है उनकी बुद्धि कुछ अधिक होती है और उनमें समायोजन करने की क्षमता भी अधिक मात्रा में पायी जाती है। उनमें आत्म–विश्वास भी अधिक होता है।*** यह भी देखा गया है कि जिनका नाड़ी संस्थान कम विकसित होता है उनकी बुद्धि कम विकसित और समायोजन दुर्बल होता है। अनेक बार वे समाज में उपेक्षित रहते हैं।

मानव शरीर के नाड़ी संस्थान को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया जाता है – (i) केन्द्रीय नाड़ी संस्थान (ii) स्वचालित नाड़ी संस्थान (iii) सीमान्त नाड़ी संस्थान। केन्द्रीय नाड़ी संस्थान में स्थित मस्तिष्क का प्रमुख कार्य ज्ञानेन्द्रिय, श्रवण, दृष्टि, स्पर्श आदि से संबंधित कार्यों का संचालन और नियंत्रण है। वृहद मस्तिष्क के साथ लघु मस्तिष्क भी ऐच्छिक गतियों का संचालन करता है। लघु मस्तिष्क का कार्य विशेषकर शरीर के विभिन्न शारीरिक स्थितियों बैठने, चलने, खड़े होने आदि आसनों पर नियंत्रण करना है।

मस्तिष्क में स्थित थैलेमस और हायपोथैलेमस दो ऐसे महत्वपूर्ण अंग हैं जिनकी भूमिका व्यवहार और व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं।

1. हायपोथेलेमस भूख, प्यास, शारीरिक तापमान, सुख–दुःख, विभिन्न संवेगों, यौन से संबंधित क्रियाओं का नियंत्रण व संचालन करता है।
2. हायपोथेलेमस के पृष्ठभाग की क्रियाशीलता के कारण हृदयगति, रक्तचाप, नाड़ी गति तथा श्वास की क्रिया में वृद्धि हो जाती है। यह भाग चर्बी, कार्बोहाइड्रेट तथा जल तत्वों की पाचन क्रिया के संचालन में महत्वपूर्ण योगदान देता है।
3. हायपोथेलेमस के अग्रभाग के क्रियाशील होने से हृदयगति, रक्तचाप, नाड़ी गति तथा श्वास की क्रिया मंद हो जाती है। यह शरीर का तापमान बनाये रखता है तथा यौन अभिप्रेरणा का संचालन करता है।
4. अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के संचालन में भी हायपोथेलेमस की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

स्वचालित नाड़ी संस्थान भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित करता है। इसके दो विभाग हैं – अनुकम्पी और परानुकम्पी। अनुकम्पी विभाग व्यक्ति में उपस्थित शक्ति के स्रोतों को गतिशील बना देता है। विभिन्न परिस्थितियों में जब शक्ति की आवश्यकता होती है तो अनुकम्पी विभाग अधिक शक्ति उपलब्ध करवाता है। इसकी क्रियाशीलता के कारण आँखों की पुतलियाँ फैल जाती है, हृदय की गति बढ़ जाती है, रक्त में एड्रीनल ग्रन्थि का स्राव अधिक हो जाता है, यकृत से अधिक शर्करा रक्त में पहुंचाई जाती है। आंतों की क्रिया तथा गैस्ट्रिक क्रिया अवरुद्ध हो जाती है। फलस्वरूप व्यक्ति की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। इससे वह आपातकालीन स्थिति का सामना सरलता से कर सकता है। भय, क्रोध, आक्रमण जैसी संवेगात्मक अवस्थाओं में अनुकम्पी विभाग की भूमिका बहुत बढ़ जाती है।

नाड़ी संस्थान का ***परानुकम्पी विभाग व्यक्ति को उत्तेजित न कर शान्त करने की दिशा में कार्य करता है। अनुकम्पी द्वारा बढ़ाई गई आन्तरिक अतिक्रियाशीलता को कम करता है। ऊर्जा के व्यय को कम करता है।*** आमाशय, आंत आदि पुनः सक्रिय हो जाते हैं।

सीमान्त नाड़ी संस्थान की रचना ज्ञानवाही एवं क्रियावाही नाड़ियों से होती है। ज्ञानवाही नाड़ियों का कार्य वातावरण की सूचनाओं को और शरीर के विभिन्न अंगों की सूचनाओं को मस्तिष्क तक पहुंचाना है। दूसरी ओर क्रियावाही नाड़ियों का कार्य मस्तिष्क के निर्णयों और आदेशों को शरीर के विभिन्न अंगों तक पहुंचाना होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.2.5 अन्तःस्रावी ग्रन्थियां

व्यक्तित्व के विकास में अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का महत्व बहुत अधिक है। इनसे निकलने वाले स्रावों को हॉर्मोन्स कहा जाता है। ये स्राव सीधे रक्त में मिल जाते हैं और व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं –

पियूष ग्रन्थि (Pituitary Gland) – इस ग्रन्थि को मास्टर ग्रन्थि कहते हैं। इसके दो भाग होते हैं – अग्र एवं पश्च भाग। इसके अग्र भाग से निकलने वाले हार्मोन विभिन्न अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाले स्रावों को नियंत्रित करते हैं। साथ ही ***इस अग्र भाग के स्राव बचपन में बढ़ जाये तो व्यक्ति की लम्बाई असामान्य या दानवाकार हो जाती है और स्राव कम होने पर व्यक्ति बौना रह जाता है।*** शारीरिक विकास पर भी इसका प्रभाव बहुत अधिक पड़ता है। इस ग्रन्थि के पश्च भाग का कार्य रक्तचाप, वृक्क कार्य एवं वसा चयापचय को नियंत्रित करता है।

पीनियल ग्रन्थि (Pineal Gland) – यह मस्तिष्क में स्थित होती है। यह रहस्यमय ग्रन्थि है। प्राचीनकाल में इसको आत्मा व शरीर का सेतु माना जाता था। इसके कार्य व स्राव अभी भी रहस्यमय है। फिर भी यह अनुमान लगाया जाता है कि यह शारीरिक वृद्धि और युवावस्था को बनाये रखने में सहायक होती है।

गल ग्रन्थि (Thyroid Gland) – इस ग्रन्थि से थायरोक्सिन नामक हार्मोन स्रावित होता है। ***इसका प्रभाव शारीरिक और मानसिक विकास पर पड़ता है। इसकी कमी से व्यक्ति मंद बुद्धि और छोटे कद का रह जाता है। शरीर में दुर्बलता रहती है। स्मृति और चिन्तन का विकास नहीं हो पाता।*** जब इस ग्रन्थि की क्रियाशीलता अत्यधिक हो जाती है तो शारीरिक लम्बाई में वृद्धि तेजी से होती है। फलस्वरूप व्यक्ति अशान्त, चिन्तित, अस्थिर और चिड़चिड़ा दिखाई पड़ता है। व्यक्ति को भूख ज्यादा लगती है। शरीर का वजन कम होने लगता है।

उप–गल ग्रन्थि (Parathyroid Gland) – मटर के दाने के आकार की ये ग्रन्थियां थायराइड ग्रन्थि के अन्दर पाई जाती है। ***इस ग्रन्थि का स्राव रक्त में कैल्सियम की मात्रा को नियंत्रित करता है। इसके स्वस्थ रहने से हड्डियों व दांतों का विकास सामान्य रूप से होता है। शरीर संतुलित और तनावमुक्त रहता है।*** इस ग्रन्थि के असामान्य हो जाने से या स्राव के अभाव में सम्पूर्ण शरीर का अनुपात नष्ट हो जाता है। शरीर में ऐंठन तथा मरोड़ पैदा हो जाती है जिससे मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है।

थायमस ग्रन्थि (Thimus Gland) – यह ग्रन्थि सीने के अग्रभाग की गुहा में स्थित होती है। इसके कार्य तथा स्रावों के बारे में निश्चित जानकारी नहीं है फिर भी ऐसा माना जाता है कि यौवन से पूर्व यह यौन ग्रन्थि पर नियंत्रण रखती है। तत्पश्चात् यह ग्रन्थि सिकुड़ कर छोटी हो जाती है और लगभग अपना कार्य बन्द कर देती है।

अधिवृक्क ग्रन्थि (Adrenal Gland) – इस ग्रन्थि के स्रावों का व्यक्तित्व पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इस ग्रन्थि से निकलने वाला अधिवृक्कीय हॉर्मोन पुरुषों और स्त्रियों में सामान्य गुणों को बनाये रखता है। अधिक मात्रा में स्रावित होने पर स्त्रियों में पुरुषोचित गुणों को बढ़ा देता है। जैसे मूंछों के बाल आना, आवाज भारी होना आदि। संवेगात्मक परिस्थिति क्रोध, भय आदि से निपटने में इस स्राव का विशेष महत्व है। ***इससे व्यक्ति अपने आपको आपात परिस्थिति के साथ ठीक ढंग से समायोजित कर लेता है।*** अधिवृक्कीय हॉर्मोन के रक्त में मिलने से व्यक्ति में सक्रियता बढ़ जाती है। हृदयगति तथा श्वसन क्रिया बढ़ जाती है। पाचन क्रिया स्थगित हो जाती है। रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है। इन सभी शारीरिक परिवर्तनों का परिणाम यह होता है कि सांवेगिक रूप से सजग होकर व्यक्ति परिस्थिति का सामना करता है।

अधिवृक्क के हॉर्मोन की कमी से एडिसन नामक बीमारी हो जाती है जिससे शरीर में निर्बलता और शिथिलता बढ़ जाती है। चयापचय की क्रिया मंद पड़ जाती है, सर्दी–गर्मी सहने की क्षमता भी कम हो जाती है और चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अग्नाशय ग्रन्थि (Pancreas Gland) –यह ग्रन्थि इन्सुलिन का स्राव करती है। ***यह रक्त में शर्करा को पचाता है जिससे शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती है। इसकी कमी या अभाव में शर्करा का पाचन नहीं हो पाता जिससे मधुमेह नामक रोग हो जाता है।*** इससे व्यक्ति को चक्कर आते हैं, कार्य करने की क्षमता कम हो जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और भय की भावना बढ़ जाती है। दूसरी तरफ जब इन्सुलिन अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है तो रक्त में शर्करा की मात्रा जरूरत से ज्यादा कम हो जाती है। इस अवस्था को हायपोग्लिसेमिया कहा जाता है और ऐसी अवस्था में व्यक्ति चिन्तित नजर आता है। व्यक्ति में भ्रम तथा विभ्रम अधिक होने लगता है। कभी–कभी बेहोशी भी आ जाती है।

जनन ग्रन्थियाँ (Gonads) – इन ग्रन्थियों के स्रावों का भी व्यक्तित्व पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। इन्हीं हॉर्मोन्स के कारण पुरुषों में पुरुषोचित लक्षण जैसे दाढ़ी, मूंछ और आवाज आदि और स्त्रियों में स्त्रियोचित के लक्षणों का विकास होता है। कुछ अध्ययनों में यह भी देखा गया है कि इस ग्रन्थि के स्राव पर स्त्री और पुरुष के यौन अंगों का विकास और कार्य निर्भर होता है। यह देखा गया है कि इस ग्रन्थि के स्राव तथा स्त्री, पुरुष के यौन अंगों का विकास सामान्य नहीं होता है तो व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के विकार और रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि भिन्न–भिन्न अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का प्रभाव व्यक्तित्व के शारीरिक और मानसिक शीलगुणों के विकास पर काफी पड़ता है। यद्यपि ये सभी अन्तस्रावी ग्रन्थियां एक–दूसरे से स्वतंत्र होकर कार्य करती हैं फिर भी आपस में इन ग्रन्थियों की अन्तःक्रिया होती है। ***व्यक्ति के व्यक्तित्व के सम्यक् विकास के लिए यह आवश्यक है कि ग्रन्थियों का स्राव सामान्य रूप से निकले और उनमें परस्पर सन्तुलन बना रहे।***

3.1.6 समस्थिति (Homeostasis) –

समस्थिति का व्यक्ति पर काफी प्रभाव पड़ता देखा गया है। ***समस्थिति से तात्पर्य शरीर के आन्तरिक वातावरण में संतुलन और समन्वय से है। इसके अन्तर्गत रक्त में चीनी का स्तर, जल का संतुलन, ऑक्सिजन उपयोग, तापक्रम आदि में एक स्तर तक स्थिर समन्वय व संतुलन साधा जाता है।*** जब मानसिक या अन्य दैहिक कारणों से समस्थिति में गड़बड़ होती है तो असंतुलन की स्थिति बन जाती है। इससे व्यक्तित्व बहुत प्रभावी हो जाता है। ***समस्थिति की अवस्था में व्यक्ति शान्त, नियंत्रित और सामाजिक दृष्टि से वांछनीय व्यवहार करते देखा जाता है।*** वह समायोजित व खुशमिजाज देखा जाता है। समस्थिति में गड़बड़ी से व्यक्ति अशान्त, अनियंत्रित, चिड़चिड़ा हो जाता है उसका व्यवहार सामाजिक रूप से भी त्रुटिपूर्ण हो जाता है। पाचनतंत्र भी गड़बड़ा जाता है।

मार्टिन और विन्सेट (1960) के अनुसार रक्त में ऑक्सिजन की मात्रा कम होने से संवेगों में तीव्रता (Emotional outbursts), मानसिक संभ्रान्ति तथा आत्मावलोकन में कमी जैसे व्यवहार व्यक्ति में दिखाई देते हैं। स्टेगनर (1961) तथा मार्गन (1968) के अनुसार रक्त मं चीनी कम होने से मानसिक क्षमता प्रभावित होती है। मनोदशा (Moods) अस्थिर हो जाती है। चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है तथा समझ–बूझ की शक्ति कमजोर हो जाती है। दूसरी तरफ रक्त में चीनी बढ़ने से व्यक्ति विषादग्रस्त हो जाता है।

ग्रिन बर्ग और गिल्ली लैण्ड (1962) के अनुसार ***बी–कॉम्पलेक्स की अधिक कमी से व्यक्ति विषादग्रस्त, अधिक संवेगी और भावाविष्ट हो जाता है।*** लम्बे समय तक स्थिति रहने से मनस्ताप रोग (हिस्टीरिया) से ग्रस्त हो जाता है। होरविट्ट (1965) के अनुसार उच्च रक्तचाप से मनोविकृति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। गंभीर कुपोषण होने से मनोस्नायु विकृति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे विषाद चिड़चिड़ापन, सामान्य घबराहट, आत्म–निर्भरता में कमी तथा सामाजिक विलगाव जैसे शीलगुण उत्पन्न हो जाते हैं।

2.2.7 स्वास्थ्य

उत्तम स्वास्थ्य वाला व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक दिखाई देता है। उसका समायोजन भी अच्छा होता है। उसमें चिन्ता, विषाद, तनाव आदि कम मात्रा में पाये जाते हैं। कार्य करने की अभिप्रेरणा अपेक्षाकृत अधिक होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बीमारी और दुर्बल स्वास्थ्य व्यक्ति के समायोजन को भी दुर्बल कर देते हैं। उसकी समास्थिति भी गड़बड़ा जाती है। वह अनाकर्षक दिखाई देता है। उसमें कार्य करने की अभिप्रेरणा में कमी, चिन्ता और कुण्ठा की भावनाएं अधिक दिखाई देती हैं। यदि दूसरे लोग भी उसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखते हैं तब उसका आत्म–प्रत्यय बहुत प्रभावित होता है। चिन्ता के साथ संवेगात्मक संतुलन और संवेगात्मक समायोजन बिगड़ जाता है। अतः लम्बी बीमारी व्यक्ति के व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित करती है।

2.3.0 सांस्कृतिक निर्धारक

व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास पर संस्कृति की अहम् भूमिका होती है। ***संस्कृति का व्यक्तित्व पर प्रभाव जन्म से ही पड़ता है और यह प्रभाव जीवनपर्यन्त चलता रहता है।*** संस्कृति में परितर्वन बहुत कम होते हैं। इसकी प्रकृति अपेक्षाकृत स्थायी होती है। एक समाज के सभी व्यक्तियों की संस्कृति एक समान होती है। अतः उस समाज के सभी व्यक्तियों के व्यक्तित्व पर संस्कृति का प्रभाव समान रूप से पड़ता है।

संस्कृति हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है जो हमारे रहन–सहन, खान–पान, बोल–चाल, क्रिया–कलाप, मूल्य, कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन और सुखोपभोग में अभिव्यक्त होती है। अलग–अलग संस्कृति के मूल्य अलग–अलग होते हैं। प्राचीनकाल में भारतीय लोग धर्म परायण और आध्यात्मिक थे। आधुनिक भारतीय उतने आध्यात्मिक और धर्मपरायण नहीं है फिर भी उनमें आध्यात्मिक और धार्मिक मूल्य उच्च स्तर के हैं। इसका कारण हमारी संस्कृति का प्रभाव ही है। पाश्चात्य लोगों के लिए भौतिक एवं मानसिक मूल्य उच्च स्तर के हैं।

जन्मकाल से ही शिशु का पालन–पोषण तथा सामाजीकरण उसकी सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप होता है। जन्म के समय से ही बच्चा जिन प्रथाओं के बीच पैदा होता है वे प्रथाएं उसके अनुभवों और व्यवहारों को आकृति प्रदान करने लग जाती हैं। बच्चा बोलना सीखते ही अपनी संस्कृति का छोटा प्राणी बन जाता है। बड़ा होने पर सांस्कृतिक कार्यों में हिस्सा लेने लायक हो जाता है। वह धीरे–धीरे संस्कृति के आवश्यक व्यवहार, प्रतिमान, मूल्य, सामाजिक मानक और नियमों को सीखता है और उसके व्यवहार में निपुणता को प्राप्त करता है। उस संस्कृति के लोग भी ऐसे व्यवहारों के लिए समय–समय पर पुरस्कार और प्रोत्साहन देते हैं।

संस्कृति व्यक्तित्व या जीवन निर्माण के लिए कच्चा माल है। इसके अपर्याप्त होने पर विकास अधूरा रह जाता है, दूसरी तरफ परिपूर्ण रहने पर व्यक्ति के सामने विकास की संभावनाएं खुल जाती हैं। इस प्रकार संस्कृति के व्यक्ति पर व्यापक प्रभावों के कारण समाज में स्थिरता और संस्कृति में निरन्तरता आती है। दूसरी ओर व्यक्ति भी संस्कृति को प्रभावित करता है जिसके फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तन आते हैं।

बोध प्रश्न

1. शारीरिक रसायनों से व्यक्तित्व किस प्रकार प्रभावित होता है ?
2. नाड़ी संस्थान का व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है।
3. व्यक्ति की लम्बाई असामान्य या दानवाकार क्यों हो जाती है ?
4. थॉयराइड व पैरा–थॉयराइड ग्रन्थि का व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
5. बी.कॉम्पलेक्स की कमी से क्या होता है ?
6. संस्कृति का व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

2.4.0 पारिवारिक निर्धारक तत्त्व

परिवार का व्यक्तित्व पर काफी गहरा प्रभाव पड़ता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति परिवार में ही समय व्यतीत है। जन्म से पूर्व बच्चे पर आनुवंशिकता का प्रभाव विशेष रहता है। जन्म के बाद सर्वप्रथम प्रभाव परिवार का होता है। परिवार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के प्रमुख सदस्यों की अभिवृत्तियाँ, मूल्य और व्यवहार का परिवार के नये सदस्य पर प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है। परिवार के सदस्यों का व्यक्ति के व्यवहार पर काफी नियंत्रण रहता है तथा परिवार के सदस्यों के बीच संवेगात्मक लगाव (Emotional attachment) बहुत मजबूत होता है। परिवार का व्यक्तित्व पर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों से प्रभाव पड़ता है। ***प्रत्यक्ष रूप से परिवार पालन–पोषण की विधियों द्वारा व्यक्तित्व में उचित मोड़ लाता है तथा परिवार के सदस्य परस्पर सम्पर्क एवं संचार द्वारा व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं।*** परोक्ष रूप से परिवार के सदस्यों के साथ तादात्म्य और अनुकरण करने से उसका व्यक्तित्व प्रभावित होता है।

2.4.1 माता–पिता का प्रभाव

जन्मकाल से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास प्रारम्भ हो जाता है। जन्म के समय सबसे पहले अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए माता पर निर्भर रहना पड़ता है। अतः माता द्वारा विवेकपूर्वक, कुशलता से देखभाल करने से बालक का व्यक्तित्व विकास उचित ढंग से होता है। ***आवश्यकताओं की उचित पूर्ति होने से बालक आगे चलकर आशावादी, कर्मवीर व परोपकारी बनता है। पर्याप्त स्नेह व आवश्यकताओं की पूर्ति न होने से बालक कर्महीन व निराशावादी बन जाता है।*** बाल्यकाल में तिरस्कृत रहने पर वह हीनभावना व असुरक्षा की भावना से पीड़ित रहता है। उसमें आत्मविश्वास की कमी रहती है। आगे चलकर वह परावलम्बी बन जाता है। वह छोटी–छोटी बातों के लिए दूसरों का मुंह ताकता रहता है। फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व का विकास उचित दिशा में नहीं होता।

माता–पिता के स्नेह एवं वात्सल्य भाव का सभी बालकों पर एक जैसा प्रभाव नहीं पड़ता है। इसमें बालकों की आन्तरिक प्रकृति और स्वभाव की भी भूमिका रहती है। माता–पिता की अवहेलना, उदासीनता और प्रताड़ना से कुछ बालक दब्बू बन जाते हैं तो कुछ दबंग, विद्रोही और उद्दण्ड भी बन सकते हैं।

2.4.2 घर के अन्य सदस्यों का प्रभाव

बालक के व्यक्तित्व पर घर के अन्य सदस्यों का काफी प्रभाव पड़ता है। घर में रहने वाले दादा–दादी या नाना–नानी, ताऊ–ताई, चाचा–चाची, मामा–मामी, बड़े भाई–बहन, आदि के व्यवहारों को देखता है और सीखता है। वे उनके लिए आदर्श रूप होते हैं अतः उनके साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं एवं उनके व्यवहारों का अनुकरण करते हैं। ***यदि घर का संवेगात्मक/भावात्मक वातावरण शान्त व सहयोगपूर्ण है तो बालक भी अपनी समस्याओं को शान्ति से निपटाने की कला सीखता है। उसका व्यक्तित्व सहनशील, सहयोगपूर्ण एवं सामाजिक बनता है। दूसरी ओर जब पारिवारिक सदस्यों में परस्पर स्नेह व सौहार्द समाप्त हो जाता है, कलह रहता है तो परिवार का आपसी संगठन और सहयोग टूट जाता है, खींचातान प्रारम्भ हो जाती है,*** आपसी विश्वास कम हो जाता है और सदस्यों में अहं की भावना बढ़ जाती है। व्यक्ति का समायोजन गड़बड़ा जाता है।

यदि परिवार में बालक को आवश्यकता से अधिक लाड़–प्यार मिलता है तो वह शरारती व जिद्दी हो जाता है। इससे वह निर्भीक और साहसी भी बन सकता है अथवा वह सीमाओं को लांघकर समाज विरोधी व्यवहारों को सीख सकता है। इससे उसका व्यक्तित्व विकास उचित रूप में नहीं हो पाता।

यदि पारिवारिक सदस्यों में आपराधिक प्रवृतियाँ हैं तो बालक में भी आपराधिक प्रवृतियाँ जन्म लेती हैं और आगे चलकर वह बालक सामाजिक अपराध करने लगता है। इसी प्रकार भग्न परिवार भी किशोर अपराध का मुख्य कारण है।

2.4.3 व्यक्तित्व पर जन्म क्रम का प्रभाव

प्रायः परिवार के छोटे–बड़े या सबसे छोटे या सबसे बड़े के प्रति एक सा व्यवहार नहीं किया जाता। ***यदि अन्तिम जन्म क्रम वाला बच्चा परिवार में यह देखता है कि उसे प्रथम क्रम वाले बच्चे की तुलना में कम महत्व दिया जाता है तो इससे उसके प्रथम जन्म क्रम वाले बच्चे से संबंध तो खराब होंगे ही साथ ही साथ माता–पिता के साथ विद्वेष उत्पन्न होगा।***

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

परन्तु वह प्रथम जन्म क्रम वाले बच्चे के समान ही व्यवहार अपने प्रति भी माता–पिता द्वारा करते देखता है तो इससे माता–पिता के साथ स्नेह एवं प्रथम जन्म क्रम वाले बच्चे के साथ सहयोग करने की भावना का जन्म होता है।

परिवार द्वारा प्रत्येक बालक से की गई अपेक्षाओं, आशाओं एवं उम्मीदों का भी बालक के व्यक्तित्व पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। बालक इन प्रत्याशाओं के अनुरूप अपने आपको मोड़कर अपने व्यक्तित्व में सार्थक परिवर्तन लाता है तथा महत्वपूर्ण शीलगुणों का विकास करता है। ***जब बच्चे माता–पिता के इन प्रत्याशाओं के प्रति समरूपता दिखाने में असमर्थ होते हैं तो उनमें चिन्ता, विद्वेष तथा आक्रामकता जैसे शीलगुणों का विकास हो जाता है।***

प्रथम जन्मक्रम वाले बच्चों पर माता–पिता का ध्यान, निर्देश तथा उत्तम उपलब्धि आदि के लिए दबाव अधिक होता है जिसका परिणाम यह होता है कि ऐसे बच्चों में गंभीरता, उत्तरदायित्व का भाव, पारस्परिक संवेगात्मक संबंधों की मजबूती, पारिवारिक निष्ठा, कर्तव्यनिष्ठा जैसे शीलगुणों का विकास होता है। अतः इनकी उपलब्धियां भी अधिक रहती हैं। इसके अतिरिक्त वे स्व–केन्द्रित, स्वार्थी, रोब दिखाने वाले भी होते हैं।

प्रायः मध्यम क्रम वाले बच्चे अधिक बहिर्मुखी एवं सामाजिक होते हैं। ये बच्चे काफी महत्वाकांक्षी एवं उपलब्धि उन्मुख होते हैं। अन्तिम क्रम वाले बच्चे यह सोचने के लिए बाध्य होते हैं कि वे छोटे हैं। अतः उनमें हीनता और अपर्याप्तता का भाव विकसित होने लगता है। फलतः उनमें दूसरों पर निर्भरता, आत्मविश्वास की कमी, कुण्ठा, सहने की अक्षमता, अधिकारियों की बातों को न मानने की प्रवृत्ति, समय समय पर संकट उत्पन्न करने की आदत आदि मुख्य रूप से होती है। ***इनमें आगे बढ़ने की अभिप्रेरणा एवं उपलब्धियां अन्य बच्चों की तुलना में अधिक देखी जाती है।*** जहां इकलौता बच्चा होता है, उनमें परस्पर प्रतियोगिता का प्रश्न तो नहीं रहता अनेक बार कुछ बिन्दुओं पर उनकी प्रतियोगिता अपने पिता से हो जाती है। ऐसे बच्चे भी स्व–केन्द्रित व दूसरों पर अधिक निर्भर पाये जाते हैं।

अनुसंधानकर्ताओं ने प्रत्येक जन्मक्रम के बालक में एक सी व समान संख्याओं में उलझने पाई हैं। एडलर के अनुसार व्यक्ति अपनी जीवनशैली बहुत कुछ परिवार में प्रारम्भिक जीवन से ही निश्चित कर लेता है परन्तु यह मानने के निश्चित प्रमाण नहीं है कि बचपन की यह शैली आजीवन अपरिवर्तित रहती है। अर्थात् बाद में जीवनशैली बदल भी जाती है।

2.5.0 शैक्षिक निर्धारक

बालक का अधिकांश समय परिवार के बाद स्कूल में व्यतीत होता है। 4–5 साल की उम्र तक परिवार के पालन–पोषण द्वारा व्यक्तित्व को ढाला जाता है और फिर उसके बाद स्कूल में शिक्षकों द्वारा तैयार किया जाता है। शिक्षण संस्थानों एवं उनसे संबंधित कारकों का व्यक्तित्व विकास एवं शीलगुणों के निर्माण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

2.5.1 शिक्षा का प्रभाव

विद्यालय में जिस प्रकार की शिक्षा एवं जीवन–मूल्यों को महत्व दिया जाता है बच्चे वैसे ही मूल्यों को ग्रहण करते हैं। इन्हीं मूल्यों का बालकों में विकास होता है। बच्चे जिस प्रकार के मूल्य सीखते हैं उसी रूप में उनका आत्म–प्रत्यय विकसित होता है।

कई अंग्रेजी भाषा के विद्यालयों में अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त मातृभाषा या अन्य भाषा बोलने नहीं दी जाती है। ऐसी स्थिति में बालक पर मानसिक दबाव बढ़ जाता है तथा उसमें निराशा एवं कुण्ठाएं उत्पन्न हो जाती हैं। इससे आगे चलकर बालक के व्यक्तित्व विकास में तथा समायोजन में बाधा आती है।

अनुशासन का आत्म–प्रत्यय पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। जब स्कूल का अनुशासन प्रजातंत्रात्मक प्रकार का होता है तो बालकों में सृजनात्मकता, सहनशीलता और समझ–बूझ अधिक उत्पन्न होती है। दूसरी ओर स्कूल का प्रशासन यदि स्कूल में सत्तावादी (Authoritarian) अनुशासन रखता है तब बालकों में सत्तावादी गुण विकसित होते हैं। इसके फलस्वरूप व्यक्ति का व्यक्तित्व और व्यवहार प्रभावित होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शिक्षा के प्रति छात्र की अभिवृत्ति का भी उसके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जब शिक्षा के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति होती है तो छात्र में पूर्ण मनोयोग से पढ़ने और आगे बढ़ने की प्रवृत्ति पाई जाती है। वे पूर्ण समायोजन करते हैं। नकारात्मक अभिवृत्ति होने से या रूचि न होने से वे मन लगाकर नहीं पढ़ पाते हैं, अंक भी कम आते हैं। समायोजन भी बिगड़ जाता है। वे एक दिन स्कूल का त्याग कर देते हैं।

आज की शिक्षा प्रणाली में शारीरिक व बौद्धिक विकास पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया है। मानसिक और भावनात्मक विकास पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया गया है। इससे पुस्तकों की संख्या और बस्ते के बोझ में भारी वृद्धि हुई है। बच्चों का इससे सर्वांगीण विकास नहीं हो रहा है। व्यक्तित्व के संतुलित एवं सर्वांगीण विकास के लिए मूल्यपरक शिक्षा, अध्यात्म–योग आधारित प्रायोगिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए।

2.5.2 शिक्षकों का प्रभाव

माता–पिता के बाद शिक्षक का प्रभाव व्यक्तित्व निर्माण पर सर्वाधिक होता है। बालक परिवार में जैसे माता–पिता के साथ तादात्म्य कर लेता है वैसे ही शिक्षक के साथ भी तादात्म्य कर लेता है। ***यदि शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली हो तो बालक के व्यक्तित्व विकास पर उसका अनुकूल प्रभाव पड़ता है।*** कई बार बालक शिक्षकों के नकारात्मक गुण सीख जाता है। शिक्षकों द्वारा बीड़ी, सिगरेट मंगवाना और उनकी उपस्थिति में प्रयोग करना घातक है क्योंकि इसका तादात्म्य कर बालक बीड़ी–सिगरेट पीना सीख जाता है। यदि शिक्षक में अच्छे गुण हैं तो बालक भी उन गुणों का तादात्म्य कर लेता है, फलस्वरूप बालक के व्यक्तित्व विकास में वे गुण जुड़ जाते हैं।

छात्रों के व्यक्तित्व पर शिक्षक–छात्र संबंधों का बहुत गहरा असर पड़ता है। शिक्षक की सांस्कृतिक रूचियां, छात्र के प्रति मनोवृत्ति, शिक्षण प्रविधि, वर्ग–नियंत्रण, शिक्षक का वैयक्तिक समायोजन, शिक्षक द्वारा विशेष छात्र के प्रति दिखाई गई अनुकूलता आदि शिक्षक–छात्र के संबंधों को प्रभावित करते हैं। ***जब छात्र शिक्षक के साथ संबंध को मधुर एवं मैत्रीपूर्ण अनुभव करते हैं तब उनकी शैक्षिक उपलब्धि अधिक अच्छी होती है।*** छात्र अपने आपको शिक्षक की नजर में जैसा पाते हैं, वे स्कूल के बाहर भी वैसा ही व्यवहार करते हैं। लेविन तथा उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययन में पाया कि आवेगशील शिक्षक (Impulsive teacher) अपने छात्रों में स्कूल के बाहर आवेगशील व्यवहार करने की प्रेरणा जगाते हैं जबकि अनुभव एवं सांवेगिक रूप से स्थिर शिक्षक छात्रों में स्कूल से बाहर स्थिर एवं सकारात्मक व्यक्तिगत संबंधों को मजबूत करने से संबंधित व्यवहार करने की प्रेरणा जगाते हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि शिक्षक की मनोवृत्ति तथा व्यवहार का प्रभाव छात्रों के व्यक्तित्व विकास पर काफी पड़ता है।

2.5.3 सहपाठियों का प्रभाव

बालक के व्यक्तित्व विकास पर उसके सहपाठियों या विद्यालय के साथियों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। कई बार बालक अभद्र बालकों के व्यवहार को सीख जाता है जिससे गाली–गलौच, विद्यालय से भागने, शिक्षकों तथा माता–पिता के साथ अभद्र व्यवहार करना सीख जाता है जो उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। ***जो छात्र वर्ग के कार्य में लगातार एवं मूलरूप से तन–मन से लगा रहता है ऐसे छात्र की अपने साथियों के बीच पर्याप्त मान्यता होती है। वे अपना स्वयं का मूल्यांकन अधिक अच्छे ढंग से करते हैं। उनमें आत्मसम्मान का भाव भी अधिक होता है। वह अपने आपको योग्य बालक समझता है।*** इस तरह के विश्वास से सतत पुनर्वलित होकर वह एक अनुकूल आत्म–संप्रत्यय विकसित कर लेता है। इससे किसी कारण से परिवार में बने नकारात्मक आत्म–संप्रत्यय में भी सुधार हो जाता है। दूसरी तरफ जिस छात्र के व्यवहार को पसन्द नहीं किया जाता तो वह अपने बारे में सकारात्मक नहीं सोचता बल्कि नकारात्मक सोच विकसित कर लेता है। यदि शिक्षक भी अस्वीकृत कर लेते हैं तो उसमें हीनता व अपर्याप्तता का भाव विकसित हो जाता है। धीरे–धीरे इससे उसका आत्म–संप्रत्यय नकारात्मक बन जाता है और व्यक्तित्व को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।

2.5.4 शिक्षण संस्थान का वातावरण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शिक्षण संस्थान का भौतिक वातावरण वायु, ध्वनि या अन्य किसी कारण से प्रदूषित है तो बालकों के स्वास्थ्य पर बूरा असर पड़ सकता है। यदि विद्यालय ऐसे मौहल्ले में स्थित है जहां समाजकंटक, जैसे– शराबी, जुआरी, वेश्यावृत्ति करने वाले और चोरी करने वाले रहते हैं, वहां पर पढ़ने वाले छात्रों के व्यक्तित्व पर बुरा असर पड़ेगा। बालक समाज विरोधी आदतें सीख सकता है। ***यदि विद्यालय का भवन स्वच्छ नहीं है, जीर्ण–शीर्ण है तो वहां पढ़ने वाले बच्चों में भवन के ढह जाने का भय रहता है, उनमें असुरक्षा की भावना, चिन्ता व व्याधियां उत्पन्न हो सकती है जो उनके व्यक्तित्व विकास में बाधक होती है।***

इसी प्रकार शिक्षण संस्थान का भावात्मक या संवेगात्मक वातावरण अच्छा नहीं है। अर्थात् शिक्षक, छात्र और प्रशासन में तालमेल नहीं है तो उससे छात्रों के व्यक्तित्व पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। इससे छात्र की सहपाठियों, शिक्षकों और प्रशासन के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति नहीं होगी, उसका मनोबल गिर जायेगा, उसमें भय, चिन्ता व तनाव उत्पन्न हो जायेगा। इससे उसके व्यवहार और व्यक्तित्व पर बुरा असर पड़ेगा। इसके विपरीत वातावरण अच्छा रहता है तो शिक्षार्थियों का मनोबल बढ़ता है एवं संस्थान, शिक्षक व सहपाठियों के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति उत्पन्न होती है।

बोध प्रश्न

1. परिवार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति को किस प्रकार प्रभावित करता है ?
2. परिवार में बालक की आवश्यकताओं की पूर्ति उचित मात्रा में होने या न होने से व्यक्तित्व पर क्या असर पड़ता है ?
3. माता–पिता द्वारा प्रथम व अन्तिम क्रम वाले बच्चों के प्रति व्यवहार में समानता नहीं होती है तो उससे बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
4. माता–पिता की आशाओं के अनुरूप जब बच्चे समरूपता दिखाने में असमर्थ होते हैं तो उनमें किस प्रकार के शीलगुणों का विकास होता है ?
5. शिक्षा के प्रति छात्र की अभिवृत्ति/अभिरूचि का उस पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
6. छात्र के व्यक्तित्व पर शिक्षक के व्यक्तित्व का क्या प्रभाव होता है ?
7. शैक्षिक कार्यों में तन–मन से लगे रहने वाले बालक का व्यक्तित्व कैसा होता है ?
8. सहपाठियों का छात्र के व्यक्तित्व पर कैसा असर पड़ता है ?
9. शिक्षण संस्थान के भावात्मक वातावरण का छात्र–छात्राओं के व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है?

2.6.0 मनोवैज्ञानिक निर्धारक

शिक्षा आदि के द्वारा व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का विकास होता है। इनका शिक्षा पूर्णता के बाद भावी जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है।

व्यक्ति के आन्तरिक तत्त्वों में जैसे जैविक तत्त्वों का व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। वैसे ही व्यक्ति के भीतर के आन्तरिक तत्त्व बुद्धि, संवेग, आकांक्षाओं आदि का भी व्यक्ति के शीलगुणों (traits), चित्त प्रकृतियों के विकास पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले अन्यान्य कारक तत्त्वों पर व्यक्ति का नियंत्रण बहुत कम होता है। किन्तु मनोवैज्ञानिक कारक तत्त्वों पर व्यक्ति अपना नियंत्रण कर सकते हैं। इनका विकास व्यक्ति स्वयं कर सकता है। शिक्षा काल व उसके बाद जीवन भर इनका सही उपयोग कर अपने व्यक्तित्व में उत्तरोत्तर निखार ला सकता है।

2.6.1 बौद्धिक निर्धारक

शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का बौद्धिक विकास तेजी से होता है। 12 वर्ष के बाद उच्च मानसिक शक्तियां तर्क (Reasoning Power), स्मृति आदि तेजी से विकसित होने लगते हैं। ***जो लोग तीव्र बुद्धि के होते हैं, उन्हें माता–पिता, शिक्षक, साथीगण द्वारा काफी पसन्द किया जाता है। इस तरह के सम्मान से उनमें आत्म–सम्मान और आत्म–विश्वास उत्पन्न होता है*** और वे प्रायः अपनी बौद्धिक क्षमताओं का उपयोग उत्तम व्यक्तिगत व सामाजिक समायोजन में करते हैं। इनमें श्रेष्ठता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व उपाय कुशलता (Resourcefulness) उत्पन्न होती है। वे लोग अपने को सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने में सक्षम समझते हैं। अन्य लोग भी उन्हें योग्य समझते हैं। अन्य लोगों की तुलना में अधिक सक्षमता के साथ–साथ सांवेगिक रूप से स्थिर, उत्तरदायी एवं महत्वाकांक्षी होने पर प्रायः उन्हें लोग नेतृत्व भूमिका निभाने का भी अवसर प्रदान करते हैं।

इस दिशा में हुए अध्ययनों में यह भी देखा गया है कि इनमें से कुछ लोगों में नकारात्मक गुण भी पाये जाते हैं, जैसे– असहिष्णुता, नकारात्मकता, चालाकी, संवेगात्मक संघर्ष आदि। दूसरी ओर जिन व्यक्तियों का बौद्धिक स्तर कम होता है उनमें आकांक्षा में कमी, उदासीनता, लज्जापन आदि लक्षण पाये जाते हैं। समाज के सभी लोगों में प्रायः कुछ न कुछ मात्रा में सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक मूल्य होते हैं। प्रबल अभिरूचि पैटर्न को मूल्य कहा जाता है। अधिक बौद्धिक क्षमता वाले लोगों की चयन क्षमता अच्छी होती है अतः वे प्रचलित अच्छे मूल्यों को अपना कर अपने जीवन को अधिक सार्थक बनाने का प्रयास करते हैं, उनका समायोजन भी उत्तम होता है। ***व्यक्ति में धार्मिक मूल्यों से स्थिरता तथा सुरक्षा का भाव उत्पन्न होता है। धार्मिक मूल्यों को पूर्णतः स्वीकार करने पर उसकी सामाजिक प्रतिमा मजबूत होती है। लोग उसके प्रति अनुकूल निर्णय करते हैं। इससे समायोजन की क्षमता में वृद्धि होती है।***

2.5.2 संवेगात्मक निर्धारक

व्यक्ति की अभिरूचि, अभिवृत्ति, मूल्य और व्यवहार आदि को व्यक्ति के विभिन्न संवेग महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं। ***व्यक्ति जितना अधिक संवेग की स्थिति में रहता है, उसकी शारीरिक समस्थिति की संतुलन की अवस्था उतनी ही अधिक बिगड़ जाती है।*** यह भी होता है कि व्यक्ति की संवेगात्मक अभिव्यक्ति कभी–कभी अवररुद्ध हो जाती है तब उसके समायोजन पर विपरीत असर पड़ता है। शरीर में पाचन विकृति, उच्च रक्तचाप, हृदय विकृति, चर्म विकृति, अनिद्रा और सिरदर्द जैसे लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। तीव्र संवेगात्मक अवस्था में मानसिक क्षमता जैसे तर्कशक्ति (reasoning power) की शक्ति कम हो जाती है। अति तनाव, चिन्ता व कुण्ठा की स्थिति में कार्य क्षमता कम हो जाती है। सकारात्मक संवेग, स्नेह, प्रेम, वात्सल्य आदि से सकारात्मक अभिवृत्तियों का विकास होता है।

2.6.3 आकांक्षा एवं उपलब्धि सम्बद्ध निर्धारक (Aspirations and achievement related determinants)

व्यक्ति की आकांक्षा एवं उपलब्धि से सम्बद्ध कारकों को व्यक्तित्व विकास का ***प्रमुख कारक*** माना गया है। यहां आकांक्षा का अर्थ सामान्य इच्छा या अभिलाषा मात्र से नहीं है। ***यहां 'आकांक्षा' एक ऐसा लक्ष्य है जिसे व्यक्ति अपनी जीवन की सार्थकता एवं उन्नति के लिए निर्धारित करता है।*** जब एक व्यक्ति की आकांक्षाएं (लक्ष्य) वास्तविकता, रुचि और मूल्यों पर आधारित होते हैं तो उनके पूरी होने की संभावना बहुत अधिक होती है। उसमें कार्य करने व निष्पत्ति तक ले जाने की तीव्र अभिप्रेरणा भी पाई जाती है। उसका समायोजन भी अच्छा होता है। उसका आत्म–संप्रत्यय अर्थात् स्वयं के प्रति सोच भी सकारात्मक होती है। उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में सकारात्मक विशेषताओं का विकास होता है। दूसरी ओर जो आकांक्षाएं अथवा लक्ष्य पारिवारिक एवं सामाजिक दबाव में बनते हैं बहुधा उन आकांक्षाओं के पूरी होने की संभावना कम होती है। इससे व्यक्ति असफलता का अनुभव करता है।

लक्ष्य प्राप्ति, उपलब्धि या सफलता से प्रसन्नता, संतुष्टि, आत्म–सम्मान और आत्म–विश्वास में वृद्धि होती है। इससे वह अपने व्यवहार को उचित समझता है। उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। वह शान्ति का अनुभव करता है। सफलता से व्यक्ति लक्ष्य निर्धारण करना सीखता है। अपनी क्षमताओं और प्रयत्नों की वास्तविक स्थिति को सीखता है। सफलता की स्थिति में उसका समायोजन अच्छा रहता है। अधिक सफलता से कभी–कभी व्यक्ति पर विपरीत प्रभाव भी पड़ता है। वह प्रयत्न करना छोड़ देता है। उसकी उपलब्धियां रुक जाती है।

असफलता का भी व्यक्तित्व पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। असफलता से व्यक्ति यह अनुभव करने लगता है कि उसकी प्रतिष्ठा गिर गई है। अपनी योग्यता पर शंका करने लगता है। स्वयं के प्रति सोच नकारात्मक होने लगती है। व्यक्ति जब असफलता का कारण स्वयं को मानता है तो उसके आत्म–सम्मान और आत्म–विश्वास को धक्का लगता है। उसमें

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चिन्ता, कुण्ठा आदि उत्पन्न हो सकते हैं। इस अवस्था में व्यक्तित्व का विघटन प्रारम्भ हो जाता है। इस दिशा में हुए अध्ययनों में यह देखा गया है कि ***जिन व्यक्तियों में असफलता को भी सहने की क्षमता होती है। उनके व्यक्तित्व पर असफलता का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।*** व्यक्ति पुनः अपने प्रयत्नों से सफलता की ओर बढ़ जाता है। इस प्रकार लक्ष्य निर्धारण और प्राप्ति व्यक्ति के अपने हाथ में है। स्वयं द्वारा स्वयं के लिए सुविचारित लक्ष्य का निर्माण कर व्यक्ति अपना भाग्य–विधाता बन जाता है। अतः इसे व्यक्तित्व विकास का प्रमुख कारक माना गया है।

2.7.0 सामाजिक निर्धारक

प्रत्येक व्यक्ति का जन्म समाज में ही होता है। ***प्रत्येक समाज अपने सदस्यों से दो प्रकार के तथ्यों को सीखने की उम्मीद रखता है। पहला समाज द्वारा स्वीकृत उचित–अनुचित का बोध करके सामाजिकरण की प्रक्रिया से गुजरना। दूसरा सामाजिक भूमिकाओं को सीखना।*** जैसे व्यक्ति, पिता, पति, शिक्षक, छात्र, नेता आदि की भूमिका को सीखता है। एक व्यक्ति का व्यवहार जब सामाजिक उम्मीदों के अनुरूप होता है तथा सामाजिक भूमिका ठीक ढंग से निभाता है तो उसे पर्याप्त सामाजिक अनुमोदन एवं स्वीकृति प्राप्त होती है। इससे व्यक्तित्व के विकास पर काफी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। समाज व्यक्ति को जितना अधिक स्वीकार करेगा व्यक्ति उतना ही अधिक लोकप्रिय होगा। समाज के साथ उसकी अन्तःक्रिया बढ़ेगी तब व्यक्ति भी प्रसन्नचित्त, चिन्ता रहित, आत्मविश्वासी होता है। उसका आत्म सम्मान भी बढ़ जाता है। वह व्यक्ति भविष्य के प्रति आशावादी और उत्साही रहता है। उनमें मौलिकता और सृजनशीलता का भाव भी पुष्ट होने लगता है।

बालक का घर और परिवार से ही सबसे पहले उसका सामाजिक वातावरण होता है। घर, परिवार के अनुभव ही यह निश्चित करते हैं कि बालक की अनुभूतियां सुखद होगी या दुःखद। ***इन अनुभूतियों के आधार पर ही बालक में सामाजिक अभिवृत्तियों का निर्माण और विकास होता है। जब बालक की अनुभूतियां सुखद होती है तब बालक समाज के लोगों के प्रति उत्साहपूर्वक, मित्रतापूर्वक व्यवहार करता है, दूसरों की स्वीकृति और प्यार पाने की चेष्टा करता है,*** सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेना पसन्द करता है। इस अवस्था में बालक का समायोजन सुखद होता है। उसके व्यक्तित्व पर अनुकूल या सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। दूसरी ओर जब बालक की अनुभूतियां दुःखद होती है तो उसका अन्य लोगों के प्रति व्यवहार उत्साहजनक और मित्रतापूर्ण नहीं होता, सामाजिक व्यक्ति बनने की उसमें प्रेरणा उत्पन्न नहीं होती। समायोजन भी अच्छा नहीं होता। ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ऐसे व्यक्ति असामाजिक अथवा बाद में जाकर समाज विरोधी व्यक्तित्व विकसित कर लेते हैं।

शिक्षा ग्रहण के पश्चात लगभग 25 वर्ष की उम्र तक आते–आते व्यक्ति की असली परीक्षा समाज में होने लगती है। शिक्षा के बाद व्यक्ति अनेक नई–नई भूमिकाओं में आ जाता है। उस समय ***प्रत्येक सामाजिक पद या भूमिका की अपनी जवाबदेही, प्रत्याशा एवं निष्ठा होती है। समूह के सदस्य प्रत्येक अन्य सदस्य की सफलता का आकलन करके उसके द्वारा निभाये गये उत्तरदायित्व के आधार पर करते हैं।*** प्रत्येक सदस्य मनोवांछित पद या भूमिका को प्राप्त कर आत्मतुष्टि का अनुभव करता है। यदि कोई व्यक्ति अधिक सम्मानित कार्य करके अपने नेतृत्व को स्थापित करता है तो वह अधिक तुष्टि एवं गौरव का अनुभव करता है। श्रेष्ठता का भाव विकसित होता है। इससे सफलता, नेतृत्व के गुण जैसे आत्म–विश्वास, संवेग नियंत्रण की क्षमता आदि का विकास होता है। इससे उसका व्यक्तित्व गतिशील (dynamic) बन जाता है। यदि कोई व्यक्ति नेतृत्व या भूमिका निर्वहन से किसी कारण असफल हो जाता है तो उसके व्यक्तित्व में कड़वापन या प्रतिशोध लेने की भावना का विकास होने लगता है। कई तरह के संदेह विकसित होने लगते हैं। लगातार असफलता से हीनता की मनोग्रन्थि भी पैदा हो जाती है। धीरे–धीरे व्यक्ति में स्वैच्छिक विलगाव, अर्थात समाज व सामाजिक सम्पर्क से दूर रहने की भावना भी पैदा हो जाती है। वह स्व–केन्द्रित हो जाता है।

ऊपर किये गये वर्णन से यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व विकास में अजैविक तथा जैविक कारक अर्थात् पर्यावरणीय एवं मनोवैज्ञानिक कारकों का हाथ होता है। जैविक कारकों द्वारा मौटे तौर पर चारदिवारी का निर्माण होता है और चारदीवारी के भीतर व्यक्तित्व किस तरह से विकसित होगा, यह निर्भर करता है पर्यावरणीय कारकों का उपयोग, मनोवैज्ञानिक कारकों के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विकास में किस तरह किया जाता है। पर्यावरणीय कारकों पर स्वयं व्यक्ति का नियंत्रण बहुत कम होता है। व्यक्ति के अपने नियंत्रण में अपने मनोवैज्ञानिक कारक ही होते हैं। व्यक्ति अपने मनोवैज्ञानिक कारकों के विकास व नियंत्रण द्वारा अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। यह स्वयं उसके हाथ में ही है।

व्यक्तित्व = जैविक कारक + मनोवैज्ञानिक कारक + पर्यावरणीय कारक

बोध प्रश्न

1. बुद्धि के विकास का व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
2. व्यक्ति में धार्मिक मूल्य होने से उसे क्या लाभ मिलता है ?
3. तीव्र संवेग की स्थिति में व्यक्ति को क्या–क्या हानियां हो सकती है ?
4. व्यक्तित्व विकास का प्रमुख कारक किसे माना गया है ?
5. असफलता को सहने की क्षमता होने या न होने से व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
6. बालक में सामाजिक अभिवृत्तियों का निर्माण कैसे होता है ?
7. समूह के सदस्य अन्य सदस्यों की सफलता का आंकलन कैसे करते हैं ?

2.8 सारांश

- व्यक्तित्व के निर्धारण में माँ की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गर्भावस्था के दौरान माँ की मनःस्थिति, चिन्ता, तनाव, शान्ति, स्थिरता आदि का प्रभाव बालक के भावी मानसिक व बौद्धिक विकास पर पड़ता है। साथ ही हम देखते हैं कि सामान्यतया शारीरिक संरचना तो माता–पिता जैसी ही होती है।
- शरीर के अन्दर की स्थिति स्वास्थ्य, नाड़ी तन्त्र एवं ग्रन्थि तंत्र व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और भावात्मक स्थिति के निर्धारण में बहुत महत्त्पूर्ण भूमिका अदा करते हैं।
- व्यक्ति जिस संस्कृति में जन्म लेता है उस संस्कृति का प्रभाव उसके मूल्य निर्धारण पर पड़ता है। वह प्रभाव आजीवन उसके साथ रहता है। भारतीय संस्कृति के मूल्यों अहिंसा, शान्ति, असहिष्णुता आदि का स्पष्ट प्रभाव भारतीय नागरिकों पर देखा जा सकता है।
- व्यक्ति की कार्यशैली पर उसके माता–पिता व परिवार का गहरा असर पड़ता है। संगति व वड़ौसियों का भी व्यक्तित्व पर अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है।
- वर्तमान शिक्षा प्रणाली व्यक्ति के दैहिक बौद्धिक विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। भावनात्मक एवं मानसिक विकास भी शिक्षा के माध्यम से बहुत अच्छे ढंग से हो सकता है। इससे हमारे राष्ट्रीय चरित्र का विकास संभव हो सकेगा।
- बालक–बालिकाएं अनुकरणप्रिय होते हैं। शिक्षकों का व्यक्तित्व उनके लिए आदर्श होता है। जैसा शिक्षक करते हैं वैसा बालकों के कोमल मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव पड़ता है। वे उसका अनुसरण करने लग जाते हैं। शिक्षण संस्थानों के वातावरण का भी बालक के व्यक्तित्व पर अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है।
- संस्कृति, परिवार व शिक्षा के माध्यम से निर्मित व्यक्तित्व को प्रभावशाली व सार्थक बनाना व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक कारकों पर निर्भर है। युवावस्था में व्यक्ति स्वयं अपना सही लक्ष्य का निर्माण कर अपनी शारीरिक, मानसिक व भावात्मक क्षमताओं का उपयोग कर परिवार, समाज व राष्ट्र को अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर अपने व्यक्तित्व को प्रभावशाली व चिरस्मरणीय बना सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- व्यक्ति समाज की विभिन्न भूमिकाओं को सीखकर, उनकी अपेक्षाओं और आशाओं पर खरा उतर कर संतुष्टि, सफलता, आत्म–विश्वास और आत्म–सम्मान को विकसित कर सकता है। समाज भी अनुमोदन एवं स्वीकृति के माध्यम से उसके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव डालता है। उसको प्रेरित करता है।

2.9.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. कौनसी ग्रन्थि यौवन से पूर्व यौन ग्रन्थि पर नियंत्रण रखती है?
2. व्यक्तित्व विकास के लिए यह आवश्यक है कि सभी ग्रन्थियों का स्राव ..... रहे और उनमें ..... रहे।
3. यदि घर का भावात्मक वातावरण शान्त और सहयोगपूर्ण होता है तो बालक का व्यक्तित्व कैसा बनता है ?
4. शिक्षा के क्षेत्र मे व्यक्तित्व के संतुलित और सर्वांगीण विकास के लिए क्या किया जाना अपेक्षित है ?
5. समस्थिति किसे कहते हैं ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. व्यक्तित्व के विकास के लिए शिक्षा का आदर्श स्वरूप क्या होना चाहिए ?
2. प्रत्येक समाज अपने सदस्यों से क्या चाहता है एवं उसे कैसे प्रभावित करता है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. व्यक्तित्व विकास का प्रमुख कारक किसे माना गया है ? एवं उससे व्यक्तित्व किस प्रकार प्रभावित होता है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 1 व्यक्तित्व – विकास : एक परिचय

पाठ – 3 व्यक्तित्व विकास : अर्थ और स्वरूप

रूपरेखा

3.0.0 उद्देश्य
3.1.0 भूमिका
3.2.0 व्यक्त्वि विकास
3.3.1 व्यक्तित्व विकास का अर्थ
3.3.2 आत्म–प्रत्यय और शीलगुण
3.3.0 आत्म प्रत्यय
3.3.1 आत्म प्रत्यय की परिभाषा
3.3.2 आत्म प्रत्यय के अवयव
3.3.3 आत्म प्रत्यय के प्रकार
3.3.4 आत्म प्रत्यय का विकास
3.3.5 आत्म प्रत्यय की स्थिरता
3.4.0 शीलगुण
3.4.1 शीलगुण की परिभाषा
3.4.2 शीलगुण की विशेषताएं
3.5.0 शीलगुणों के प्रकार
3.5.1 सामान्य शील गुण
3.5.2 वैयक्तिक शील गुण
3.6.0 मानव व्यक्तित्व के प्रमुख शीलगुण
3.7.0 सारांश
3.8.0 अभ्यास प्रश्न

3.0.0 उद्देश्य

ज्ञानार्थियों ! पहले दो पाठों में पश्चिमी व पूर्वी विद्वानों के व्यक्तित्व विकास संबंधी विचारों का अध्ययन आपने किया।

इस अध्याय में व्यक्तित्व विकास का अर्थ, आत्म–प्रत्यय और शीलगुण, आत्म–प्रत्यय की परिभाषा, आत्म प्रत्यय के अवयव, आत्म–प्रत्यय के प्रकार, आत्म प्रत्यय का विकास, आत्म–प्रत्यय की स्थिरता का लाभ, शील गुण, इसकी परिभाषाएं एवं प्रकारों के बारें में आपकी जिज्ञासाएं पूर्ण की जाएंगी।

3.1.0 भूमिका

व्यक्तित्व की दृष्टि से व्यक्ति तीन प्रकार के हो सकते हैं – 1. विख्यात, 2. सामान्य, 3. कुख्यात। जिनके विशेष शीलगुण राष्ट्र स्तर पर या विश्व स्तर पर विकसित हो जाते हैं वह व्यक्तित्व राष्ट्र स्तर पर या अन्तराष्ट्रीय स्तर पर महान व्यक्तित्व का धनी बन जाता है जैसे – महात्मा गाँधी, आचार्यश्री महाप्रज्ञ। जिनके बाहरी या आन्तरिक गुण सामान्य स्तर के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

होते हैं। वे अपने–अपने सीमित क्षेत्र में सामान्य जान–पहचान बना पाते हैं। कुछ व्यक्तियों के दोष इतने पुष्ट हो जाते हैं कि कि वे विश्व में कुख्यात हो जाते हैं।

पश्चिमी व भारतीय मानसशास्त्रियों ने शीलगुणों, व्यक्तित्व विकास आदि बिन्दुओं पर गहरा चिन्तन, मनन कर कई परिभाषाएं इन बिन्दुओं पर स्थापित की। इस ज्ञान के आलोक में ज्ञानार्थी अपने आपको जानने में सक्षम होंगे। अपने व्यक्तित्व विकास को दिशा देने में भी सक्षम हो सकेंगे।

3.2.0 व्यक्तित्व–विकास : अर्थ और स्वरूप

व्यक्त्वि मनोविज्ञान के क्षेत्र में 'व्यक्तित्व विकास' का संप्रत्यय (Concept) आज भी इस दिशा में कार्यरत मनोवैज्ञानिकों के लिए उलझा हुआ विषय है क्योंकि व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया सरल न होकर जटिल प्रक्रिया है। 'व्यक्तित्व विकास' को समझने के लिए पहले यह समझना आवश्यक है कि मनोविज्ञान में विकास किसे कहते हैं ? विकास से तात्पर्य समय बीतने के साथ ***व्यक्तिगत परिपक्वता*** तथा पर्यावरण के बीच अन्तःक्रिया के परिणाम स्वरूप ***व्यक्ति की क्षमता*** आदि में होने वाली वृद्धि या वर्धन (Growth) से है। 'विकास' का अर्थ गुणात्मक परिवर्तन से है। इसका अर्थ केवल शारीरिक अभिवृद्धि जैसे वजन या लम्बाई बढ़ना मात्र नहीं है। इसके अन्तर्गत अनेक क्रियाओं तथा संरचनाओं का समावेश होता है। विकास की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है।

3.2.1 व्यक्तित्व विकास का अर्थ

व्यक्तित्व विकास का अर्थ है व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का विकास। यह विकास उत्तरोतर क्रम में आयु बढ़ने के साथ चलता रहता है। व्यक्तित्व विकास के संबंध में जो साहित्य व्यक्तित्व मनोविज्ञान के क्षेत्र में उपलब्ध है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि ***व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य व्यक्तित्व प्रतिमान (Personality Pattern) के विकास से है।*** व्यक्तित्व प्रतिमान में सभी मनोदैहिक तंत्र समाविष्ट हैं जिनसे व्यक्तित्व बना हुआ होता है। वे आपस में अन्तर्सम्बन्धित होते हैं और एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। ***व्यक्तित्व प्रतिमान दो मुख्य भागों या घटकों (Compponents) से मिलकर बना हुआ है।*** प्रथम घटक व्यक्तित्व का केन्द्रीय भाग (Core of Personality) जिसे आत्म–संप्रत्यय (Self Concept) कहते हैं। व्यक्तित्व प्रतिमान का दूसरा भाग जिसे शीलगुण (Trait) कहते हैं। ये सभी शीलगुण व्यक्तित्व के केन्द्रीय भाग से संबंधित होते हैं।

इसका एक उदाहरण से समझा जा सकता है। व्यक्तित्व प्रतिमान एक साईकिल के पहिये की तरह से है। पहिये का केन्द्र बिन्दु उसका हब है जिसे व्यक्तित्व का केन्द्रीय भाग कहेंगे। पहिये की तीलियां जो हब या केन्द्र से जुड़ी हुई हैं वे शीलगुण कहलाती हैं। व्यक्तित्व प्रतिमान का यह दूसरा प्रतिमान शीलगुण (Traits) पहले घटक आत्म–प्रत्यय से महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित होता है। व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य इन दोनों घटकों में होने वाले विकासात्मक परिवर्तन (Developmental Changes) से होता है। अतः यह आवश्यक है कि व्यक्तित्व विकास को समझने के लिए व्यक्तित्व प्रतिमान के दोनों घटकों को समझा जाये।

3.2.2 आत्म–संप्रत्यय और शीलगुण

व्यक्तित्व के अध्ययन में स्व या आत्म–प्रत्यय (Self of Self Concept) का केन्द्रीय स्थान है। भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों ही विद्वानों की राय एक रही है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए 'स्व' का विकास आवश्यक है, ***जितना अधिक व्यक्ति स्वयं को पहचानता है, उसका ठीक से मूल्यांकन करता है उतना ही अधिक उसका 'स्व' या 'आत्म–संप्रत्यय' का विकास होता है।*** किन्तु भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के दृष्टिकोण में 'स्व' के विकास या आत्म संप्रत्यय के विकास की अवधारणा एक समान नहीं है। भारतीय मनोविज्ञान में 'आत्मा' को अमर, अजन्मा, नित्य और शाश्वत कहा गया है। यह व्यक्तित्व का आध्यात्मिक पक्ष है। व्यक्तित्व का वास्तविक विकास इस तथ्य में निहित है कि व्यक्ति मनोदैहिक रूपी भौतिक आयाम से ऊपर उठकर आध्यात्मिक, चैतसिक आयाम को प्राप्त करे। आत्मा और परमात्मा के बीच संबंध उसी समय स्थापित होते हैं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जब व्यक्ति को आत्मज्ञान की अनुभूति होती है। वह व्यक्ति सतत अपनी आत्मा के प्रति सचेतनता और जागरूकता से अपने व्यक्तित्व को भौतिक आयाम से उन्नत कर आध्यात्मिक आयाम की ओर उन्मुख कर लेता है।

पश्चिमी मनोवैज्ञानिक भी व्यक्तित्व के सन्दर्भ में आत्म–संप्रत्यय या स्व (Self) को प्रधानता देते हैं। यहां आत्म संप्रत्यय के अध्ययन में भौतिकवादी दृष्टिकोण की प्रमुखता है। चैतसिक या आध्यात्मिक शक्तियों को यहां स्थान नहीं है। 'स्व' के सूक्ष्म एवं आन्तरिक चेतना से संबंधित तत्त्वों की उपेक्षा है।[1] जब तक 'आत्म–संप्रत्यय' की व्याख्या दार्शनिक आधार पर नहीं की जायेगी तब तक व्यक्तित्व के संदर्भ में उसके वास्तविक महत्व का ज्ञान नहीं हो सकता। आत्म–संप्रत्यय की धारणा में व्यक्तित्व के पश्चिमी सिद्धान्त भौतिक, मानसिक तथा संवेगात्मक स्तर तक ही जा पाये हैं।

व्यक्ति के आत्म–प्रत्यय से उसके शीलगुण का विकास सीधे प्रभावित होता है। जैसे ***यदि व्यक्ति का आत्म–संप्रत्यय सकारात्मक होता है तो व्यक्ति में आत्म–विश्वास, आत्म–सम्मान तथा अपने आपको यथार्थपूर्ण संदर्भ में मूल्यांकन करने की क्षमता विकसित होती है। इससे उसमें उत्तम सामाजिक समायोजन की क्षमता विकसित होती है।*** दूसरी तरफ यदि आत्म–संप्रत्यय नकारात्मक होता है तो व्यक्ति में आत्महीनता, असंतोष तथा अपर्याप्तता का भाव विकसित हो जाता है। वह हमेशा अनिश्चित होकर व्यवहार करता है तथा उसमें आत्म–विश्वास की कमी पायी जाती है। इससे उसके वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों ही समायोजन पर बूरा असर पड़ता है।

बोध प्रश्न

7. व्यक्तित्व विकास का क्या अर्थ है ?
8. सकारात्मक आत्म–संप्रत्यय होने पर व्यक्तित्व में कौन–कौन से गुण विकसित होते हैं ?

3.3.0 आत्म–संप्रत्यय

पाश्चात्य जगत् में सर्वप्रथम विलियम जेम्स (1899) ने कहा कि व्यक्तित्व प्रतिमान का केन्द्र बिन्दु है – आत्म (Self)। फ्रायड ने इसी आत्म को अहम् (Ego) कहा है। सुलीवान ने आत्म को आत्म–तन्त्र (Self-system) कहा है। आत्म–प्रत्यय के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए अनेक शब्दों का उपयोग किया गया है, जैसे गुरुत्वाकर्षण केन्द्र (Center of gravity), व्यक्तित्व की कुंजी (Keystone of personality) आदि। आत्म–प्रत्यय व्यक्ति के व्यवहार तथा जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में उसके समायोजन को भी महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। ***यह व्यक्तित्व को स्थिरता प्रदान करता है।*** इससे व्यक्ति अपनी पहचान स्थापित करता है। उसे यह भी पता चलता है कि वह वातावरण के अन्य सभी पहलुओं से भिन्न है।

3.3.1 आत्म–संप्रत्यय की परिभाषा

मनोविज्ञान में विशेषकर रोजर्स ने 'आत्मन्' (self) या आत्म–संप्रत्यय को पर्यायवाची पद मानकर इसका उपयोग किया है। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने 'आत्मन्' पद का अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया है, जैसे –

बर्न्स (Burns, 1980) के शब्दों में, ''हम लोग अपने बारे में क्या सोचते हैं, दूसरे लोग हमारे बारे में क्या सोचते हैं तथा हम क्या होना चाहते हैं, की एक समग्र तस्वीर ही 'आत्मन्' है।

कोलहोन तथा एक्लोटेला (1978) के शब्दों में, '' आपका आत्म–संप्रत्यय आपका मानसिक प्रारूप है। इसमें आपका अपने बारे में ज्ञान, आपकी प्रत्याशाएं एवं ज्ञान सम्मिलित होता है।''

उक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें 'आत्मन्' के स्वरूप के बारे में निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं –

1 **सीताराम जायसवाल, व्यक्तित्व मनोविज्ञान, पृ. 4**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

i. आत्मन् में व्यक्ति को अपने बारे में एक संगठित प्रत्यक्षण होता है। दूसरे शब्दों में, इसमें व्यक्ति को यह पता होता है कि वह क्या है, उसमें कौन–कौन से शीलगुण हैं, उसकी कौन–कौन सी सीमाएं हैं, उसकी आयु, लिंग, राष्ट्रीयता, पेशा क्या है, आदि–आदि।

ii. आत्मन् में व्यक्ति को अपनी प्रत्याशाओं (Expectations) के बारे में पता होता है। व्यक्ति को यह पता होता है कि वह क्या–क्या कर सकता है, क्या–क्या उसे करना चाहिए तथा किसके समान उसे व्यवहार करना चाहिए। आत्मन् के इस पहलू को रोजर्स ने आदर्श–आत्मन् (ideal-self) कहा है जो फ्रायड द्वारा प्रतिपादित पराहं (super-ego) संप्रत्यय के तुल्य है।

iii. आत्मन् का एक पहलू यह भी होता है कि इसमें व्यक्ति अपना मूल्यांकन कर पाता है। अपनी क्षमताओं का स्वयं ही मूल्यांकन करता है। यह मूल्यांकन जब सकारात्मक होता है तो व्यक्ति में आत्म–सम्मान (Self-esteem) की भावना उभरती है और इसे ''सकारात्मक आत्मन्'' (Ego-Self) कहा जाता है। दूसरी तरफ जब यह मूल्यांकन नकारात्मक होता है तो व्यक्ति का आत्म–सम्मान कम हो जाता है और उसकी प्रत्याशाएं भी अवास्तविक हो जाती है।

इससे स्पष्ट हुआ कि ***आत्म–संप्रत्यय या आत्मन् व्यक्तित्व का संगठित पहलू होता है। इसके मुख्य तीन आयाम हैं – स्वयं के बारे में ज्ञान, प्रत्याशाएं (Expectations) तथा मूल्यांकन (Evaluation)।*** इन तीनों आयामों में संगतता का गुण पाया जाता है। इससे ही व्यक्तित्व में एक विशेष संगति (Consistency) उत्पन्न होती है।

3.2.2 आत्म संप्रत्यय के अवयव (Components of Self-Concept)

आत्म–प्रत्यय के तीन प्रमुख अवयव हैं – प्रत्यक्षपरक (Perceptual), प्रत्ययात्मक (Conceptual) और अभिवृत्तिपरक (Attitudinal)। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है –

(1) प्रत्यक्षपरक अवयव (Perceptual Component)– यह अवयव प्रत्यक्ष दिखने वाले शरीर आदि के बारे में स्वयं के एवं दूसरों के विचारों से बनता है। जैसे व्यक्ति के शरीर आदि का दूसरों के विचारों पर क्या प्रभाव पड़ता है, स्वयं व्यक्ति अपने शरीर के बारे में क्या सोचता है और दूसरे उसके बारे में क्या सोचते हैं ? दूसरे शब्दों में व्यक्ति शारीरिक रूप से कितना आकर्षक है आदि इस अवयव को शारीरिक आत्म–संप्रत्यय (Physical Self-Concept) भी कह सकते हैं।

(2) प्रत्ययात्मक अवयव (Conceptual Component) – इस अवयव के अन्तर्गत व्यक्ति की वे विशेषताएं, योग्यताएं एवं अयोग्यताएं आदि आती हैं जिनके कारण वह दूसरों से भिन्न है। समायोजन से सम्बन्धित विशेषताएं भी इसी में समाहित होती हैं, जैसे ईमानदारी, आत्म–विश्वास, स्वतन्त्रता, साहस अथवा इन गुणों के विपरीत गुण। इस अवयव को मनोवैज्ञानिक आत्म–प्रत्यय भी कहते हैं।

(3) अभिवृत्ति परक अवयव (Attitudinal Component) – इसके अन्तर्गत व्यक्ति के स्वयं के प्रति भाव (feeling) आते हैं। इसके अन्तर्गत वे अभिवृत्तियां भी आती हैं जो व्यक्ति के आत्म–सम्मान, गौरव आदि से संबंधित होती है। साथ ही व्यक्ति के विश्वास, धारणाएं, विभिन्न प्रकार के मूल्य, आदर्श और आकांक्षाएं भी इसी में समाहित होती हैं।

3.3.3 आत्म–प्रत्यय के प्रकार

आत्म–प्रत्यय मुख्यतः दो प्रकार का होता है। पहले प्रकार के आत्म–प्रत्यय को आधारभूत आत्म–प्रत्यय या वास्तविक आत्म–प्रत्यय (Basic Self-Concept or Real Self-Concept) कहते हैं। दूसरे प्रकार के आत्म–प्रत्यय को आदर्श आत्म–प्रत्यय (Ideal Self-Concept) कहते हैं।

1. आधारभूत आधार प्रत्यय – यह आत्म–प्रत्यय इस बात पर आधारित होता है कि ''वह वास्तव में कौन और क्या है ?'' इस प्रकार के आत्म–प्रत्यय में व्यक्ति के वे प्रत्यक्षीकरण होते हैं कि वह कैसा दिखाई देता है, वह अपने आपको और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपनी योग्यताओं और अयोग्यताओं को किस रूप में पहचानता है, जीवन में उसकी प्रतिष्ठा क्या है, उसके कार्य क्या हैं, उसके मूल्य क्या हैं, उसके विश्वास और आकांक्षाएं क्या–क्या हैं।

यह आत्म–प्रत्यय स्वनिष्ठ (Subjective) भी होता है कि व्यक्ति स्वयं अपने बारे में शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक दृष्टि से क्या सोचता है एवं वस्तुनिष्ठ भी होता है कि दूसरे लोग अपने बारे में क्या सोचते हैं।

2. आदर्श आत्म–प्रत्यय – आदर्श आत्म–प्रत्यय अपने बारे में विकसित की गई ऐसी छवि से होता है जिसे वह आदर्श मानता है। यह आत्म–प्रत्यय मुख्यतः इस बात पर आधारित है कि वह क्या बनना चाहेगा ? आदर्श आत्म–प्रत्यय में वे सभी गुण आते हैं जो प्रायः सकारात्मक होते हैं तथा जिसे व्यक्ति अपने में विकसित करने की तमन्ना रखता है। यह भी दो प्रकार का होता है – वास्तविक और अवास्तविक। उसकी आकांक्षा इस दृष्टि से वास्तविक होती है कि वह उसकी पहुंच में होती है अथवा यह अवास्तविक भी होती है कि व्यक्ति इसे कभी प्राप्त नहीं कर पायेगा।

रोजर्स के अनुसार एक समान्य व्यक्ति में आदर्श आत्म–प्रत्यय तथा वास्तविक आत्म–प्रत्यय में अन्तर नहीं होता है अर्थात् जो वह होना चाहता था और वर्तमान में जो प्राप्त है उसमें अन्तर नहीं होता है परन्तु जब इन दोनों में असंगतता विकसित हो जाती है तो इसमें एक स्पष्ट अन्तर विकसित हो जाता है। इससे एक अस्वस्थ व्यक्तित्व होने का संकेत मिलता है। मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वह है ''जो वह है और होना चाहता था'' में कोई अन्तर महसूस नहीं करता है।

3.3.4 आत्म–प्रत्यय का विकास (Development of Self-Concept)

आत्म–प्रत्यय का विकास अर्थात् स्वयं के प्रति स्वयं की समझ का विकास व्यक्ति के बचपन की अवस्था से ही प्रारम्भ हो जाती है। बच्चा प्रथम वर्ष के अन्त तक अपने आपको एक अलग प्राणी के रूप में समझने लगता है। बच्चों के आत्म प्रत्यय में दो प्रकार की प्रतिमाएं विकसित होती है। शारीरिक (Physical Self Images) व मनोवैज्ञानिक (Psycological Self Images)। पहली आत्म–प्रतिमा के अन्तर्गत बच्चे में अपने शारीरिक बनावट और रंग–रूप आदि के प्रति स्वयं की सोच–समझ व धारणाएं विकसित होने लगती है। इसके पश्चात् मनोवैज्ञानिक आत्म प्रतिमा विकसित होने लगती है। इसके अन्तर्गत बालक स्वयं की भावनाओं, संवेगों, आकांक्षाओं, साहस, ईमानदारी, स्वतंत्रता, आत्म–विश्वास आदि गुणों या अवगुणों के बारे में जानने लगता है। बालक की जैसे–जैसे आयु बढ़ती जाती है, वैसे–वैसे शारीरिक और मनोवैज्ञानिक प्रतिमाएं आपस में एक–दूसरे से जुड़ जाती है।

बालक अपने चारों ओर के वातावरण में जैसा अपने बारे में सुनता है और जैसे परिवार के लोग और अन्य परिचित लोग उसे उसके बारे में बताते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं या आलोचना करते हैं उसी आधार पर वह अपने आत्म–प्रत्यय का निर्माण करता है। जब परिवार के लोग अपने बच्चे को अधिक शैतानी, बदमाशी या झगड़ा करने पर शैतान कहने लगते हैं एवं उसके साथी बच्चे भी उसको शैतान कहने लगते हैं तो वह अपने आपके प्रति विचार भी वैसा ही बना लेता है या उसका आत्म–प्रत्यय वैसा ही बन जाता है कि मैं शैतान हूँ।

एक बार आत्म–प्रत्यय बनने के बाद यद्यपि यह स्थिर रहता है परन्तु नये अनुभवों के बढ़ने के साथ इसमें भी संशोधन और परिवर्द्धन होता रहता है। बालक की प्रारम्भिक अवस्था में जो आत्म–प्रत्यय बनता है वह प्राथमिक आत्म–प्रत्यय कहलाता है। यह आत्म–प्रत्यय माता–पिता व पारिवारिक जनों के शिक्षण, कथन व व्यवहार पर आधारित होता है। इसके अन्तर्गत शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार की आत्म–प्रतिमाएं पाई जाती है। जब बालक दूसरे बच्चों के साथ खेलना प्रारम्भ करता है, स्कूल जाना प्रारम्भ करता है तब उसमें पहले से बने प्राथमिक प्रत्ययों का संशोधन और परिवर्द्धन होने लगता है। समय–समय पर बालक के आत्म–प्रत्ययों में अपने सामाजिक और सांस्कृतिक समूहों के मूल्यों, नियमों और प्रतिमानों के अनुसार संशोधन होते रहते हैं।

जब वह स्कूल जाने लगता है तब वह अपने परिवार की प्रतिष्ठा और अपने परिवार के सामाजिक आर्थिक स्तर का भी ज्ञान प्राप्त कर लेता है। स्कूल जाने तक वह समझने लगता है कि परिवार और उसकी प्रतिष्ठा तथा सामाजिक और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आर्थिक स्तर माता–पिता के व्यवसाय से निर्धारित होता है। वह इन तथ्यों को आत्म–प्रत्यय से जोड़ लेता है। जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में आत्म–प्रत्यय अस्थिर होता है। आयु बढ़ने के साथ–साथ उसमें स्थिरता आती है।

3.3.5 आत्म–प्रत्यय की स्थिरता का लाभ

आत्म–प्रत्यय व्यक्ति के स्वयं के प्रति विचारों और अनुभवों से बनता है। विचार और अनुभव परिवर्तित होते रहते हैं, अतः आत्म–प्रत्यय भी परिवर्तित होता रहता है। कभी–कभी यह परिवर्तन अस्थायी होते हैं और कभी–कभी स्थायी। ***जिन व्यक्तियों में आत्म स्वीकृति जितनी ही अधिक होती है उनका समायोजन उतना ही अच्छा होता है। एक व्यक्ति के आत्म–प्रत्यय में जब स्थिरता होती है तभी वह सही अर्थों में अपनी पहचान बना पाता है।*** वैयक्तिक और सामाजिक समायोजन पर एक व्यक्ति के आत्म–प्रत्यय की स्थिरता का प्रभाव बहुत अधिक पड़ता है। जिन व्यक्तियों का आत्म–प्रत्यय अधिक स्थिर होता है उनमें व्यक्तिगत सुरक्षा की भावना अधिक होती है। जिन व्यक्तियों का आत्म–प्रत्यय अस्थिर प्रकार का होता है उन व्यक्तियों का वैयक्तिक और सामाजिक समायोजन दुर्बल प्रकार का होता है।

आत्म–प्रत्यय व्यक्ति के लिए प्रेरक शक्ति का कार्य करता है। एक व्यक्ति जिस रूप में अपने आपको देखता है, वह व्यक्ति वैसे ही एक परिस्थिति विशेष में व्यवहार करता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि उसको गलत समझा गया है या उसके साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया गया है तब ऐसा समझने वाले या ऐसे व्यवहार करने वालें के प्रति उसका व्यवहार विस्फोटक प्रकार का होता है। दूसरी और जब वह यह अनुभव करता है कि लोग उसे स्वीकार कर रहे हैं, उसके साथ कोई भेदभाव पूर्ण ढंग से व्यवहार नहीं किया जा रहा है तब उसका व्यवहार मित्रवत् और सहयोगात्मक प्रकार का होता है।

व्यक्ति जितना ही कम आक्रामक या शान्त होता है उसका आत्म प्रत्यय उतना ही अधिक उच्च होता है। इसी प्रकार जब व्यक्ति का आकांक्षा स्तर अधिक एवं उपलब्धि स्तर कम होता है तब उसका आत्म–प्रत्यय नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। आत्म–प्रत्यय अस्थिर हो जाता है। जीवनमूल्यों का भी आत्म–प्रत्यय से महत्वपूर्ण संबंध है। जिन व्यक्तियों में धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, आर्थिक मूल्य और ज्ञान मूल्य आदि उच्च स्तर के होते हैं उन व्यक्तियों का आत्म–प्रत्यय अपेक्षाकृत अच्छा होता है।

बोध प्रश्न

---

1. आत्म–संप्रत्यय के अवयव कौन–कौन से हैं ?
2. आत्म–प्रत्यय के विकास का अर्थ क्या है ?
3. आकांक्षा स्तर अधिक एवं उपलब्धि स्तर कम होने से क्या होता है ?
4. स्कूल शिक्षा तक आत्म–प्रत्यय का विकास कैसे होता है ?

3.4.0 शीलगुण (Traits)

व्यक्तित्व विकास का तात्पर्य व्यक्तित्व प्रतिमान (Personality-pattern) का विकास है। व्यक्तित्व प्रतिमान एक एकीकृत (integrated) और बहुआयामी संरचना (Multidimensional structure) है। व्यक्तित्व का केन्द्रीय तत्व है आत्म–प्रत्यय। इस आात्म प्रत्यय या व्यक्तित्व के केन्द्रीय तत्व से सीधे जुड़े हुए होते हैं – शीलगुण। व्यक्ति के शीलगुणों का मुख्य कार्य छोटी आदतों, अभिवृत्तियों एवं कौशलों को बड़े विचारों, भावनाओं और कार्य प्रतिमानों में संगठित या एकीकृत करना है। दूसरी ओर व्यक्ति के आत्म–प्रत्यय का कार्य व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक क्षमताओं को एकीकृत करता है। वह व्यक्ति के कार्य या व्यवहार के लिए उत्तरदायी है।

आलपोर्ट ने शीलगुणों पर विशेष अध्ययन किया। यह उनकी महत्वपूर्ण देन है। उनके अनुसार प्रसन्नचित्तता, आक्रामकता, स्पर्धात्मकता, सामुदायिकता, समय का पालन या समय प्रतिबद्धता (Punctuality), सामर्थ्य, कल्पनाशक्ति या

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

काल्पनिकता आदि कुछ शीलगुण के उदाहरण हैं। शीलगुणों की सहायता से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की परस्पर तुलना करना आसान होता है। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से शीलगुणों का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है।

3.4.1 परिभाषा

क्रच और क्रचफील्ड (1958) के अनुसार शीलगुण व्यक्ति की एक स्थायी विशेषता है जिसके द्वारा विभिन्न दशाओं में लगभग एक सा व्यवहार होता है।

एटकिन्सन और उसके साथियों (Atkinson, Atkinson & Hilgard, 1983) के अनुसार ''शीलगुण से तात्पर्य एक ऐसी विशेषता से होता है जो एक व्यक्ति में से दूसरे व्यक्ति में सापेक्ष रूप से स्थायी एवं संगत ढंग से भिन्न–भिन्न होता है।

3.4.2 शीलगुण की विशेषताएं

प्रत्येक शीलगुण में कुछ विशेषताएं होती हैं – अद्वितीयता (Uniqueness), पसन्द (Liking), संगतता (Consistency) और वैयक्तिकता (Individuality) इन विशेषताओं के द्वारा हम शीलगुणों को और अधिक अच्छे ढंग से समझ सकते हैं।

(i) अद्वितीयता (Uniqueness) – अद्वितीयता का तात्पर्य यह नहीं है कि वह शीलगुण केवल उसी व्यक्ति के शीलगुण हैं। इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति का व्यवहार विशेष प्रकार का होता है। व्यक्ति–व्यक्ति का व्यवहार भिन्न–भिन्न होता है।

(ii) पसन्द (Liking) – शीलगुणों को व्यक्ति पसन्द या नापसन्द भी करते हैं। कुछ शीलगुणों जैसे – ईमानदारी, उदारता और विश्वसनीयता को लोग पसन्द करते हैं। इसी प्रकार कुछ शीलगुणों जैसे रूखापन, निर्दयता, अहंकार आदि को लोग पसन्द नहीं करते हैं। इस प्रकार शीलगुण की दूसरी विशेषता पसन्द से संबंधित है।

(iii) संगतता (Consistency) – शीलगुणों की तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता है कि शीलगुणों में संगतता पाई जाती है। शीलगुण कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें संगति का गुण हो। उदाहरणस्वरूप यदि कोई व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति में ईमानदारी का गुण दिखलाता है तो हम कहते हैं कि उसके व्यवहार में संगति (Consistency) है तथा उसमें ईमानदारी का शीलगुण है। परन्तु जब वह कुछ परिस्थिति में शीलगुण दिखलाता है तथा कुछ में नहीं, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि इस व्यक्ति में ईमानदारी का शीलगुण है। इस प्रकार संगतता से तात्पर्य यह है कि शीलगुण के कारण ही व्यक्ति समान परिस्थिति में समान ढंग से व्यवहार करता है।

(iv) वैयक्तिकता (Individuality) – वैयक्तिकता से तात्पर्य यह है कि किसी शीलगुण की मात्रा प्रत्येक व्यक्ति में एक समान न होकर किसी में कम तथा किसी में अधिक होती है।

3.5.0 शीलगुणों के प्रकार (Types of traits)

आलपोर्ट ने अनेक प्रकार के शीलगुणों की व्याख्या की है परन्तु उन्होंने शीलगुणों के मुख्य दो प्रकार बतलाए हैं – (1) सामान्य शीलगुण और (2) वैयक्तिक शीलगुण।

3.5.1 सामान्य शीलगुण

यह शीलगुण वह है जो समाज के अधिकांश लोगों में पाये जाते हैं और इन शीलगुणों के आधार पर एक समाज या संस्कृति के लोगों की तुलना की जा सकती है। जैसे प्रभुत्व (Dominance), सामाजिकता (Sociability), सत्यवादिता (Truthfulness) उपलब्धि की आवश्यकता (Need for achievement) और उदारवादिता (Generosity) आदि। ये सामान्य शीलगुण एक सांस्कृतिक समूह में भिन्न–भिन्न मात्रा में पाये जाते हैं। समान वातावरण, समान सांस्कृतिक मूल्य और समान पालन–पोषण की विधियों के कारण एक सांस्कृतिक समूह के अधिकांश व्यक्तियों में सामान्य शीलगुण पाये जाते हैं। जब

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दूसरी संस्कृति में जाते हैं तब वातावरण, मूल्य और लालन–पालन की विधियों की भिन्नता के कारण सामान्य शीलगुण भी भिन्न प्रकार के पाये जाते हैं।

आलपोर्ट मानते हैं कि सामान्य शीलगुणों से व्यक्तित्व की सतही अभिव्यक्ति होती है। इन सामान्य शीलगुणों से वैयक्तिकता के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं होता है। सामान्य शीलगुणों को विमीय शीलगुण (dimensional traits) या नियमान्वेषी शीलगुण (nomothetic traits) भी कहा गया है।

3.5.2 वैयक्तिक शीलगुण

ये शीलगुण वे हैं जो समाज के कुछ लोगों में पाये जाते हैं। दूसरे शब्दों में ये शीलगुण व्यक्ति विशेष तक सीमित होते हैं। सभी व्यक्तियों में नहीं पाये जाते हैं। ये व्यक्ति के व्यक्तिगत शीलगुण हैं। ये शीलगुण व्यक्ति के समायोजन संबंधी क्रियाओं और व्यवहारों को प्रेरित करते हैं और निर्देशित भी करते हैं। सामान्य शीलगुणों की अपेक्षा वैयक्तिक शीलगुण अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। **व्यक्तित्व की संरचना में वैयक्तिक शीलगुणों की प्रमुख भूमिका होती है।** इन शीलगुणों को वैयक्तिक पूर्ववृत्ति (Personal Predisposition) या आकृतिक शीलगुण (Morphological traits) भी कहते हैं। आलपोर्ट ने अपने बाद के अध्ययनों के आधार पर सामान्य शीलगुणों के लिए केवल शीलगुण (trait) शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार वैयक्तिक शीलगुणों के लिए वैयक्तिक पूर्ववृत्ति (Personal Predisposition) शब्द का प्रयोग किया गया है।

आलपोर्ट ने वैयक्तिक शीलगुणों को तीन भागों में बांटा है –

(i) कार्डिनल शीलगुण या पूर्ववृत्ति (Cardinal trait or Predispositions)
(ii) केन्द्रीय शीलगुण या पूर्ववृत्ति (Central trait or Predispositions)
(iii) गौण शीलगुण या पूर्ववृत्ति (Secondary trait or Predispositions)

(i) कार्डिनल शीलगुण या पूर्ववृत्ति (Cardinal trait or Predispositions) – ये शीलगुण व्यक्तित्व में बहुत व्यापक एवं प्रबल होते हैं। इन्हें व्यक्ति छिपाना भी चाहता है तो छिपा नहीं सकता। सभी व्यक्तियों में कार्डिनल शीलगुण नहीं पाये जाते हैं। जब ये शीलगुण किसी व्यक्ति में पाये जाते हैं तो वह व्यक्ति कई बार इन शीलगुणों के कारण चर्चित और विख्यात भी हो जाता है। उदाहरण के लिए महात्मा गाँधी में शान्ति और अहिंसा दो ऐसे शीलगुण थे जिनके कारण वे विश्व मे चर्चित रहे। एक व्यक्ति में ये शीलगुण उसके संवेगों के निर्देशन या नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इनकी संख्या कम होती है परन्तु इन शीलगुणों की व्यापकता अधिक होती है।

(ii) केन्द्रीय शीलगुण या पूर्ववृत्ति (Central trait or Predispositions) – ***ये शीलगुण प्रत्येक व्यक्ति में पाये जाते हैं। व्यक्ति के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। आलपोर्ट के अनुसार वास्तव में ये व्यक्तित्व निर्माण की ईंटें हैं। इन्हीं शीलगुणों के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व अधिक सक्रिय रहता है। इनकी संख्या 5 से 10 तक होती है।*** इनसे ही व्यक्ति के व्यक्तित्व संबंधी विशेष जानकारी प्राप्त होती है, क्योंकि व्यक्ति के व्यवहार में इनकी अभिव्यक्ति होती रहती है। भावुकता, सामाजिकता, जागरूकता, आत्मविश्वास आदि कुछ उदाहरण केन्द्रीय शीलगुण के हैं।

(iii) गौण शीलगुण या पूर्ववृत्ति (Secondary trait or Predispositions) – इस प्रकार के शीलगुण व्यक्ति के लिए कम महत्वपूर्ण, कम संगत, कम स्पष्ट और कम अर्थ पूर्ण होते हैं, जैसे – खाने की आदत, केश विन्यास (hair style), पहनावा आदि। इनके आधार पर व्यक्तित्व को समझने में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है। आलपोर्ट ने यह स्पष्ट किया है कि ***किसी व्यक्ति के लिए जो केन्द्रीय शीलगुण हैं वही शीलगुण किसी दूसरे व्यक्ति के लिए गौण शीलगुण भी हो सकते हैं।*** उदाहरण के लिए बहिर्मुखी व्यक्ति के लिए सामाजिकता एक केन्द्रीय शीलगुण है, वही सामाजिकता एक अन्तर्मुखी व्यक्ति के लिए गौण शीलगुण है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.6.0 मानव व्यक्तित्व के प्रमुख शीलगुण

व्यक्तित्व के प्रमुख शीलगुण या आयाम कौन–कौन से हैं ? गत दो दशकों में किये गये शोधों के आधार पर कुछ मनोवैज्ञानिक इस प्रश्न पर कुछ प्रमुख आयामों पर सहमत होते दिखाई देते हैं। वे प्रमुख आयाम पाँच हैं तथा सबके दो छोर माने गये हैं। वे निम्नांकित हैं –

(i) **बहिर्मुखता (Extroversion)** – यह व्यक्तित्व का एक ऐसा आयाम है जिसमें व्यक्ति एक छोर पर या एक परिस्थिति में बहिर्मुखी अर्थात् सामाजिक, मजाकिया, स्नेहपूर्ण, बातूनी आदि का शीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति में वह संयमी, गंभीर, रूखापन, शांत, सचेत रहने आदि का अन्तर्मुखी शीलगुण भी दिखाता है। इस तरह के बहिर्मुखता एवं अन्तर्मुखता दो ध्रुव या छोर माने गये हैं।

(ii) **सहमतिजन्यता (Agreeablenness)** – इस आयाम के भी दो छोर या ध्रुव बतलाए गये हैं। इस आयाम के अनुसार व्यक्ति एक परिस्थिति में सहयोगी, दूसरों पर विश्वास करने वाला, उदार, सीधा, सादा, उत्तम प्रकृति आदि से सम्बद्ध व्यवहार प्रदर्शित करता है तो दूसरी परिस्थिति में वह असहयोगी, शंकालु, चिड़चिड़ा, जिद्दी, निर्दयी आदि बनकर भी व्यवहार करता पाया जाता है। इसके भी सहकारिता एवं असहकारिता, ये दो छोर हैं।

(iii) **कर्तव्यनिष्ठता (Conscientiousness)** – इस आयाम में व्यक्ति एक परिस्थिति में आत्म अनुशासित, उत्तरदायी, सावधान एवं काफी चिन्तन पूर्वक व्यवहार दर्शाता है तो दूसरी परिस्थिति में बिना सोचे समझे, असावधानी पूर्वक, आधे मन से व्यवहार प्रदर्शित करता है। इसके भी कर्तव्यनिष्ठता एवं लापरवाही, ये दो छोर हैं।

(iv) **प्रशान्तता** – इस आयाम में व्यक्ति एक ओर कभी कभी तो सांवेगिक रूप से काफी शान्त, संतुलित, रोग भ्रमी विचारों से अपने आपको मुक्त पाता है तो दूसरी ओर वह कभी–कभी अपने आपको सांवेगिक रूप से काफी उत्तेजित, असंतुलित तथा रोगभ्रमी विचारों से घिरा हुआ पाता है। इसके भी दो छोर प्रशान्तता एवं अशान्तता हैं।

(v) **दूसरी संस्कृति या अनुभूतियों के प्रति खुलापन (Openness to experience or Culture)** – इस आयाम में व्यक्ति एक तरह काफी संवेदनशील, काल्पनिक, बौद्धिक, भद्रता आदि से युक्त व्यवहार करता है तो दूसरी ओर वह काफी असंवेदनशील, रूखा, संकीर्ण, असभ्य और अशिष्ट व्यवहार प्रदर्शित करता है। इसके भी दो छोर हैं, उदारता व संकीर्णता।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इन पांच शीलगुणों को सबसे अधिक मान्यता दी जा रही है। इन लोगों का मानना है कि चाहे व्यक्ति किसी समाज या संस्कृति का हो, उनके व्यक्तित्व के बारे में इन पांच शीलगुणों के आधार पर सही–सही एवं वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

बोध प्रश्न

1. आलपोर्ट के अनुसार शीलगुणों के दो उदाहरण लिखिये।
2. शीलगुण की विशेषताएं समझाइये।
3. शीलगुण कितने प्रकार के होते हैं ? समझाइये।

3.7.0 सारांश

- व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया सरल नहीं है। अतः व्यक्तित्व विकास पर अध्ययन करने वाले विद्वानों के लिए यह संप्रत्यय सुलझा हुआ नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- व्यक्तित्व विकास का अर्थ है ''व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का विकास। व्यक्तित्व विकास का तात्पर्य है – व्यक्तित्व प्रतिमान का विकास। व्यक्तित्व प्रतिमान दो मुख्य भागों या घटकों से मिलकर बना हुआ है – आत्म–संप्रत्यय और शीलगुण। आत्म संप्रत्यय के तीन आयाम हैं – स्वयं के प्रति स्वयं की समझ या ज्ञान, प्रत्याशाएं एवं स्वयं के द्वारा स्वयं का मूल्यांकन। शीलगुण व्यक्ति की एक स्थायी विशेषता है।
- व्यक्तित्व के अध्ययन में आत्म संप्रत्यय का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय मनोविज्ञान में आत्मा को अमर, अजन्मा, नित्य और शाश्वत कहा गया है। पश्चिमी मनोविज्ञानी आत्म संप्रत्यय का अध्ययन करते समय भी भौतिकवादी दृष्टिकोण को ही प्रधानता देते हैं। व्यक्ति जितना अधिक स्वयं को पहचानता है, उसका ठीक से मूल्यांकन करता है, उतना ही अधिक उसके आत्म संप्रत्यय का विकास होता है।
- आत्म संप्रत्यय को अलग–अलग पश्चिमी विद्वानों ने अलग–अलग दृष्टिकोणों से समझा। वीलियम जेम्स (1899) ने 'आत्म' (Self) को व्यक्तित्व का केन्द्र बिन्दु माना है। फ्रायड ने इसे अहं (Ego) माना।
- आत्मा के तीन अवयव हैं –
  1. प्रत्यक्ष परक : ऊपरी दिखने वाले शरीर के बारे में अपने एवं दूसरों के विचार।
  2. प्रत्यात्मक : व्यक्ति की निजी योग्यताएं एवं अयोग्यताएं जिनके कारण वह दूसरों से अलग जाना जाता है।
  3. अभिवृत्तिपरक : इसके अन्तर्गत व्यक्ति के अपने प्रति स्वयं के भाव आते हैं जैसे आत्म–सम्मान, गौरव, विश्वास आदि।
- आत्म प्रत्यय का विकास बचपन से होता है। बचपन से माता–पिता से, परिवार में जो कुछ सुनता है उसे वह अनुभव करने लगता है। स्कूल में उसके आत्म प्रत्यय में अन्तर भी आने लगता है।
- आलपोर्ट ने शीलगुणों पर विशेष अध्ययन किया। प्रसन्नचित्तता, आक्रामकता, स्पर्धात्मकता, सामुदायिकता, समय की पाबंदी, सामर्थ्य आदि उसके अनुसार शीलगुण के उदाहरण हैं।
- मानव व्यक्तित्व के पांच प्रमुख शीलगुण मनोवैज्ञानिक मानते हैं– (1) बहिर्मुखता, (2) सहमतिजन्यता, (3) कर्तव्यनिष्ठता, (4) दूसरी संस्कृतियों के प्रति उदारता और (5) प्रशान्तता।

3.8.0 अभ्यास प्रश्न

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. फ्रायड ने आत्म को किस संज्ञा से संबोधित किया ?
2. किस मनोवैज्ञानिक ने शीलगुणों पर विशेष अध्ययन किया ?
3. किन–किन शीलगुणों को सामान्य व्यक्ति पसंद करते हैं ?
4. गौण शीलगुण के दो उदाहरण लिखिये।
5. शीलगुण की बहिर्मुखता के दो उदाहरण लिखिये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. व्यक्तित्व–विकास से क्या तात्पर्य है ?
2. केन्द्रीय शीलगुण से क्या तात्पर्य है ?
3. आत्म–संप्रत्यय की स्थिरता से क्या–क्या लाभ हैं ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. आत्म संप्रत्यय पर एक निबंध लिखें।
2. शीलगुण पर एक विशेष आलेख लिखें।
3. व्यक्तित्व विकास के तात्पर्य को समझाते हुए बतायें कि मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यक्तित्व के पांच प्रमुख शीलगुण किनको माना है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 1 व्यक्तित्व–विकास : एक परिचय

पाठ – 4 व्यक्तित्व – प्रकार, संगठन–विघटन और समायोजन

रूपरेखा

4.0.0 उद्देश्य
4.1.0 भूमिका
4.2.0 व्यक्तित्व के प्रकार
4.2.1 श्रीमद्भगवद् गीता और व्यक्तित्व वर्गीकरण
4.2.2 जैन आगमों में व्यक्तित्व वर्गीकरण
4.2.3 हिप्पोक्रेट्स का व्यक्तित्व वर्गीकरण
4.2.4 क्रेश्मर का व्यक्तित्व वर्गीकरण
4.2.5 शेल्डन का व्यक्तित्व वर्गीकरण
4.2.6 युंग का व्यक्तित्व वर्गीकरण
4.3.0 व्यक्तित्व : संगठन और विघटन
4.3.1 संगठित व्यक्तित्व की विशेषताएं
4.3.2 विघटित व्यक्तित्व और मानसिक रोग
4.4.0 व्यक्तित्व और समायोजन
4.4.1 समायोजन और प्रतिबल
4.4.2 दबाव
4.4.3 चिन्ता
4.4.4 अन्तर्द्वन्द्व
4.4.5 कुण्ठा
4.5.0 सारांश
4.6.0 अभ्यास प्रश्न

4.0.0 उद्देश्य

ज्ञानार्थी बंधुओं ! बहनों ! पिछले अध्यायों में आप व्यक्तित्व विकास के संबंध में विदेशी विद्वानों के विचारों से परिचित हुए। इस अध्याय में आपको व्यक्तित्व प्रकार, संगठन, विघटन एवं समायोजन आदि बिन्दुओं पर ज्ञान कराया जाएगा।

गीता में व्यक्तित्व का वर्गीकरण, जैन आगमों में व्यक्तित्व का वर्गीकरण, हिप्पोक्रेट्स की दृष्टि से व्यक्तित्व का वर्गीकरण, युंग, शेल्डन, क्रेश्मर की नजरों में व्यक्तित्व का वर्गीकरण, मानसिक रोग, समायोजन और व्यक्तित्व पर भी आपका ध्यान आकर्षित किया जायेगा।

लेश्या पर आधारित व्यक्तित्व के वर्गीकरण का ज्ञान इस अध्याय की सर्वोत्तम विशेषता है। यह अध्याय बहुत रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक सिद्ध होगा ऐसा विश्वास है। इस अध्ययन से आप –

1. व्यक्तित्व के सिद्धान्तों में प्राचीनतम व्यक्तित्व सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
2. श्रीमद्भगवद् गीता व जैन आगमों में आये व्यक्तित्व वर्गीकरण व उसके महत्व को जान पाएंगे।
3. पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व के प्रकारों से परिचित होंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. सुसंगठित व्यक्तित्व की विशेषताओं एवं व्यक्तित्व के विघटन के बारे में जानकारी कर पाएंगे।
5. व्यक्ति के सुसमायोजित होने में आने वाली बाधाओं अन्तर्द्वन्द्व, निराशा आदि को समझकर उनसे अपना बचाव कर पाएंगे।

4.1.0 भूमिका

व्यक्तित्व निर्माण की पहली आवश्यकता है व्यक्तित्व को समझना। व्यक्ति को समझने का प्रयास सभी धर्म–दर्शन व संस्कृति में प्राचीन काल से चला आ रहा है। भारतीय दर्शन, संस्कृति तथा पाश्चात्य जगत् में भी इस पर बहुत कार्य हुआ है। भारतीय साहित्य विशेषकर भगवद्गीता, सांख्य दर्शन, जैन आगम, आयुर्वेद आदि में व्यक्तियों को वर्गों में बांटकर समझाया गया है। इसी प्रकार पाश्चात्य संस्कृति में प्रसिद्ध दार्शनिक व चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स आदि ने भी व्यक्तियों को एक विशेष आधार पर प्रकार या वर्गों में वर्गीकृत किया है। आज पाश्चात्य मनोविज्ञान ने व्यक्तित्व को समझने की दिशा में ''प्रकार/वर्ग सिद्धान्त'' के आगे भी बहुत विकास किया है। व्यक्तित्व को समझने के लिए प्रारम्भ कहां से करें ? इस प्रश्न का सरल उत्तर है – सामान्य वर्गों में विभक्त व्यक्तियों को समझकर। इसके बाद कठिन से कठिन सिद्धान्त भी समझ में आने लग जाते हैं।

4.2.0 व्यक्तित्व के प्रकार

सभी संस्कृतियों में व्यक्ति को समझने का प्रयास प्राचीनकाल से ही रहा है। इसमें भी व्यक्तियों को किसी एक आधार पर अलग–अलग वर्गों में बांटकर समझने का प्रयास व्यक्तित्व का सबसे पुराना तरीका है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को खास–खास प्रकार (Type) में बांटा जाता है और उसके आधार पर उसके शीलगुणों का वर्णन किया जाता है। मार्गन तथा उसके साथियों ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि व्यक्तित्व के प्रकार से तात्पर्य ''व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग से है जिनकी कुछ समान विशेषताएं होती हैं। (A type is simply a class of individual said to share a common collection of characteristics)। उदाहरण के लिए अन्तर्मुखी (Introvert) ऐसा ही एक प्रकार है। अन्तर्मुखी प्रकार के जो लोग होते हैं, इनकी कुछ विशेषताएं होती हैं। जैसे वे अपनी ही दुनियां में खोये रहने वाले होते हैं। लज्जाशील या संकोचशील, कम बातचीत करने वाले तथा लोगों से मिलना–जुलना कम पसन्द करते हैं।

4.2.1 श्रीमद्भगवद्गीता और व्यक्तित्व वर्गीकरण

भारतीय संस्कृति और साहित्य में अनेक स्थलों पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण प्राप्त होता है। धर्मशास्त्र श्रीमद् भगवद्गीता में तीन गुणों – सत्, रज और तम के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया है। भारतीय आयुर्वेद में वात, पित्त और कफ के आधार पर व्यक्ति के चित्त की प्रकृति का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार जैन आगमों में भी लेश्या (भावधारा) के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण मिलता है।

श्रीमद्भागवत गीता में तीन गुण सत्व, रजस् और तमस् के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया है।

1. सात्विक व्यक्तित्व – इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को रसयुक्त (फल, दूध, खांड आदि), चिकने (घी, मक्खन, बादाम, काजू, किसमिस आदि) स्वास्थ्यप्रद, आयु, बल और सुख को बढ़ाने वाले पदार्थ प्रिय होते हैं। वे लोग फल की इच्छा से रहित कर्म करते हैं। शरीर, वाणी और मन का संयम और तप करते हैं। सात्विक कर्म करने वालों के कर्म संस्कार मिट जाते हैं। वे सही–गलत, धर्म–अधर्म, कारण–अकारण में भेद करने वाली सात्विक विवेक बुद्धि से सम्पन्न होते हैं।

2. रजोगुणी व्यक्तित्व/राजसिक व्यक्तित्व – इस प्रकार के व्यक्तित्व को अति कड़वे, अति खट्टे, अति नमकीन, अति गरम, अति रूखे और दाहकारक आहार पसन्द होते हैं। ये आहार दुःख, शोक और रोगों को जन्म देने वाले होते हैं। ये लोग फल की इच्छा से कार्य करते हैं, तप और दान करते हैं। ऐसे लोग प्रदर्शन हेतु भी दान, तप आदि करते हैं। धर्म–अधर्म, सही–गलत, कारण–अकारण में भेद नहीं कर पाते हैं।

3. तमोगुणी व्यक्तित्व – तमो प्रधान व्यक्तियों को अधपका, रस रहित, दुर्गन्धित व बासी भोजन प्रिय होता है। अपवित्र भोजन भी इस प्रकार के लोगों को पसन्द है। इनकी बुद्धि तामसिक होती है, जो गलत को सही, अधर्म को धर्म और अकारण को कारण मानती है। तमोगुण के कारण व्यक्ति में आलस्य, प्रमाद, निद्रा और मोह की प्रवृत्तियाँ बढ़ती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. त्रिगुणातीत व्यक्तित्व – त्रिगुणातीत का अर्थ है तीनों गुणों से अतीत। इस अवस्था में भावातीत चेतना होती है। ***सुख–दुःख, मित्र–शत्रु, निन्दा–स्तुति, मिट्टी–सोना में समभाव से रहने वाला ही त्रिगुणातीत व्यक्तित्व कहलाता है। यहां अपार आन्तरिक वैभव होता है। सब कुछ व्यवस्थित होता है और सब कुछ आत्मा के सहारे चलता है।*** त्रिगुणातीत व्यक्ति गुणों से विचलित नहीं होता है। वह अपने स्वरूप में स्थित रहता है। ब्रह्म प्राप्ति का पात्र बनता है। साधना के द्वारा इस ब्रह्म चेतना या भागवत् चेतना के स्तर पर वह निराकार, अमर्त्य, अविनाशी और शाश्वत हो जाता है। इस अवस्था में उसे परमानन्द और परमपद की प्राप्ति होती है।

सतोगुण सुख से बांधता है, रजोगुण काम, इच्छित कर्म से बांधता है और तमोगुण ज्ञान को ढककर पागलपन से बांधता है। इन तीन गुणों में निरन्तर स्पर्धा चलती रहती है। कभी एक, कभी दूसरा तो कभी तीसरा गुण अन्य गुणों की अपेक्षा अधिक प्रभावी रहता है। ***सतोगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुण से लोभ उत्पन्न होता है और तमोगुण से पागलपन (प्रमाद) उत्पन्न होता है। इन तीन गुणों में से किसी एक गुण की प्रधानता व्यक्ति में होती है। दूसरे अन्य अपेक्षाकृत कुछ कम मात्रा में व्यक्ति में होते हैं। यदि व्यक्ति भावातीत ध्यान या समताभाव की सिद्धि प्राप्त कर ले तो व्यक्ति सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण को लांघकर त्रिगुणातीत की विशेषताओं या गुणों को अपने में विकसित कर सकता है।***

4.2.2 जैन आगमों में व्यक्तित्व वर्गीकरण

भगवान महावीर ने ढाई हजार साल पूर्व लेश्या के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वह जैन आगम/शास्त्र आचारांग, उत्तराध्ययन व प्रज्ञापना में विस्तार से प्रतिपादित है। लेश्या दो प्रकार की धाराओं में चलती है – भाव की धारा और रंग की धारा। इन दोनों का योग ही लेश्या का सिद्धान्त है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार लेश्या हमारी चेतना की शक्ति या ज्योति किरणें हैं। जिस तरह सूर्य की रश्मियां होती हैं वैसे ही हमारी चेतना की भी रश्मियां होती हैं। चेतना हमारे भीतर है परन्तु उसकी रश्मियां या किरणें बाहर प्रस्फुटित होती हैं। इससे हमारे चारों ओर एक वलय बन जाता है। इसे ही वैज्ञानिक आज की भाषा में आभामण्डल कहते हैं। अन्दर से आने वाली किरणों का रंग भावों के अनुसार बदलते रहते हैं।

व्यक्ति में जिस प्रकार की लेश्या की प्रधानता होगी उसके अनुसार उसका व्यक्तित्व और गुण होंगे। लेश्याएं आभामण्डल की ही रश्मियां हैं। अतः व्यक्ति के आभामण्डल में जिस रंग की प्रधानता होगी, उसके अनुसार ही उसका व्यक्तित्व और गुण होंगे। जैन आगमों में लेश्याओं के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण छः भागों में किया गया है।

1. कृष्ण लेश्या – यदि व्यक्ति के आभामण्डल में काले रंग की प्रधानता हो तो ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व में नकारात्मक भावों तथा कार्यों की प्रबलता होती है। ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति असंयमी, क्षुद्र प्रकृतिवाले, क्रूर, हिंसक और अजितेन्द्रिय होते हैं। ऐसे व्यक्तियों में काम, क्रोध, मद और लोभ बहुत तीव्र होते हैं तथा इनकी आकांक्षाएं भी बहुत अधिक होती है।

2. नील लेश्या – जब व्यक्ति के आभामण्डल में नीले रंग की प्रधानता हो तो ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व में बौद्धिक स्तर निम्न होता है। वह अस्थिर मनोभाव वाला अर्थात् बार–बार मानसिकता बदलने वाला, ईर्ष्यालु, दूराग्रही, अज्ञानी और मायावी होता है। ऐसा आभामण्डल वाला व्यक्ति भौतिक सुख और काम भोग की इच्छा रखने वाला होता है। साथ ही वह यश लोलुप, रस लोलुप, प्रमादी, निर्लज्ज, अधार्मिक, समाज में दिखावा करने वाला तथा ऊपर से अच्छा व्यवहार करते हुए मन में कुटिलता रखने वाला होता है। समाज की निंदा से बचने के लिए दिखावटी तौर पर वह अच्छा व्यवहार करने का प्रयत्न करता है। कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व से नील लेश्या वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व थोड़ा सुधरा हुआ होता है।

3. कापोत लेश्या – कापोत लेश्या या आभामण्डल वाले व्यक्ति में कापोती रंग की प्रधानता होती है। ऐसे व्यक्तियों का व्यक्तित्व कृष्ण तथा नील लेश्या वाले व्यक्तियों की अपेक्षा कुछ सुधरा हुआ होता है, फिर भी इनकी वाणी एवं आचरण में स्पष्टता नहीं होती है। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को दूसरों को कष्ट पहुंचाने, कटु वचन कहने एवं दूसरों का उपहास करने में आनन्द आता है। इनमें अपने दोषों को छिपाने की वृत्ति तथा चोरी करने की प्रवृत्ति होती है। इनका जीवन सरलता से रहित तथा नकारात्मक सोच व दृष्टिकोण से युक्त होता है।

4. तेजो लेश्या – तेजो लेश्या के आभामण्डल में लाल रंग की प्रधानता होती है। इनका व्यक्तित्व काफी विकसित होता है। इनका व्यवहार नम्र और स्पष्ट होता है। ये स्थिर मन वाले होते हैं। इनकी मानसिक स्थिति जल्दी–जल्दी नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बदलती। ये धर्म में दृढ़ आस्था रखने वाले एवं धार्मिक होते हैं। ये मोक्ष के इच्छुक होते हैं और पाप से डरते हैं। इनका क्रोध, मान, माया और लोभ जैसे नकारात्मक भावों पर नियंत्रण होता है। समाधि की साधना में लगे रहते हैं। स्वाध्याय और तप करने वाले होते हैं।

5. पद्म लेश्या – आभामण्डल में पीले रंग की प्रधानता वाले लोग पद्म लेश्या के वर्ग में आते हैं। ऐसी लेश्या वाले लोग शान्त, गंभीर और अल्पभाषी होते हैं। इनके क्रोध, मान, माया और लोभ जैसे नकारात्मक भाव बहुत कम होते हैं। इनका अपनी इन्द्रियों और मन पर पूरा नियंत्रण होता है। स्वाध्याय, तप और समाधि की साधना में संलग्न रहते हैं। ये आत्मज्ञानी होते हैं। इनका व्यक्तित्व बहुत संतुलित रहता है। इनकी मानसिक क्षमताएं काफी विकसित व उन्नत होती है।

6. शुक्ल लेश्या – शुक्ल लेश्या के आभामण्डल वाले व्यक्ति में श्वेत वर्ण की प्रधानता होती है। ऐसे व्यक्ति का चित्त प्रशान्त होता है। ये आत्मज्ञानी एवं आत्मा में स्थित रहने वाले होते हैं। इनका सभी इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण व अधिकार होता है। ये व्यक्ति शुद्ध आचरण से परिपूर्ण व शुभ ध्यान में स्थित रहते हैं। इनमें शारीरिक व मानसिक गुण विलक्षण होते हैं। ये पराशक्तियों से ओत–प्रोत होते हैं। इनकी पराशक्तियों का उपयोग भी जन–जन के आत्मकल्याण के लिए होता है।

इन छः लेश्याओं में से किसी एक लेश्या की प्रधानता होती है। दूसरे अन्य अपेक्षाकृत कम मात्रा में होते हैं।

व्यक्ति की तीन प्रथम लेश्याएं व्यक्ति के असंतुलित व्यक्तित्व को प्रदर्शित करती हैं। प्रथम तीन लेश्याओं में क्षुद्र या पाश्विक गुणों की प्रधानता रहती है जिसके कारण व्यक्ति क्षुद्र या पाश्विक व्यवहार करने में प्रवृत्त होता है। हत्याएं, चोरी, दूसरों को जानबूझकर कष्ट पहुंचाना, व्यभिचार करना आदि इन क्षुद्र लेश्याओं की प्रधानता का ही परिणाम है। ***आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार व्यक्ति नियमित रूप से 10–15 मिनट तक निश्चित समय पर प्रतिदिन कुछ विशेष रंगों का ध्यान करे तो उसके व्यक्तित्व में रूपान्तरण होता है। इससे वह उच्च श्रेणी की लेश्याओं को प्राप्त करता है। उसके व्यक्तित्व में संतुलन बढ़ता है और उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। रंगों पर ध्यान करने की विधि को आचार्यश्री ने "लेश्याध्यान" का नाम दिया है।***

4.2.3 हिप्पोक्रेट्स का व्यक्तित्व वर्गीकरण

पाश्चात्य जगत् में व्यक्तित्व का सर्वप्रथम वर्गीकरण संभवतः हिप्पोक्रेट्स (Hippocrates) ने ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व प्रस्तुत किया। इनके अनुसार हमारे शरीर में चार मुख्य द्रव पाये जाते हैं – 1. पीला पित्त, 2. काला पित्त, 3. रक्त तथा 4. कफ या श्लेष्मा। इनके आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार बतलाये हैं –

1. मंद (Phelgmatic) – ये वे व्यक्ति हैं जो दुर्बल शरीर वाले, स्वभाव से शान्त, निरुत्तेजित, निष्क्रिय और धीमे होते हैं। इनमें कफ द्रव की प्रधानता पायी जाती है।

2. विषादी (Melancholic) – ये वे व्यक्ति होते हैं जो साधारण शरीर वाले और स्वभाव से उदास, निराशावादी व चिन्तित रहने वाले होते हैं। इनमें काले पित्त की प्रधानता होती है।

3. क्रोधी (Choleric) – ये वे व्यक्ति हैं जो शरीर से कुछ कमजोर और स्वभाव से चिड़चिड़े, बैचेन, तुनकमिजाजी तथा शीघ्र क्रोधित होने वाले होते हैं। इनमें पीले पित्त की प्रधानता होती है।

4. आशावादी (Sanguine) – ये वे व्यक्ति हैं जो अच्छे शरीर वाले होते हैं। ये अपना कार्य शीघ्र करवाने वाले होते हैं। इनका स्वभाव प्रसन्न, खुशमिजाज उत्साह और आशाओं से भरा रहता है।

हिप्पोक्रेट्स का यह प्रकार सिद्धान्त अपने समय का काफी महत्वपूर्ण सिद्धान्त था परन्तु आज के मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसे पूर्णतः अस्वीकृत (Reject) कर दिया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि व्यक्ति के शीलगुणों तथा उसके चित्त प्रकृत्ति (temperaments) का संबंध शारीरिक द्रवों से होने का कोई सीधा वैज्ञानिक प्रमाण नहीं मिलता है। इन मनोवैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि हिप्पोक्रेट्स द्वारा बताये गये शारीरिक द्रव सचमुच में व्यक्ति में होते हैं या नहीं, इसका कोई भी वस्तुनिष्ठ प्रमाण नहीं मिलता है।

4.2.4 क्रेत्शमर का व्यक्तित्व वर्गीकरण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस सिद्धान्त को मूलतः दो भागों में बांटकर उसके द्वारा व्यक्तित्व की व्याख्या की गई है। पहले भाग में व्यक्ति के शारीरिक गुणों एवं उसके चित्त प्रकृति या स्वभाव (temperament) के संबंधों पर बल डाला गया है। इसके अन्तर्गत क्रेत्श्मर तथा शेल्डन के वर्गीकरण उल्लेखनीय है। दूसरे भाग में व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर उसे भिन्न प्रकारों में बांटकर अध्ययन करने की कोशिश की गई है। इसके अन्तर्गत युंग, आइजेन्क तथा गिलफोर्ड का नाम अधिक प्रसिद्ध है।

क्रेत्श्मर (1925) जर्मन मनोचिकित्सक थे। उन्होंने मनोरोगियों के अध्ययन से व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया। शारीरिक गठन व स्वभाव के आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार बतलाये। वे चार प्रकार निम्नांकित हैं –

(1) स्थूलकाय प्रकार (Pyknic type) – ऐसे व्यक्ति का कद छोटा होता है तथा शरीर भारी एवं गोलाकार होता है। ऐसे लोगों की गर्दन छोटी एवं मोटी होती है। ये व्यक्ति मिलनसार, हंसमुख, मैत्री रखने वाले, बातूनी तथा आराम पसन्द होते हैं। इनकी मनःस्थिति जल्दी–जल्दी बदलती रहती है। अतः इनकी चित्त प्रकृति को चक्रीय वृत्ति (Cycloid) की संज्ञा दी है। ऐसे व्यक्तियों में मानसिक रोग उत्पन्न होने पर उत्साह–विषाद (manic-depressive) मनोविकृति के लक्षण विकसित होने की संभावना अधिक होती है।

(2) कृशकाय प्रकार (Asthenic type) इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का शरीर दुबला, पतला और लम्बा होता है। इनका शरीर कृश होता है। ऐसा व्यक्ति दूसरों की आलोचना करने वाला होता है, परन्तु स्वयं की आलोचना असहनीय होती है। ऐसे लोगों का स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा होता है। ये व्यक्ति भावुक, शान्त और एकान्तप्रिय होते हैं। मानसिक रोग होने पर इनमें मनोविदलता (schizophrenia) होने की संभावना तीव्र होती है।

(3) पुष्टकाय प्रकार (Athletic type) इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों के शरीर की मांसपेशियां काफी विकसित एवं गठीली होती है। शारीरिक कद न अधिक लम्बा और न ही अधिक मोटा होता है। इनका पूरा शरीर सुडौल एवं हर तरह से संतुलित दिखाई देता है। ऐसे व्यक्ति के स्वभाव में साहस, निर्भीकता तथा प्रभुत्व के शीलगुण अधिक पाये जाते हैं। इनकी रुचि सफलता प्राप्त करने में होती है। ये आराम से अधिक कार्य को महत्व देते हैं। ये व्यक्ति समाज में अधिक सफल व प्रतिष्ठित होते हैं। कृशकाय की तरह इस वर्ग के व्यक्ति में भी मनोरोग होने पर मनोविदलता रोग होने की संभावना अधिक होती है।

(4) मिश्रकाय प्रकार – इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों का शरीर बेलोचदार तथा असामान्य होता है। इनमें ऊपर वर्णित तीनों प्रकार का मिश्रण पाया जाता है। अधिकतर मानसिक रोगियों की शारीरिक बनावट मिश्रकाय प्रकार की होती है। इनके शारीरिक विकास में कई प्रकार की असामान्यताएं पाई जाती है। इनमें अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का स्राव भी सामान्य नहीं होता है।

4.2.5 शेल्डन का वर्गीकरण

क्रेत्श्मर के वर्गीकरण को कुछ वैज्ञानिकों ने जैसे शेल्डन ने अपने अध्ययन के आधार पर बहुत वैज्ञानिक नहीं पाया। इसमें विधि प्रणाली (Methodology) से संबंधित कई दोष पाये। शेल्डन (1942) ने शारीरिक बनावट के आधार पर व्यक्तियों को तीन श्रेणियों में बांटा। उसने भिन्न–भिन्न शरीर रचना वाले व्यक्तियों की व्यक्तित्व विशेषताओं और संबंधित स्वभाव का वर्णन किया है। उन्होंने 4000 कॉलेज छात्रों की तस्वीरों का विश्लेषण किया और पाया कि उन सभी के शरीर गठनों को मूलतः निम्नांकित तीन भागों में बांटा जा सकता है –

(1) एण्डोमार्फी (Endomorphy**) –** इस तरह के व्यक्ति मोटे व नाटे कद के होते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि इस तरह के शारीरिक गठन वाले व्यक्ति आराम पसन्द, खुशमिजाज, सामाजिक एवं खाने–पीने की चीजों में अधिक अभिरूचि दिखलाने वाले होते हैं। ऐसे स्वभाव को विसरोटोनिया (Viscerotonia) कहा है।

(2) मेसोमोर्फी (Mesomorphy**)** – इस तरह के व्यक्ति के शरीर की हड्डियां एवं मांसपेशियां अधिक विकसित एवं गठीली होती है। इनका शारीरिक गठन काफी सुडौल होता है। ऐसे लोग आक्रामक, साहसी एवं सक्रिय होते हैं। इनमें संवेगात्मक दृढ़ता पायी जाती है। ऐसे स्वभाव को सोमेटोटोनिया (Somototonia) कहा गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(3) एक्टोमोर्फी (Actomorphy) – इस तरह के व्यक्ति लम्बे एवं दुबले–पतले कद के होते हैं। उनके शरीर की मांसपेशियां अविकसित होती है। ऐसे व्यक्ति स्वभाव या चित्त प्रकृति से लजालु, संकोचशील, संवेदनशील, सामाजिक मेलजोल से दूर रहने वाले, एकान्तप्रिय होते हैं। ऐसे लोग कोई भी प्रतिक्रिया तेजी से करते हैं। ऐसे स्वभाव को सेरिब्रोटोनिया (Cerebrotonia) कहा गया है।

शेल्डन के वर्गीकरण की आलोचनाओं के बावजूद यह आज मनोवैज्ञानिकों के बीच काफी लोकप्रिय है। इस सिद्धान्त ने अनेक अध्ययनों को आमंत्रित किया है। यह शोध की अभिप्रेरणा अपने आप में एक महत्वपूर्ण योगदान है।

4.2.6 युंग का व्यक्तित्व वर्गीकरण

युंग (1921) ने व्यक्तियों को अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी इन दो भागों में बांटा। यह विभाजन आज भी मनोवैज्ञानिकों में थोड़ा बहुत मान्य है।

(1) बहिर्मुखी व्यक्तित्व – इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले लोग मिलनसार, दूसरों में रुचि लेने वाले, व्यवहारकुशल, संकोचरहित, वर्तमान को महत्व देने वाले, शीघ्र निर्णय लेने वाले तथा वस्तुगत दृष्टिकोण आदि विशेषताओं वाले होते हैं। ये लोग खुशमिजाज और आशावादी होते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों में मनोरोग होने पर हिस्टीरिया रोग पाया पाया जाता है।

(2) अन्तर्मुखी – इस प्रकार के व्यक्ति कल्पनाशील, चिन्तनशील, अपने ही विचारों, भावनाओं और आदर्शों में लीन रहने वाले होते हैं। लोगों से मिलना–जुलना कम पसन्द करते हैं। एकान्त प्रिय होते हैं। देर से निर्णय लेना, देर से क्रियान्वित करना, कम बोलना, भविष्य को महत्व देना आदि इनकी प्रमुख विशेषताएं होती है। इस प्रकार के व्यक्तियों में मनोरोग होने पर साइकोसथीनिया रोग पाया जाता है।

युंग के इस सुझाव का पुष्टीकरण आइजेन्क (1947) ने किया। बाद में युंग के इस वर्गीकरण में एक अन्य प्रकार जोड़ा गया। वह है उभयमुखी व्यक्तित्व। इनमें अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों प्रकारों की विशेषताएं पायी जाती है। ये कुछ परिस्थितियों में अन्तर्मुखी व्यक्तित्व से संबंधित व्यवहार प्रदर्शित करते हैं तथा अन्य परिस्थितियों में बहिर्मुखी व्यक्तित्व से संबंधित व्यवहार प्रदर्शित करते हैं।

बोध प्रश्न

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता में व्यक्तित्व का वर्गीकरण किस तरह किया गया है ?
2. त्रिगुणातीत व्यक्तित्व का वर्गीकरण किस प्रकार संभव है ?
3. आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार व्यक्तित्व में संतुलन व विकास कैसे हो सकता है ?
4. हिप्पोक्रेट्स की दृष्टि से व्यक्तित्व का वर्गीकरण कैसे किया गया है ?

4.3.0 व्यक्तित्व : संगठन और विघटन

प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन अनेक प्रकार की स्थितियों–परिस्थितियों के सम्पर्क में आता है। वे परिस्थितियां कुछ सरल होती हैं कुछ जटिल भी होती हैं। उन परिस्थितियों के साथ व्यक्ति अपने गुणों के आधार पर अपना तालमेल या समायोजन बिठाने में सफल हो जाता है। इस समायोजन की प्रक्रिया में जो सफल होता है, प्रायः उस व्यक्ति को समायोजित व्यक्तित्व कहते हैं। दूसरी तरफ जो व्यक्ति समायोजन करने में असफल होता है उसे कुसमायोजित व्यक्तित्व कहते हैं। बहुधा देखा गया है कि समायोजित प्रकार के व्यक्ति सामान्य (Normal) कहे जाते हैं और इनका व्यक्तित्व संगठित प्रकार का होता है। इसी प्रकार कुसमायोजित व्यक्तियों का व्यवहार विघटित प्रकार का होता है और ऐसे व्यक्तियों को प्रायः हम असामान्य (Abnormal) व्यक्ति कहते हैं।

व्यक्तित्व का विघटन भी प्रायः एक जैसा नहीं होता है। कभी यह व्यक्ति के किसी एक क्षेत्र विशेष में होता है, कभी एक से अधिक क्षेत्रों में होता है और कभी यह सम्पूर्ण व्यक्तित्व में ही पाया जाता है। ऐसे व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही विघटित हो जाता है। इसी प्रकार व्यक्तित्व विघटन अस्थायी और स्थायी भी होता है। कभी कुछ क्षणों, घण्टों या दिनों का होता है परन्तु कभी–कभी व्यक्तित्व का विघटन अपेक्षाकृत स्थायी रूप से हो जाता है। संगठित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रकार के व्यक्तित्व में व्यक्ति के सभी लक्षण (Traits) समन्वित होते हैं परन्तु विघटित व्यक्तित्व में यह समन्वय पूर्णतः सामान्य रूप से नहीं होता है।

4.3.1 संगठित व्यक्तित्व की विशेषताएं

मेस्लो और मिटिलमेन (Maslow & Mittleman, 1960) ने सामान्य, समायोजित अथवा संगठित प्रकार के व्यक्तियों के कुछ लक्षणों, कसौटियों या विशेषताओं का वर्णन किया है। जैसे –

1. **सुरक्षा की उपयुक्त भावना –** ऐसे व्यक्ति अपने जीवन की सुरक्षा के प्रति लापरवाह या अतिचिन्तित नहीं होते हैं। उनमें सुरक्षा के प्रति पर्याप्त मात्रा में जागरूकता होती है।
2. **जीवन का वास्तविक उद्देश्य** – ऐसे व्यक्ति में जीवन का कोई न कोई यथार्थ लक्ष्य एवं उद्देश्य होता है। प्रायः उनका व्यवहार सप्रयोजन, लक्ष्योन्मुखी एवं उद्देश्यपरक होता है।
3. **वास्तविकता से प्रभावपूर्ण सम्बन्ध** – संगठित व्यक्ति जीवन के यथार्थ को सही तौर पर देखता और समझता है। उसी के अनुरूप जीवन को व्यतीत करता है। अनावश्यक पूर्वाग्रह, शंका, अनिर्णय एवं अनिश्चितताओं से मुक्त रहता है।
4. **उपयुक्त स्वायत्तता** – व्यक्ति में स्वायत्तता, सांस्कृतिक एवं पर्यावरण संबंधी स्वतंत्रता की एक सीमा तक अनुभूति रहती है। वह अपने आपको इनका गुलाम या दास नहीं समझता।
5. **समुचित संवेगात्मकता** – व्यक्ति में पर्याप्त मात्रा में संवेगात्मक स्थिरता होती है। वे संवेगों पर अपना एक सीमा तक नियंत्रण रखते हैं।
6. **समुचित आत्म–मूल्यांकन** – व्यक्ति अपने गुणों और सीमाओं का सही–सही मूल्यांकन करता है।
7. **पूर्व अनुभव से सीखने की समुचित योग्यता** – व्यक्ति अतीत के अनुभव, सुख–दुःख, सफलता या असफलता से सीखता रहता है।
8. **वैयक्तिकता को बनाये रखना** – अपनी व्यक्तिगत पहचान और विशिष्टता को पहचानने व बनाये रखने की क्षमता होती है।
9. **समूह की आवश्यकता को पूरा करने की योग्यता** – व्यक्ति जिस परिवार, समूह, समुदाय व समाज में रहता है उसकी अपेक्षा, आवश्यकता, मानदण्ड व मांगों को समझता है। क्षमतानुसार पूरी करने की कोशिश करता है।

जिन व्यक्तियों में अधिकांश उपर्युक्त विशेषताएं पायी जाती हैं उसे संगठित व्यक्तित्व कहते हैं। इनका व्यवहार सामाजिक मानदण्डों के अनुरूप होता है। जिन व्यक्तियों में उपर्युक्त विशेषताओं का पूर्णतः अभाव होता है तो उसे असंगठित प्रकार का व्यक्तित्व कहा जाता है। संसार के अधिकांश व्यक्तियों का व्यवहार पूर्णरूपेण संगठित नहीं होता है। उनमें किसी न किसी प्रकार का विघटन या व्यक्तित्व में विकृति पायी जाती है। थोड़े–बहुत व्यक्तित्व विघटन वाले व्यक्तियों को हम दैनिक जीवन के व्यवहार में संगठित व्यक्तित्व की श्रेणी में ही रखते हैं।

4.3.2 विघटित व्यक्तित्व और मानसिक रोग

सभी प्रकार के मानसिक रोगियों का व्यक्तित्व कुछ न कुछ मात्रा में विघटित होता है। मानसिक रोगियों के असामान्य व्यवहार के उदाहरणों की सहायता से व्यक्तित्व विघटन को समझा जा सकता है। जैसे –

1. **स्वप्नचारिता** (Somnambulism) – इस प्रकार का मानसिक रोगी नींद में ही उठकर रसोईघर में बिना टकराए हुए पहुंच जाता है। अपनी भूख के अनुसार भोजन करके वापस सो जाता है। जागने पर यदि उसको रात्रि की घटना के बारे में पूछा जाये तो उसे कुछ भी याद नहीं रहता है। इस प्रकार वह रात्रि में कुछ भी क्रिया कर सकता है।
2. **हिस्टीरिया –** इससे पीड़ित मानसिक रोगी अकारण या निष्प्रयोजन रोना, चिल्लाना, दांत पीसना, हंसना आदि क्रियाएं करता रहता है।
3. **स्मृतिभ्रंशता** (Amnesia) **–** ऐसा व्यक्ति अपने आप की पहचान को ही भूल जाता है। वह अपना नाम, परिवार का विवरण, व्यवसाय और अपने परिचितों आदि को भूल जाता है। इसी प्रकार बहुरूपी व्यक्तित्व (Multiple Personality) में व्यक्ति अपने आपको भूलने के बाद कुछ दिनों तक नया जीवन व्यतीत करता है। कुछ समय बाद फिर पुरानी स्मृति आ जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **स्नायु दुर्बलता** (Neurosthenia) – इसमें मनोरोगी अत्यन्त थकान का अनुभव करता है। उसकी यह थकान कार्य करने के कारण नहीं होती है बल्कि उसकी यह थकान मानसिक अन्तर्द्वन्द्व और कुसमायोजन के कारण होती है।
5. **मनोविदलता** (Schizophrenia) – इस प्रकार के मनोरोगी में वास्तविकता का अभाव, संवेगात्मक विकृतता, विभ्रम और व्यामोह उत्पन्न हो जाता है। आन्तरिक नियंत्रण में कमी और विघटन आदि लक्षण पाये जाते हैं।

उपर्युक्त मानसिक रोगों के उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि भिन्न–भिन्न मानसिक रोगों में किसी न किसी प्रकार का व्यक्तित्व विघटन कम अथवा अधिक मात्रा में पाया जाता है। व्यक्तित्व विघटन के अनेक कारण हैं। शारीरिक, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, मनावैज्ञानिक और वंशानुक्रम में से कोई भी कारण व्यक्ति के व्यवहार को विघटित कर सकता है। प्रायः यह देखा गया है कि विरोधी आदतें, तनाव, अन्तर्द्वन्द्व, बुद्धि की कमी, रुचियों और इच्छाओं में समायोजन का अभाव आदि के कारण व्यक्तित्व का विघटन हो जाया करता है। फ्रायड ने व्यक्तित्व विघटन का कारण यौन इच्छाओं का दमित हो जाना बताया है।

आधुनिक युग में मानसिक रोगों की चिकित्सा के लिए अनेक विधियों को अपनाया जाता है। व्यक्तित्व में उत्पन्न साधारण असामान्यताओं या विघटनों का साक्षात्कार और सुझाव की सहायता से दूर किया जा सकता है। कुछ अधिक गम्भीर व्यक्तित्व विघटन की चिकित्सा के लिए मनोविश्लेषण पद्धति का उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त अति गम्भीर व्यक्तित्व विघटन की चिकित्सा विद्युत आघात पद्धति, क्लाइण्ट सैण्टर्ड थैरेपी तथा न्यूरो सर्जरी की सहायता से की जाती है।

बोध प्रश्न

1. मानसिक रोगों के बारे में लेख लिखिये।
2. व्यक्तित्व विघटन के कारण क्या–क्या हैं ?
3. विघटित व्यक्तित्व क्या हैं एवं उसके मानसिक रोगों की चिकित्सा कैसे की जा सकती है ?

4.4.0 व्यक्तित्व और समायोजन

आधुनिक युग में स्थितियाँ तेजी से बदल रही हैं। सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं। मूल्य बदल रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति इन परिस्थितियों में कुछ न कुछ परेशानियों और समस्याओं का सामना कर रहा है। ***किसी व्यक्ति की प्रभावशीलता (Personal Effectiveness) इस बात पर निर्भर नहीं है कि वह कितनी समस्याओं और परेशानियों का सामना करता है बल्कि इस बात पर निर्भर करती है कि वह इन समस्याओं और परेशानियों के प्रति किस प्रकार से प्रतिक्रिया करता है ?*** उन परिस्थितयों से वह किस प्रकार समायोजन करता है ?

4.4.1 समायोजन और प्रतिबल

आइजेन्क और उनके साथियों के अनुसार ''समायोजन वह अवस्था है जिसमें एक ओर व्यक्ति की आवश्यकताएं और दूसरी ओर वातावरण के दावे चुनौतियां या मांगें (Claim) पूर्ण रूप से संतुष्ट होती हैं अथवा समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा आवश्यकता और दावों (Claim) में सामंजस्य सम्बन्ध स्थापित होता है।

समायोजन में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं या समस्याओं के प्रति यदि ऐसी प्रतिक्रिया (Response) करता है जिससे उसकी समस्या और वातावरण की मांगों में एकरसता या सामंजस्य आ जाता है तो व्यक्ति की अनुक्रिया या व्यवहार समायोजित प्रकार का कहा जाता है। यदि सामंजस्यपूर्ण संबंध स्थापित नहीं हो पाते हैं तो व्यक्ति का व्यवहार असमायोजित होता है। व्यक्ति अनेक बार वातावरण की समस्याओं के प्रति संघर्ष करने में अपने आपको असमर्थ पाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति भयावह और हानिकारक परिस्थिति का सामना करने में असफल रहता है। ये परिस्थितियाँ शारीरिक या मानसिक कोई भी हो सकती हैं। ऐसी अवस्था में व्यक्ति तनाव और अशान्ति का अनुभव करता है। ***तनाव और अशान्ति का मिला–जुला रूप प्रतिबल (Stress) कहलाता है।*** कोलमेन (1976) के अनुसार कोई भी परिस्थिति जो व्यक्ति पर दबाव डालती है तथा जिसके कारण व्यक्ति को समायोजन करना पड़ता है, वही प्रतिबल (Stress) है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अशान्ति और तनाव की स्थितियाँ या प्रतिबल की अवस्थाएँ चार प्रकार की हो सकती हैं – ***दबाव (Pressure), चिन्ता (Anxiety), अन्तर्द्वन्द्व (Conflict) तथा कुण्ठा (Frustration)।*** इन्हें प्रतिबल (Stress) के चार प्रकार भी कहा गया है।

4.4.2 दबाव (Pressure)

इसमें व्यक्ति यह अनुभव करता है कि उसे एक विशिष्ट भावना के अनुसार रहना या पहुंचना या व्यवहार करना है अथवा उसे तीव्र गति से हो रहे परिवर्तनों के साथ तालमेल बिठाना है या अनुकूलन करना है। व्यक्ति के अधिकांश आंतरिक दबाव उसके आत्म–प्रतिष्ठा (Self-esteem) को बनाए रखने वाले होते हैं। आन्तरिक दबाव कई बार रचनात्मक भी होता है एवं विध्वंसात्मक भी। यह रचनात्मक उस समय होता है, जब व्यक्ति अपनी शारीरिक या मनोवैज्ञानिक योग्यताओं या कौशलों या लोकप्रियता के कारण उच्च मानकों के साथ अनुरूपता स्थापित करना चाहता है। आन्तरिक दबाव उस समय विध्वंसात्मक होते हैं जब व्यक्ति अपने आपको लक्ष्यों या आदर्शों को प्राप्त करने में असमर्थ समझता है या असफल हो जाता है।

4.4.3 चिन्ता (Anxiety)

चिन्ता एक सामान्य लक्षण है जो आधुनिक युग के सभी व्यक्तियों में पाया जाता है। ***भय और आशंका की सामान्यीकृत अनुभूति ही चिन्ता है।*** यह प्रतिबल का परेशान करने वाला रूप है। चिन्ता मुख्यतः दो प्रकार की होती है। शीलगुण चिन्ता और परिस्थिति परक चिन्ता।

(1) शीलगुण चिन्ता (Trait Anxiety) – यह चिन्ता व्यक्ति की एक अपेक्षाकृत स्थायी विशेषता है। यह प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न–भिन्न मात्रा में पाई जाती है। व्यक्ति चाहे किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो, इस प्रकार की चिन्ता की मात्रा उसमें कुछ न कुछ अवश्य होती है।

(2) परिस्थिति परक चिन्ता (Strait Anxiety)– इस प्रकार की चिन्ता कुछ विशिष्ट परिस्थितियों से संबंधित होती है। इसकी तीव्रता में समय–समय पर परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। जैसे ऑपरेशन से पूर्व होने वाली चिन्ता।

4.4.4 अन्तर्द्वन्द्व (Conflict)

लेविन (1835) के अनुसार अन्तर्द्वन्द्व वह अवस्था है जिसमें विरोधी और समान शान्ति की प्रेरणा एक ही समय में कार्य करती है। इन प्रेरणाओं या मांगों को एक साथ तृप्त करना संभव नहीं होता। अन्तर्द्वन्द्व से कुण्ठा उत्पन्न होने की संभावना अधिक होती है। अन्तर्द्वन्द्व में व्यक्ति कभी तो एक प्रेरणा से संबंधित प्रत्युत्तर या व्यवहार को चुनता है तो कभी दूसरी प्रेरणा से संबंधित प्रत्युत्तर या व्यवहार को चुनता है। कभी–कभी यह भी होता है कि वह दोनों प्रेरणाओं से संबंधित किसी भी प्रत्युत्तर या व्यवहार को नहीं चुनता है।

4.4.5 कुण्ठा (Frustration)

कुण्ठा जीव की मनोवस्था है। ***यह तब उत्पन्न होती है जब किसी प्रेरणा से उत्पन्न व्यवहार को संतु ट करना कठिन हो जाता है।*** व्यक्ति में कितनी कुण्ठा होगी ? यह दो बातों पर निर्भर है। पहला उसमें किसी लक्ष्य को प्राप्त करने या व्यवहार की संतु ट करने की अभिप्रेरणा या इच्छा–शक्ति कितनी तीव्र है और दूसरा लक्ष्य प्राप्ति से वह कितना दूर है। प्रतिस्पर्धा, उच्च आकांक्षा स्तर, जन्मजात अयोग्यताएँ आदि अनेक आन्तरिक कारण हैं जिनसे व्यक्ति अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त करने पर कुण्ठित हो जाता है। इसी प्रकार बाह्य कारण के अन्तर्गत प्राकृतिक प्रकोप, दुर्घटनाएं, राजनीतिक कारण और सामाजिक बाधाएँ भी व्यक्ति को लक्ष्य प्राप्ति से वंचित कर देती है।

बोध प्रश्न

---

1. प्रतिबल (Stress) की चार अवस्थाएँ कौन–कौनसी हैं ?
2. चिन्ता मनोभाव पर टिप्पणी लिखिये।
3. व्यक्ति तनाव और अशान्ति का अनुभव कब करता है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.5.0 सारांश

- मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तियों को अलग–अलग समूहों में वर्गीकृत करने का प्रयास किया है।
- श्रीमद्भगवद् गीता में तीन गुणों के आधार पर व्यक्तियों को बांटा गया है। ये तीन गुण हैं – 1. सत्त्व गुण, 2. रजस् गुण, 3. तमस् गुण।
- जैन आगमों में भावधारा लेश्या के आधार पर छः भागों में व्यक्तियों को विभाजित किया गया है। आभामण्डल व्यक्ति के चारों ओर होता है। साधारण आंखों से यह दिखाई नहीं पड़ने पर भी आजकल विशेष केमरे बने हैं जो आभामण्डल के रंगों की फोटोग्राफी कर सकते हैं। साधारण व्यक्ति कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओं से युक्त होते हैं पर सज्जन और सच्चे संत तेजो लेश्या, पद्म लेश्या एवं शुक्ल लेश्या से युक्त होते हैं। यह वर्गीकरण शुद्ध मनोवैज्ञानिक है।
- हिप्पोक्रेट्स आदि पश्चिमी विद्वानों ने भी प्राचीनकाल से आज तक इस विषय पर चिन्तन, मनन कर जो उन्हें अनुभव हुआ व समझ में आया अपनी – अपनी दृष्टि से विश्लेषित किया।
- परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाने में सक्षम व्यक्ति को समायोजित व्यक्तित्व कहते हैं। उसका व्यक्तित्व संगठित और सामान्य प्रकार का होता है। व्यक्तित्व के संगठन के जितने लाभ हैं विघटन से उतनी ही हानियाँ हैं। व्यक्तित्व के संगठन से स्वास्थ्य लाभ मिलता है और विघटन से मानसिक बीमारियाँ होने लगती है। मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए जीवन विज्ञान में कायोत्सर्ग एवं लेश्याध्यान के उत्तम प्रयोग हैं।
- व्यक्ति वातावरण के साथ तालमेल बिठाने में असमर्थ व असफल होने पर तनाव व अशान्ति का अनुभव करता है। इस तनाव और अशान्ति को प्रतिबल (Stress) कहा गया है। इसके चार प्रकार हैं – दबाव, चिन्ता, अन्तर्द्वन्द्व और कुण्ठा। व्यक्ति अपने शीलगुणों का अधिकतम विकास करके प्रतिबल का कुशलता से सामना कर सकता है तथा वातावरण के साथ समायोजन स्थापित कर सकता है।
- व्यक्तित्व के मानसिक एवं भावात्मक विकास और स्वास्थ्य की दृष्टि से सुसंगठित और समायोजित व्यक्तित्व का बहुत बड़ा महत्त्व है।

4.6.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. श्रीमद् भगवद् गीता में सत्त्व, रजस् एवं ..... के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया गया है।
2. जैन आगमों में भावधारा ..... के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया गया है।
3. क्रेत्शमर (1925) एक जर्मन ..... थे।
4. युंग ने व्यक्तियों को दो भागों में बांटा, 1. अन्तर्मुखी, 2 ..... ।
5. ..... रोग में रोगी नींद में कुछ भी काम कर पुनः सो जाता है।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. समायोजित, सामान्य या संगठित व्यक्तित्व किसे कहते हैं ?
2. व्यक्तित्व विघटन से किन–किन रोगों की संभावना होती है किसी एक मानसिक रोग के लक्षण बताइये।

निबंधात्मक प्रश्न

1. आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के अनुसार लेश्या की परिभाषा बताते हुए व्यक्तित्व के प्रकारों के बारे में विस्तार से लिखें।
2. संगठित व्यक्तित्व की विशेषताएँ बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 2 उन्नत व्यक्तित्व का विकास और प्रेक्षाध्यान

पाठ – 5 व्यक्तित्व–विकास और स्व–प्रबन्धन

रूपरेखा

5.0.0 उद्देश्य
5.1.0 भूमिका
5.2.0 सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास
5.2.1 शारीरिक विकास
5.2.2 बौद्धिक विकास
5.2.3 मानसिक विकास
5.2.4 भावात्मक विकास
5.2.5 सामाजिक विकास
5.2.6 आध्यात्मिक विकास
5.3.0 व्यक्तित्व विकास के सोपान
5.3.1 व्यक्तित्व की भूमिकाएं और सोपान
5.3.2 स्वयं की पहचान
5.3.2.1 स्वयं के द्वारा स्वयं का अवलोकन
5.3.2.2 विश्वस्त, गंभीर व विशेषज्ञ व्यक्तियों से परामर्श
5.4.0 अध्यात्म और विज्ञान
5.4.1 चेतना विज्ञान
5.4.2 स्व–प्रबन्धन
5.4.3 स्व–प्रबन्धन और प्रेक्षाध्यान
5.4.4 स्व–प्रबन्धन और अध्यात्म
5.5.0 सारांश
5.6.0 अभ्यास प्रश्न

5.0.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों !

आज सभी अपने व्यक्तित्व को अच्छे से अच्छा बनाना चाहते हैं। गत अध्यायों में व्यक्तित्व क्या है और इसके विकास से क्या तात्पर्य है। इनको जाना। इसकी प्रक्रिया को जाने बिना हमारा प्रयास पानी पर खींची गयी लकीर के समान क्षणिक और अस्थिर मात्र रह जाता है। या मात्र कोरी कल्पना बनकर रह जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस पाठ में हम स्व–प्रबन्धन से व्यक्तित्व किस प्रकार निखर कर सामने आता है। इस विषय पर प्रकाश डालेंगे। स्व–प्रबन्धन की आवश्यकता जीवन में किस प्रकार है ? स्व–प्रबन्धन के बिना सारे प्रबन्धन किस प्रकार विफल हो जाते हैं? किस प्रकार व्यक्ति–व्यक्ति में परमात्मा की अभिव्यक्ति का अधिकतम विकास हो? आत्मा से परमात्मा बन पाएं इस दिशा में कैसे अग्रसर हों ? आदि प्रश्नों को जानने का प्रयास करेंगे।

प्रस्तुत पाठ से निम्नांकित उद्देश्यों को पूरा किया जा सकता है –

1. सर्वांगीण व्यक्तित्व का परिचय
2. व्यक्तित्व विकास के सोपानों का ज्ञान
3. अध्यात्म और विज्ञान की समीपता का बोध
4. स्व–प्रबन्धन में प्रेक्षाध्यान की भूमिका

5.1.0 भूमिका

व्यक्तित्व–विकास के लिए सबसे पहले स्वयं से परिचित होना जरूरी है। व्यक्ति के आन्तरिक एवं बाह्य तत्त्व ही व्यक्तित्व है, इनसे परिचित होना और उसका प्रबन्धन करना व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक है।

मनोवैज्ञानिकों ने स्वयं के द्वारा स्वयं के व्यक्तित्व विकास हेतु एक नई शाखा को विकसित किया जिसका नाम स्व–प्रबन्धन है। व्यक्तित्व विकास का प्रारम्भ स्व–प्रबन्धन से किया जा सकता है। स्व–प्रबन्धन का अर्थ स्वयं के द्वारा स्वयं का नियंत्रण एवं नियोजन है।

भारतीय दर्शन में अध्यात्म शब्द का अर्थ भी व्यक्तित्व के अर्थों के ही समतुल्य है। अधि+आत्म(स्वयं)=अध्यात्म, अर्थात् आत्मा के भीतर। इसका आधार योग एवं ध्यान है। और लक्ष्य समाधि अर्थात् आधि, व्याधि, उपाधि से मुक्ति।

वर्तमान युग के महान दार्शनिक एवं चिन्तक आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अध्यात्म और विज्ञान में समन्वय की आवश्यकता को देखते हुए व्यक्तित्व विकास हेतु आध्यात्मिक–वैज्ञानिक व्यक्तित्व की परिकल्पना प्रस्तुत की। इस परिकल्पना को साकार रूप देने के लिए प्रेक्षाध्यान की खोज की गई। यह एक आध्यात्मिक पद्धति है। इसका लक्ष्य है – ***''अप्पणा सच्चमेसेज्जा'', ''संपिक्खए अप्पगमप्पएणं''।*** अर्थात् स्वयं सत्य की खोज करना एवं स्वयं के द्वारा स्वयं को जानना। प्रेक्षाध्यान स्व–प्रबन्धन की भी पद्धति है।

इस प्रकार प्रेक्षाध्यान के द्वारा स्व–प्रबन्धन और स्व–प्रबन्धन से व्यक्तित्व विकास को साकार रूप देना सहज हो जाता है।

5.2.0 सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास

आज 'पर्सनलिटी' (Personality) शब्द बहुत प्रचलित है। यह आज के युवा मानस का प्रिय शब्द है। प्रत्येक युवक चाहता है कि उसकी पर्सनलिटी अच्छी बने, आकर्षक बने। यह आज की युवा पीढ़ी की चिन्ता है। पर्सनलिटी का सामान्यतया अर्थ लिया जाता है – व्यक्तित्व का बाह्य रूप। व्यक्ति की वेश–भूषा, शारीरिक गठन व बाह्य सौन्दर्य आदि। यह बाह्य रूप व्यक्तित्व का अंशमात्र है। ***सर्वांगीण व्यक्तित्व तब निखरता है जब उसके सारे आंतरिक आयाम और बाह्य पक्ष उज्ज्वल बनते हैं, उनमें निरन्तर निखार आता है और सभी पक्षों का संतुलित विकास होता है।***

5.2.1 शारीरिक विकास

हमारे व्यक्तित्व के अनेक आयाम हैं– शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, सामाजिक, भावात्मक व आध्यात्मिक। सामान्यतया युवकों का ध्यान शारीरिक आयाम व बाह्य पक्ष पर ही अधिक टिकता है। यह सत्य है कि पहली नजर में बाह्य रूप ही आकर्षण का केन्द्र होता है। शारीरिक विकास के लिए व्यक्ति खेलकूद, व्यायाम, योगासन आदि को अपनाता है। यथोचित शारीरिक पक्ष को पुष्ट करता है परन्तु व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए सभी पक्षों पर ध्यान देना आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.2.2 बौद्धिक विकास

व्यक्ति के बौद्धिक विकास के लिए आज की शिक्षा पद्धति पूरी तरह लगी हुई है। वर्तमान शिक्षा पद्धति बौद्धिक विकास के लिए अनेक विषयों से व्यक्ति को परिचित कराती है। गणित, विज्ञान आदि अनेक विषय हमारे समझने की शक्ति, तार्किक शक्ति, चिन्तन शक्ति को विकसित करते हैं किन्तु इनसे सम्पूर्ण मानसिक शक्तियों का विकास नहीं हो पाता है।

5.2.3 मानसिक विकास

व्यक्तित्व के मानसिक पक्ष का तात्पर्य है कि व्यक्ति में मानसिक एकाग्रता, मनोबल, मानसिक संतुलन व धैर्य कितना विकसित है। आज का युवा वर्ग व्यक्तित्व के इस पक्ष से अपरिचित है। यह जीवन का ऐसा पक्ष है जो हमारी सफलता का बहुत बड़ा आधार है पर आज हमारी शिक्षा प्रणाली इस कमी को पूरा करने में समर्थ नहीं है। अतः पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने शिक्षा जगत् के सामने जीवन विज्ञान का विकल्प प्रस्तुत किया है। ***यह जीवन विज्ञान मानसिक विकास और भावात्मक विकास की कमी को पूरा करता है।***

5.2.4 भावात्मक विकास

भावात्मक पक्ष व्यक्तित्व का सबसे प्रबल व ठोस पक्ष है पर आज की युवा पीढ़ी सबसे अधिक इसी से वंचित है। ***भावात्मक पक्ष के विकास का तात्पर्य है कि व्यक्ति अपने नकारात्मक भावों का परिष्कार कर सके जिससे उसमें सकारात्मक भावों का विकास हो।*** मुख्य नकारात्मक भाव हैं – क्रोध, अहंकार, लालच, कुटिलता, भय, वासना आदि। इनके परिष्कार द्वारा करुणा, विनम्रता, सरलता, संयम, निर्भयता, पवित्रता आदि सकारात्मक भावों का विकास हो।

कुछ दिनों पूर्व एक युवक आया। उसने कहा ''मुझे छोटी– छोटी बातों पर बहुत जल्दी आक्रोश आ जाता है। मैं उस क्रोधावस्था में बहुत कुछ कह देता हूं, बाद में क्रोध शान्त होने पर मुझे बहुत दुःख होता है। अनेक बार स्थिति बहुत जटिल हो जाती है। स्थिति बिगड़ जाती है। मुझे क्या करना चाहिए?'' वस्तुतः हम सब क्रोध के दुष्परिणामों से परिचित हैं। अतः सहिष्णुता, मृदुता, विनम्रता, सरलता आदि सकारात्मक भावों का मूल्यांकन करें। ये भाव हमारे व्यक्तित्व को ऊंचा उठाने में, शान्ति की अनुभूति में सहायक होते हैं। इन भावों के अभाव में ऊंचे से ऊंचा ओहदा, बड़ी से बड़ी सफलता, सारी सुख–सुविधाएं एवं समृद्धि व्यक्ति को शान्ति नहीं दे सकती। अपेक्षा है कि हम इस भावात्मक पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करें।

5.2.5 सामाजिक विकास

व्यक्तित्व का सामाजिक पक्ष उन गुणों से संबंधित है जिससे व्यक्ति परिवार व समाज में तालमेल बिठा सके, सामंजस्य स्थापित कर सके, विभिन्न परिवेश व व्यक्तियों से समायोजन कर सके, समय आने पर समूह का नेतृत्व भी कर सके। इस पक्ष का विकास सामाजिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। ***इसके अभाव में घर–परिवार नरक बन जाता है और समाज रुग्ण।***

5.2.6 आध्यात्मिक विकास

आध्यात्मिक पक्ष का तात्पर्य है कि व्यक्ति अपने आपको पहचाने, अपने आप से परिचित हो। व्यक्ति अपने मूल स्वरूप, शुद्ध चैतन्य से परिचित हो और वास्तविक गुण, योग्यता, अर्हता से भी परिचित हो। इसके साथ–साथ वह अपनी दुर्बलता, कमी या दोषों को भी पहचाने।

आध्यात्मिक पक्ष व्यक्तित्व का आधारभूत पक्ष है। व्यक्ति जब इस पक्ष पर ध्यान देता है तो उससे उसके सभी पक्ष विकसित होने लगते हैं। जब व्यक्ति अपने गुणों को पहचान लेता है तब उसमें शक्ति के सही दिशा में नियोजन की संभावनाएं बनती है। जब व्यक्ति अपने दोषों को देखता है तो उससे बचने की योग्यता विकसित होती है। जो व्यक्ति अपने गुण–दोषों को देखता है वह दोषों से खिन्न नहीं होता क्योंकि वह गुणों को भी देखता है। इसी प्रकार जो गुणों को देखता है वह अहं से अभिभूत नहीं होता क्योंकि वह दोषों को भी देखता है। ***स्वयं के गुण–दोषों की समीक्षा या प्रेक्षा जीवन में समता और संतुलन का महत्त्वपूर्ण सोपान है।***

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बोध प्रश्न

1. मानसिक विकास कैसे संभव है ?
2. नकारात्मक भाव कौन–कौन से हैं ?
3. आध्यात्मिक पक्ष का क्या तात्पर्य है ?

5.3.0 व्यक्तित्व विकास के सोपान

भगवान ऋषभ समवसरण में विराजमान थे। उनके पास उनके पुत्र आये। अपनी समस्या रखी। भगवन् ! भरत हमारी स्वाधीनता और स्वतंत्रता में हस्तक्षेप कर रहे हैं, आपके दिये हुए राज्य को छीन रहे हैं। भगवान् ने समाधान के स्वरों में कहा – ''संबुज्झह किं न बुज्झह सम्बोहि पेच्च दुल्लहा।'' जागो ! क्यों नहीं जाग रहे हो ! अपने भीतर के उस असीम व शाश्वत राज्य के प्रति जागो ! आगे बढ़ो, अपने अन्तर्राज्य को प्राप्त करो। अपने अस्तित्व आत्मा को उपलब्ध करो। यह अवसर दुर्लभ है। वे जाग गये। समाधान को पा लिया। हमेशा के लिए स्वतंत्र हो गये, मुक्त हो गये।

निराशा और हताशा व्यक्तित्व विकास की गति में अवरोध है। निराशा कब आती है? जब व्यक्ति केवल अंधकार पक्ष को ही देखता है। प्रकाश को देख ही नहीं पाता, तब निराशा आती है। महापुरुषों द्वारा दिखाई गई प्रकाश की मात्र एक रश्मि व्यक्ति में आशा का संचार कर देती है। क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जिसमें प्रकाश न हो ? क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जिसमें केवल अंधकार ही हो ? क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जिसमें कोई अच्छाई न हो ? कोई नहीं। प्रश्न इतना ही है कि हम किसके प्रति जागरूक हैं। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसमें गुण और अवगुण दोनों न हो। बस अपेक्षा इतनी है कि हम अपने गुणों के प्रति जाग जाएं। हमारी शक्ति व समय का अधिक से अधिक उपयोग गुणों के विकास में करें।

5.3.1 व्यक्तित्व की भूमिकाएं एवं सोपान

जागरण व्यक्तित्व विकास का प्रथम सोपान है। गुण और अवगुण के प्रति जागृति के अनुसार व्यक्तित्व की चार भूमिकाएं सामने आती हैं–

1. गुणों के प्रति सुप्त तथा अवगुणों के प्रति भी सुप्त – अविकसित व्यक्तित्व।
2. गुणों के प्रति सुप्त तथा अवगुणों के प्रति जागृत – अधोगति व्यक्तित्व।
3. गुणों के प्रति जागृत तथा अवगुणों के प्रति सुप्त एवं लापरवाह – विकासशील किन्तु बुराई ग्रस्त, अन्ततः पतनमुखी व्यक्तित्व।
4. गुणों के प्रति जागरूक तथा अवगुणों के प्रति भी जागरूक – विकासशील व्यक्तित्व।

सफल व्यक्तित्व के निर्माण के लिए चतुर्थ भूमिका को स्वीकार करना होगा। गुणों के प्रति जागरुक होकर उसमें समय व शक्ति का समुचित नियोजन करना होगा। अवगुणों में नियोजित समय व शक्ति को हटाना होगा। चतुर्थ भूमिका पर आरोहण के पांच सोपान हैं –

1. स्वयं की पहचान – अपनी दुर्बलताओं और विशेषताओं का भान करना।
2. अपनी विशेषताओं का विकास करना।
3. अपनी दुर्बलताओं को समाप्त करने के लिए अपनी विशेषताओं का कारगर ढंग से उपयोग करना।
4. अपनी क्षमताओं को सार्थक लक्ष्य द्वारा एक सही दिशा में नियोजित करना।
5. अपनी क्षमताओं का स्व–पर कल्याण की भावना से अधिकतम उपयोग करना एवं अपना योगदान देना।

5.3.2 स्वयं की पहचान

समस्या यह है कि स्वयं की पहचान कैसे हो? किस प्रकार स्वयं के गुणों और अवगुणों की पहचान करें? किस प्रकार समय और शक्ति का सही नियोजन करें? किस प्रकार अवगुणों को दूर करें?

स्वयं के गुण–अवगुणों की पहचान के लिए अनेक उपाय हो सकते हैं। उन्हें मुख्य दो भागों में बांट सकते हैं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(अ) स्वयं के द्वारा स्वयं का बार बार अवलोकन करना।

(ब) विश्वस्त, गंभीर, विशेषज्ञ व्यक्तियों से परामर्श करना।

5.3.2.1 स्वयं के द्वारा स्वयं का अवलोकन

आत्म निरीक्षण करना ही प्रेक्षा है। इसकी पूरी पद्धति है। इसमें स्वयं के द्वारा स्वयं का अवलोकन किया जाता है। प्रेक्षाध्यान पद्धति में साधक 'प्रतिक्रमण योग' का अभ्यास करते हैं। इसके भी दो रूप हैं– लिखित और सुबह–सायं मानसिक रूप से ।

(i) डायरी लेखन – प्रतिदिन का लेखा जोखा करना व रखना डायरी लेखन है। विश्व की महान् विभूतियों में से अनेकों ने डायरी लेखन किया है। वे उनसे लाभान्वित होते रहे हैं। वे ही नहीं उनसे दूसरे लोग भी अमूल्य प्रेरणाओं को प्राप्त करते हैं। महात्मा गांधी डायरी लिखते थे। उनसे वे स्वयं तो लाभान्वित हुए ही, अन्य हजारों लोग भी लाभान्वित होते रहे हैं। पिछले पच्चीस वर्षों से मैं यदा कदा डायरी लिखता रहा हूं। इस लेखन के प्रारम्भ में कठिनाइयां आई किन्तु कालान्तर में वे स्वतः समाहित हो गईं। इससे मैं बहुत लाभान्वित हुआ और अनुभव भी निरन्तर बढ़ा है। इससे अपने आप को समझने में बहुत अधिक मदद मिली। मेरे द्वारा डायरी लेखन में इन तथ्यों का समावेश विशेष रूप से हुआ। वे तथ्य हैं– (1) स्व–विश्लेषण (2) पर–गुण विश्लेषण, (3) स्वतः सुझाव, (4) स्वकथ्य, (5) स्व समीक्षा, (6) घटना के प्रति अपना चिन्तन (7) किसी एक विषय पर नये नये प्रयोग, अवलोकन, विश्लेषण, सामान्य नियम का निर्माण व परीक्षण।

उपरोक्त तथ्यों के लेखन व विश्लेषण से स्वयं के गुण दोषों को पहचानने में मदद मिली। इसी के अन्तर्गत दूसरा उपाय है – दैनिक अवलोकन।

(ii) दैनिक मानसिक अवलोकन – यह मानसिक अवलोकन दिन भर में की जाने वाली क्रियाओं का क्रमिक स्मरण है। पुनरावलोकन के अन्तर्गत दिन भर मे की गई क्रियाओं का पुनः अवलोकन सोने से पूर्व किया जाता है। पुनरावलोकन से अपनी अच्छाई व बुराई, गुण–दोष, सबल–दुर्बल पक्ष की जानकारी मिलती है। पूर्वावलोकन प्रातः उठने के बाद दिन भर में की जाने वाली क्रियाओं का पूर्व स्मरण है। इससे उनके प्रति जागरुकता व सतर्कता का संकल्प जागता है।

5.3.2.2 विश्वस्त, गंभीर व विशेषज्ञ व्यक्तियों से परामर्श

स्वयं की पहचान का दूसरा उपाय है– विश्वस्त, गंभीर व विशेषज्ञ पुरुषों से अपने बारे में जानना। विश्वस्त व्यक्तियों में अपने माता–पिता तथा परिजन आते हैं जो सदैव हमारे हित में सोचते हैं। अतः उनसे भी हम अपने बारे में पता कर सकते हैं। गुरुजन, अध्यापक, शिक्षक, संत–मुनिगण गंभीर होते हैं जो दूसरों का, अपने शिष्यों का हित चाहते हैं। उनसे भी हम अपने बारे में जान सकते हैं। विशेषज्ञ में उन्हें ले सकते हैं जो अपनी विद्या की विशिष्टता द्वारा हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं। जैसे– मनोवैज्ञानिक अपने ज्ञान तथा उपलब्ध परीक्षणों द्वारा व्यक्ति को स्वयं की विशेषाताओं और दुर्बलताओं से परिचित करा कर मार्गदर्शन कर सकते हैं। इसी प्रकार हस्तरेखा विशेषज्ञ तथा कुण्डली विशेषज्ञ भी व्यक्ति को उसकी विशेषताओं एवं दुर्बलताओं से परिचित कराकर मार्गदर्शन कर सकते हैं।

बोध प्रश्न

---

1. व्यक्तित्व विकास के मार्ग में अति अवरोधक क्या है ?
2. व्यक्तित्व विकास का प्रथम सोपान क्या है ?
3. विकासशील व्यक्तित्व की क्या पहचान है ?
4. पुनरावलोकन (आत्मावलोकन) क्या है ?

5.4.0 अध्यात्म और विज्ञान

प्राचीन काल से ही जीवन की मुख्य दो धाराएं मानी जाती रही हैं– अध्यात्मवादी एवं भौतिकवादी। जीवन की यात्रा का निर्वाह कोरे अध्यात्मवाद से संभव नहीं है। जीवन में शान्ति और समाधि कोरे पदार्थवाद से भी संभव नहीं हैं। ***जीवन निर्वाह के***

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लिए पदार्थ आवश्यक है तो जीवन में शान्ति एवं समाधि के लिए अध्यात्म। एकांतिक–दृष्टिकोण से जीवन कभी सफल नहीं हो सकता। सफलता का सूत्र है अनेकान्त का दृष्टिकोण। यह भगवान महावीर का एक प्रमुख संदेश रहा है। मनोवैज्ञानिक भी इस सच्चाई का अनुभव करने लगे हैं।

5.4.1 चेतना विज्ञान

इस सत्य को आज प्रबुद्ध लोग भी अनुभव कर रहे हैं। इसी का परिणाम है कि प्रसिद्ध वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, पर्यावरण वैज्ञानिक, चिकित्सक, समाजशास्त्री, शांति अन्वेषक आदि मनीषियों का रुझान अध्यात्म–अन्वेषण की ओर झुका है। इन मनीषियों में अध्यात्म को अपने क्षेत्र से जोड़कर अपूर्णता को पूर्णता एवं एकान्तिकता को अनेकान्तिकता में परिवर्तन करने की तीव्र अभिरुचि जागी है। इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है– भौतिक विज्ञान की सलाहकार समिति के परामर्श को पढ़ने से।[1]

यह घटना 1982 की है। अमेरिका की सरकार ने अपनी वैज्ञानिक सलाहकार समिति से परामर्श मांगा कि आने वाले सौ साल बाद किस प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान की जरूरत होगी ? आप हमें बताएं। उस दिशा में अभी से कार्य प्रारम्भ करें। उसके लिए जितना भी अनुदान अपेक्षित है, वह हमसे लें। ***वैज्ञानिक सलाहकार समिति ने कहा – आने वाले सौ साल पश्चात् हमें– ''चेतना के भौतिक विज्ञान'' (Physics of Consciousness) की जरूरत होगी।*** ''मन और शरीर'' के अन्तःसंबंधों की जानकारी की जरूरत होगी क्योंकि मन/चेतना में देश और काल से परे जानने की क्षमता है। अतः इस दिशा में अविलम्ब कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए।

इस प्रकार अध्यात्म के सिद्धान्तों की खोज, चेतना के नियमों की खोज विज्ञान की दिशा से भी प्रारम्भ हो गई हैं। यह केवल भौतिक विज्ञान की ही बात नहीं, जीव–विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, मनोविज्ञान, समाज विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों से ऐसी मांग प्रारम्भ हुई है।

5.4.2 स्व–प्रबंधन

मनोवैज्ञानिकों ने स्वयं के द्वारा स्वयं के व्यक्तित्व विकास हेतु एक नई शाखा को विकसित किया है। उसका नाम है – स्व–प्रबन्धन। वस्तुतः इसे अध्यात्म का आधुनिक संस्करण भी कहा जा सकता है। इसमें स्वयं के जीवन के विकास पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है।

अध्यात्म जीवन का अभिन्न अंग है। मूल अंग है। अध्यात्म के सिद्धान्त से रिक्त होकर जीवन का कोई भी क्षेत्र संतोषजनक प्रगति नहीं कर सकता। व्यक्ति का जीवन शांत व समाधिमय नहीं हो सकता। जहां जीवन को अध्यात्म से काट कर देखा गया, वहां अनर्थ ही घटित हुआ है, दुःख बढ़ा है, समस्याएं बढ़ी हैं। आज इसका अनुभव अनेक प्रबुद्ध मनीषी कर रहे हैं। वे अपने–अपने विषयों में अध्यात्म का प्रवेश कैसे हो, कैसे उसके अधूरेपन को पूरा किया जाए – इस पर गहन चिन्तन कर रहे हैं। कतिपय विद्वानों ने उसका समावेश भी किया है। इसका स्पष्ट प्रमाण है–आज के मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रदत्त ''स्व–प्रबंधन'' (Personal Management)।

''स्व–प्रबंधन'' की धुरी दूसरे पर नहीं स्वयं पर आधारित है। ***स्व–प्रबंधन का केन्द्र बिन्दु बनाया गया है– स्वयं के प्रति जागरूकता को।***[2] हजारों वर्षों से अध्यात्म का सूत्र रहा है –''स्वयं को जानो''। स्वयं के प्रति जागरूक रहो।

स्व–प्रबंधन का अर्थ है– स्वयं का प्रबंधन जिसका तात्पर्य है– आन्तरिक जगत् की भावना, कल्पना, चिन्तन और इच्छा का बाह्य जगत् से सम्बन्ध, कार्य–क्षेत्र और समाज के साथ सामंजस्य, समायोजन व व्यवस्थापन।

इसके लिए मात्र भौतिक विकास पर्याप्त नहीं किन्तु आध्यात्मिक जागरण की अपेक्षा है। आज इसकी अनुभूति ''स्व–प्रबंधन'' करा रहा है। अच्छे वैयक्तिक प्रबंधन के लिए भी आध्यात्मिक जागरण की अपेक्षा महसूस की गई है। वे कहते हैं कि अच्छे प्रबंधन के लिए साहस एवं लचीलेपन की जरूरत है। अपने आपसे परिचित होने की जरूरत है।

---

[1]. Report to the house of Representatives, U.S.A. by the committee of Science & Techonogy.
[2]. Personal Management page -19

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अपनी योग्यता से परिचित होने की जरूरत है। इसके लिए सर्वाधिक आवश्यक है– निरन्तर जागरूक रहकर अपना निरीक्षण करना।

5.4.3 स्व–प्रबंधन और प्रेक्षाध्यान

''प्रेक्षाध्यान पद्धति'' आध्यात्मिक उत्कर्ष की प्रक्रिया है। इसके सूत्र हैं – प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन, दिल और दिमाग का संतुलन। ये ही सूत्र आज ''स्व–प्रबंधन'' के केन्द्र में हैं। उनकी दृष्टि में ***स्व–प्रबन्धन का तात्पर्य है– जीवन में संतुलन बनाए रखना।*** परिवार और ऑफिस के समय का संतुलन। चिन्तन और भावना का संतुलन। 'करने' और 'होने' का संतुलन। कर्तृत्व और अस्तित्व–बोध का संतुलन।

अध्यात्म मनीषि आचार्य श्री महाप्रज्ञ का प्रसिद्ध सूक्त है –'रहो भीतर, जीयो बाहर।' इसी की ध्वनि हमें स्व–प्रबंधन में सुनाई देती है। प्रभावपूर्ण स्व–प्रबंधन का अर्थ है – आन्तरिक गतिविधियों एवं सामाजिक प्रवृत्तियों को स्व–बोध की दिशा में नियोजित करना। ***स्व–बोध का तात्पर्य है – अपने आप से परिचित होना। जो हम हैं, वही होना। अपनी विशिष्ट क्षमताओं का बोध करना। सार्थक लक्ष्य का निर्माण करना एवं सार्थक लक्ष्य को प्राप्त करना।*** यह स्व–बोध जीवन को गहनता, सार्थकता एवं दिशा–बोध से परिपूर्ण बनाता है।

बाहर में जीना अनिवार्य है किन्तु केवल बाहर में जीने से संतोष, समाधि एवं शान्ति की अनुभूति संभव नहीं। बाहर एवं भीतर सामंजस्य स्थापित करने की अपेक्षा है। निश्चय एवं व्यवहार में संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता है। बाहर में जीते हुए भी आन्तरिक अनुसंधान व अपने प्रति जागरूकता आवश्यक है। ***''स्व–प्रबंधन'' का प्रमुख कार्य है– आन्तरिक अपेक्षाओं एवं सामाजिक अपेक्षाओं का कुशल समायोजन एवं सामंजस्य स्थापित करना।*** इसका तात्पर्य है– ऐसे कार्यक्षेत्र का चयन जो आन्तरिक आवश्यकता और बाह्य सामाजिक अपेक्षा की भी पूर्ति करता हो। प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य है– **''अप्पणा सच्चमेसेज्जा''** –स्वयं सत्य की खोज करना।[1] उसकी प्रविधि है– **''संपिक्खए अप्पगमप्पएणं''** स्वयं स्वयं को जानना।[2] इसके अगले चरण हैं–

1. अपने में आस्था–निर्माण।
2. स्व–लक्ष्य का निर्माण।
3. शक्तियों का विकास।
4. समाधि, संतुलन एवं स्वस्थ जीवन के लिए शक्तियों का अधिकतम नियोजन।
5. तनावमुक्त जीवन।

इनकी तुलना वैयक्तिक प्रबंधन के इन चरणों से करें –

1. स्वयं की खोज (Self-discovery)
2. स्वयं में आस्था–निर्माण (Self-esteem), आत्म विश्वास।
3. जीवन में स्वनिर्देशन और कार्य क्षेत्र का चयन। (Self-direction and career selection)
4. स्वयं की योग्यताओं का विकास। (Developing capabilities)
5. स्वयं का प्रभावी नियोजन। (Effective self-involvement)
6. दबावों का कुशल प्रबन्धन। (Stress management)

तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन का कोई भी क्षेत्र अध्यात्म से अछूता नहीं है। अध्यात्म समग्र जीवन को प्रकाशित करता है। अध्यात्म विज्ञान इस समस्याकुल विश्व में व्यक्ति को शान्तिपूर्ण जीवन जीने की कला सिखाता है। यही उद्देश्य स्व–प्रबंधन का भी है। ***प्रेक्षाध्यान स्वयं की सुषुप्त शक्तियों से परिचित होने की अमोघ पद्धति है। इससे दूसरों को भी उनकी शक्तियों से परिचित कराने की योग्यता प्राप्त होती है।*** यह सन्तुष्ट एवं सफल जीवन जीने का मार्ग है। इससे व्यावहारिक संबंध मधुर एवं प्रभावशाली बनते हैं। यह अपने जीवन की लगाम अपने हाथ में लेने का प्रयोग

[1]. उत्तराध्ययन
[2]. दसवैकालिक–चूलिका द्वितीय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। इससे आन्तरिक जीवन एवं बाह्य जीवन का संतुलन स्थापित होता है। अपेक्षा है इसके सिद्धान्त, प्रयोग, उपयोग को समझने, सीखने और जीवन में अपनाने की।

5.4.4 स्व–प्रबंधन और अध्यात्म

स्व–प्रबंधन के विशेषज्ञों ने स्वास्थ्य और अधिकतम शक्ति को बनाये रखने के लिए आध्यात्मिक आयाम को अनिवार्य माना है। उन्हीं के शब्दों में –"Even those who reject religion must realise that the spiritual or soulful dimension is necessary to maintain health and full potential"[1] ***जो व्यक्ति धर्म को अस्वीकार करते हैं, उन्हें भी यह जानना चाहिए कि जीवन में स्वास्थ्य एवं स्वयं की अधिकतम शक्ति को बनाये रखने के लिए अध्यात्म या आत्मिक आयाम अनिवार्य है।***

आज अपेक्षा है कि अध्यात्म के क्षेत्र में काम करने वाले लोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को अध्यात्म का अवदान दें जिससे जीवन में घटित होने वाली अशान्ति को कम किया जा सके। इस दृष्टि से अध्यात्म के सिद्धान्तों और प्रयोगों का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से जुड़ी हुई समस्या का समाधान में उपयोग अपेक्षित है। आज उन क्षेत्रों से जुड़े हुए लोगों में यह प्यास जगी है। इस पर वे चिन्तन, मनन व अनुसंधान कर रहे हैं। अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय के इस युग में समन्वय ही विश्व में बढ़ते विनाशकारी कदमों को रोकने, मोड़ने और उनकी दिशा बदलने में सक्षम हैं। यह दिशा परिवर्तन ही स्वस्थ व्यक्ति और स्वस्थ समाज के निर्माण में सफल प्रस्थान सिद्ध होगा।

बोध प्रश्न

---

1. आने वाले सौ साल के बाद किस प्रकार के अनुसंधान की जरूरत है ?
2. विज्ञान की वह शाखा जिसके द्वारा स्वयं का विकास किया किया जाता है –
   (अ) स्व–प्रबन्धन (ब) भौतिक विज्ञान
   (स) जीव विज्ञान (द) नागरिक शास्त्र ( )
3. स्व–प्रबन्धन का केन्द्र बिन्दु किसे बनाया गया है ?
4. 'रहो भीतर, जीयो बाहर' किस संत का बोध वाक्य है ?
5. स्व बोध का क्या तात्पर्य है ?

5.5.0 सारांश

- प्रत्येक युवा चाहता है कि उसका व्यक्तित्व अच्छा एवं आकर्षक बनें। आकर्षक व्यक्तित्व से सामान्यतया व्यक्तित्व का बाह्य स्वरूप ही लिया जाता है किन्तु सम्पूर्ण व्यक्तित्व तब निखरता है जब उसके सभी आयामों का संतुलित विकास होता है।
- हमारे व्यक्तित्व के अनेक आयाम हैं – शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक व आध्यात्मिक। जीवन विज्ञान इन सबके विकास मे बहुत सहायक है।
- व्यक्तित्व विकास की गति में सबसे बड़ा अवरोध है – निराशा। यह तब आती है जब व्यक्ति अपने जीवन के केवल अंधकार पक्ष को ही देखता है; प्रकाश को नहीं देख पाता। यदि वह प्रकाश को देख पाये तो उसके व्यक्तित्व विकास के मार्ग में आने वाली बाधाएं स्वतः ही दूर हो जाती है। अपने जीवन के उज्ज्वल पक्ष को देखना, उसके प्रति जागरुक होना व्यक्तित्व विकास का प्रथम सोपान है। गुणों के प्रति जागरूक तथा अवगुणों के प्रति भी सावधान रहने की भी भूमिका सफल व्यक्तित्व के निर्माण हेतु अति महत्वपूर्ण है। प्रतिदिन स्वयं का आत्म निरीक्षण करना इसका एक सशक्त उपाय है।

---

[1] . Personal Management. Page 71.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- वर्तमान युग में प्रबुद्ध लोगों में आध्यात्मिक सिद्धान्तों के प्रति तीव्र आकर्षण बढ़ रहा है। मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व विकास हेतु एक नई शाखा का विकास किया है – स्व–प्रबन्धन। इसका केन्द्र बिन्दु है – स्वयं के प्रति जागरुक रहना। प्राचीन समय से अध्यात्म का यह सूत्र रहा है – स्वयं को जानो। स्वयं को जानने की शक्तिशाली पद्धति है – प्रेक्षाध्यान। स्व–प्रबन्धन के विशेषज्ञों के अनुसार स्वास्थ्य एवं अधिकतम शान्ति को बनाये रखने के लिए जीवन में आध्यात्मिक विकास अनिवार्य है।

5.6.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. सर्वांगीण व्यक्तित्व कब निखरता है ?
2. हमारे व्यक्तित्व के कौन–कौन से आयाम हैं ?
3. जीवन में समता और संतुलन का महत्वपूर्ण सोपान क्या है ?
4. प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य क्या है ?
5. जीवन में स्वास्थ्य एवं स्वयं की अधिकतम शक्ति को बनाये रखने के लिए क्या अनिवार्य है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. स्व–प्रबन्धन और प्रेक्षाध्यान के परस्पर संबंध पर प्रकाश डालिये।
2. स्व की पहचान कैसे हो ?
3. व्यक्तित्व की चार भूमिकाएं कौनसी हैं ? संक्षेप में बताएं।

निबंधात्मक प्रश्न

1- स्व–प्रबन्धन और अध्यात्मक की तुलनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 2 उन्नत व्यक्तित्व का विकास और प्रेक्षाध्यान

पाठ – 6 प्रेक्षाध्यान और अखण्ड व्यक्तित्व विकास

रूपरेखा

6.0.0 उद्देश्य
6.1.0 भूमिका
6.2.0 अखण्ड व्यक्तित्व और प्रेक्षाध्यान
6.2.1 सहायक अंग
6.2.2 मुख्य अंग
6.2.3 विशिष्ट अंग
6.3.0 व्यक्तित्व : स्वरूप और संरचना
6.3.1 अखण्ड व्यक्तित्व
6.3.2 शरीर के स्तर
6.3.3 चेतना के स्तर
6.4.0 व्यक्तित्व – कार्य प्रणाली और प्रेक्षा
6.4.1 व्यक्तित्व विघटन
6.4.2 प्रेक्षाध्यान : अखण्ड व्यक्तित्व का विकास
6.5.0 प्रेक्षाध्यान की विशेषताएं
6.5.1 अनुभव परक
6.5.2 विज्ञान सम्मत और स्वास्थ्य संवर्द्धक
6.5.3 सीखने में सरल
6.6.0 सारांश
6.7.0 अभ्यास–प्रश्न

6.0.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों ! अभी गत अध्याय में हमने व्यक्तित्व के विकास में स्व–प्रबन्धन की भूमिका का विस्तृत अध्ययन किया। हमने जाना कि किस प्रकार स्व–प्रबन्धन किया जाये एवं कैसे प्रेक्षाध्यान की सहायता से सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है।

अपनी चेतना की क्षमता को समझे बिना, अन्तःस्रावी ग्रन्थितंत्र व नाड़ी तंत्र में संतुलन बनाए बिना सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास कठिन हो जाता है। चेतना सूक्ष्म होने के कारण उसको जानना मुश्किल होता है परन्तु प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों से स्थूल से चलकर सूक्ष्म चेतना को जाना जा सकता है। इसके लिए प्रेक्षाध्यान को जानना एवं उसके अभ्यास से अपनी क्षमताओं का समुचित विकास व उपयोग करना जरूरी है।

प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों से किस प्रकार विकसित, संगठित, उन्नत व अखण्ड व्यक्तित्व विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। इस अध्याय में जानने का प्रयास करेंगे। इस प्रकार इस पाठ से हम जानेंगे –

1. अखण्ड व्यक्तित्व निर्माण में प्रेक्षाध्यान के विभिन्न अंगों का महत्त्व।
2. प्रेक्षाध्यान की दृष्टि से व्यक्तित्व का वास्तविक स्वरूप और उसकी संरचना का ज्ञान।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. व्यक्तित्व की कार्य–प्रणाली में प्रेक्षाध्यान की भूमिका।

4. प्रेक्षाध्यान की प्रमुख विशेषताएँ।

6.1.0 भूमिका

संसार में मुख्यतः दो प्रकार की विचारधाराएं प्रचलित हैं – अध्यात्मवादी विचारधारा एवं भौतिकवादी विचारधारा। जीवन जीने के लिए भौतिक संसाधनों की भी अपेक्षा होती है और जीवन में शान्ति के लिए अध्यात्म की। सामान्यतः व्यक्ति भौतिकवादी विचारधारा की स्थिति में रहता है। सुख–सुविधा के लिए सबकुछ करने को तैयार रहता है किन्तु जीवन में शान्ति के लिए अध्यात्म का अभ्यास नहीं करता। इसी असंतुलन की तराजू पर व्यक्ति का व्यक्तित्व डोलता रहता है। व्यक्ति से परिवार व समाज की बहुत सारी अपेक्षाएं होती हैं। व्यक्ति के अन्दर भी अनेक मानसिक द्वन्द्व चलते रहते हैं। अनेक बार तालमेल व समायोजन के अभाव में सफलता नहीं मिलती है। इससे व्यक्ति मानसिक व भावनात्मक रूप से टूट जाता है। इससे व्यक्तित्व विघटित हो जाता है।

आज आवश्यकता है मानव को इस स्थिति से मुक्त करने की जिससे अखण्ड व्यक्तित्व उभर कर सामने आए। प्रेक्षाध्यान इसी लक्ष्य–प्राप्ति की सुसंगठित और शक्तिशाली प्रविधि है। इससे व्यक्तित्व रूपान्तरण आसान हो जाता है। अतः प्रेक्षाध्यान का समुचित प्रयोग किया जाये तो अखण्ड व्यक्तित्व निखर कर सामने आ सकता है।

6.2.0 अखण्ड व्यक्तित्व और प्रेक्षाध्यान

जीवन निर्वाह के लिए भौतिक संसाधन एवं जीवन में शान्ति के लिए आध्यात्मिक अनुभूति की आवश्यकता होती है। दोनों के संतुलन से ही जीवन में सार्थकता, समृद्धि व सफलता प्राप्त होती है किन्तु अत्यधिक भौतिक पदार्थों की आकांक्षा से संतुलन बिगड़ जाता है। व्यक्ति भावात्मक रूप से अस्थिर हो जाता है। इससे व्यक्ति का ग्रन्थि तंत्र गड़बड़ा जाता है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति का अनुकम्पी नाड़ी तंत्र अधिक सक्रिय हो जाता है। मांसपेशियां तनावग्रस्त हो जाती हैं। उसका व्यवहार भी असंतुलित हो जाता है। यदि व्यक्ति सही समय पर नहीं संभले तो पारस्परिक संबंधों में दरारें पड़ने लगती हैं। व्यक्ति सोचता कुछ है, कहता कुछ और है एवं करता उससे भी अलग है। व्यक्तित्व की एकरूपता कमजोर होने लगती है। ***व्यक्तित्व विखण्डित हो जाता है। अखण्ड व्यक्तित्व निर्माण के लिए व्यक्ति को अपनी चेतना की क्षमता और स्वतंत्र इच्छाशक्ति का उपयोग करना होगा।*** पुनः सम्पूर्ण शारीरिक तंत्रों में संतुलन स्थापित करते हुए अखण्ड व्यक्तित्व निर्माण की दिशा में अग्रसर होना होगा। ग्रन्थि तंत्र व नाड़ी तंत्र में संतुलन लाते हुए मांसपेशियों को तनावमुक्त करना होगा।

प्रेक्षाध्यान अखण्ड व्यक्तित्व निर्माण की एक शक्तिशाली प्रविधि है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें हम अपनी चेतना की विलक्षण क्षमता "जागरूकता" का उपयोग करते हैं। इससे मांसपेशियों के तनाव को दूर करते हैं। नाड़ी–ग्रन्थितंत्र में संतुलन लाते हैं। अपने व्यवहार में परिवर्तन करते हैं। हम अपनी चेतना की क्षमता **"जागरूकता"** का अपनी इच्छा से उपयोग करते हुए अपने अस्तित्व के विभिन्न स्तरों को देखते हुए, अनुभव करते हुए उसमें रूपान्तरण घटित करते हैं। अपने व्यक्तित्व के विभिन्न स्तरों पर जागरूकता का अभ्यास इस पद्धति का आधार है। ***प्रेक्षाध्यान पद्धति के चार सहायक, आठ मुख्य एवं तीन विशिष्ट अंग हैं –***

6.2.1 सहायक अंग

- **आसन** – शरीर को स्वस्थ, सुदृढ़, स्थिर व साधनानुकूल बनाये रखने में सहायता करते हैं।
- **प्राणायाम** – प्राणशक्ति को संतुलित व विकसित करने में सहायता करते हैं।
- **ध्वनि** – विचारों को शान्त, मन को एकाग्र तथा बुरे कम्पनों से स्वयं की सुरक्षा करने में सहायता करती है।
- **मुद्रा** – पवित्र भाव को बनाये रखने और प्राण प्रवाह को एक निश्चित दिशा देने में सहायता करती है।

6.2.2 मुख्य अंग

- **कायोत्सर्ग** – व्यक्ति इसके द्वारा शरीर के प्रति जागरुक होकर अपने सुझावों द्वारा मांसपेशीय व स्नायविक तनावों को दूर कर स्वयं की अनुभूति करता है।
- **अन्तर्यात्रा** – इसके द्वारा व्यक्ति अपनी शक्तियों का ऊर्ध्वारोहण करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- **श्वास प्रेक्षा** – इसमें श्वास के प्रति जागरुकता का अभ्यास किया जाता है जिससे एकाग्रता का विकास होता है।
- **शरीर प्रेक्षा** – इसमें शरीर के प्रत्येक अंग के प्रति जागरुकता का अभ्यास किया जाता है। इससे प्राण का संतुलन व स्वयं की चेतना की अनुभूति होती है।
- **चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा** – इसमें शरीर में निहित चेतना के विशिष्ट केन्द्रों पर जागरुकता का अभ्यास किया जाता है। इससे व्यक्तित्व की विशिष्ट क्षमताओं का जागरण होता है।
- **लेश्याध्यान** – इसमें अपने व्यक्तित्व की सूक्ष्म रंगीन तरंगों के प्रति जागरुकता का अभ्यास किया जाता है। इससे भावधारा निर्मल होती है। आभामण्डल विशुद्ध और तेजस्वी बनता है।
- **अनुप्रेक्षा** – इसमें शाश्वत सत्य के प्रति जागरुकता का अभ्यास किया जाता है। इससे शाश्वत सत्य का बोध होता है। मन की मूर्च्छा टूटती है।
- **भावना** – इसमें सद्विचारों का बार बार पुनरावर्तन व अभ्यास किया जाता है। इससे सद् संस्कारों का निर्माण होता है।

6.2.3 विशिष्ट अंग

- **वर्तमान क्षण की प्रेक्षा** – इसमें वर्तमान क्षण के प्रति जागरुकता का अभ्यास किया जाता है। इससे चेतना की अनुभूति प्रखर होती है।
- **विचार प्रेक्षा** – इसमें अपने विचारों के प्रति जागरुक रहने का अभ्यास किया जाता है। इससे बुरे संस्कारों से मुक्त होने में सहायता मिलती है।
- **अनिमेष प्रेक्षा** – पलक झपकाये बिना केवल जागरुकता का अभ्यास। इससे चेतना की शक्ति जागृत होती है। द्रष्टा का बोध विकसित होता है।

बोध प्रश्न

1. अखण्ड व्यक्तित्व निर्माण के लिए व्यक्ति को क्या करना होगा ?
2. चेतना की विलक्षण क्षमता क्या है ?
3. वर्तमान क्षण की प्रेक्षा क्या है ?

6.3.0 व्यक्तित्व : स्वरूप और संरचना

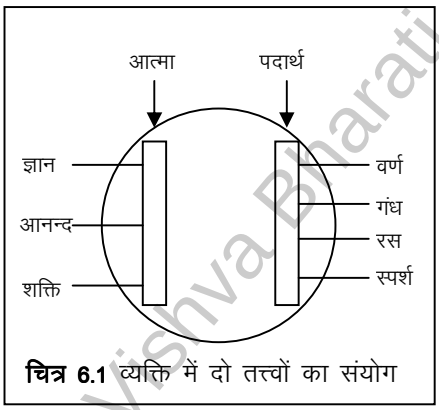

चित्र 6.1 व्यक्ति में दो तत्त्वों का संयोग

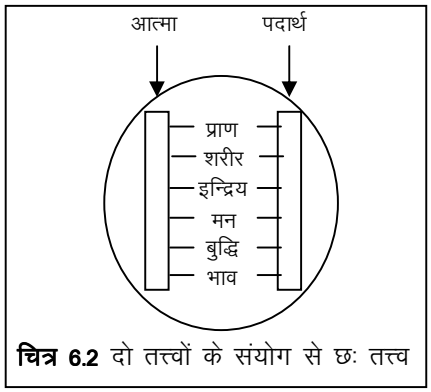

चित्र 6.2 दो तत्त्वों के संयोग से छः तत्त्व

विभिन्न दर्शनों में व्यक्तित्व पर भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से विचार हुआ है। प्रेक्षा प्रणेता आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने व्यक्तित्व के स्वरूप को आधुनिक संदर्भों में समझाते हुए बताया है कि संसार में मुख्य रूप से दो प्रकार के तत्व हैं – सजीव और निर्जीव। सजीव वे तत्व हैं जिनमें चेतना है, आत्मा है। निर्जीव वे पदार्थ हैं जिनमें आत्मा या चेतना नहीं है। हमारे व्यक्तित्व में भी दोनों प्रकार के तत्वों का संयोग है। (चित्र 6.1) आत्मा के साथ निर्जीव जड़ पदार्थ भी जुड़ा हुआ है। अध्यात्म विज्ञान के अनुसार आत्मा के तीन मुख्य गुण है–आनन्द, ज्ञान और शक्ति। इसी प्रकार व्यक्ति जब इन्द्रियों के माध्यम से जड़ को जानता है तब निर्जीव जड़ पदार्थ के भी मुख्य चार गुणों का बोध करता है– स्पर्श, रस, गंध और वर्ण। आत्मा और जड़ के संयोग से हमारे व्यक्तित्व में छह तत्वों का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उद्भव होता है – प्राण, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और भाव। (चित्र 6.2) इन सब स्तरों पर हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व संचालित होता है।

6.3.1 अखण्ड व्यक्तित्व

सामान्यतया व्यक्ति इन्द्रियों के स्तर पर जीता है एवं इन्द्रियों के माध्यम से ही पदार्थों को जानता है। इनके गुण – स्पर्श, रस, गंध और वर्णों का अनुभव करता है। यदि यह अनुभव मन के प्रतिकूल होता है तो व्यक्ति में अप्रियता के भाव पैदा होते हैं। वह उसके लिए दुःख का कारण बनता है। वह उससे बचने का प्रयास करता है। यदि इसके विपरीत पदार्थ का अनुभव मन के अनुकूल होता है तो उसके भीतर प्रियता का भाव पैदा होते हैं। वह सुखानुभूति का कारण बनता है। वह उसको बनाये रखना चाहता है। बार बार चाहता है। ***पदार्थ से सुख की अनुभूति भी उसके एक सीमा तक उपयोग/उपभोग करने से ही प्राप्त होती है। अन्यथा वह भी दुःख का कारण बन जाती है।*** जैसे किसी व्यक्ति को मिष्ठान्न अत्यधिक प्रिय है। यदि उसको भी वह सीमा से या संयम से खाये तभी वह उसके लिए सुखद होगा। सीमा से अधिक खाने पर वही उसके लिए दुःख का कारण बन जायेगा। ***अतः अखण्ड व्यक्तित्व विकास का पहला सूत्र है – पदार्थों के उपभोग में संयम का अभ्यास।***

जीवन पदार्थ के बिना नहीं चल सकता किन्तु पदार्थ के प्रति अत्यधिक आसक्ति और इन्द्रिय सुखों में गृद्धि से व्यक्ति जीवन में असमायोजित व असंतुलित हो जाता है। वह अपने वास्तविक स्वरूप/सत्य का बोध नहीं कर पाता। जितनी–जितनी आसक्ति बढ़ती है उतना– उतना असंयम और दुःख बढ़ता है। इससे शक्ति का ह्रास होता है, तनाव व थकान मे वृद्धि होती है, जागरुकता में कमी आती है। स्वार्थपरकता बढ़ती है। वह दूसरों के हितों की परवाह किये बिना संग्रह में लगा रहता है। इससे क्रूरता व हिंसा को भी बढ़ावा मिलता है। इससे आन्तरिक शान्ति और आनन्द की अनुभूति नहीं हो सकती। इससे कृत्रिम आवश्यकताएं और मांग ही बढ़ेगी। इससे प्रकृति का दोहन ही बढ़ेगा। सामाजिक और वैयक्तिक स्वास्थ्य में भी गिरावट आयेगी।

मूलतः आत्मा अखण्ड है। शरीर से भिन्न है किन्तु कर्मों के बंधन के कारण हमारे व्यक्तित्व में आत्मा अखण्ड नहीं है। अर्थात् हम खण्डित हैं। पदार्थों से प्रभावित होते हैं। शरीर के बंधन से भी बंधे हुए हैं। आत्मा की स्वतंत्र सत्ता को जानना, आत्मा के स्तर पर जीना और आत्मा को कर्मों के बंधन से मुक्त कर देना यह ही अखण्ड व्यक्तित्व का विकास है। यह प्रेक्षाध्यान का मूल प्रयोजन है। इस यात्रा में दो बाधक तत्व हैं – प्रियता–अप्रियता के भाव तथा चंचलता। ***जागरुकता के अभ्यास द्वारा चंचलता को एवं प्रियता एवं अप्रियता के भावों को कम करना अर्थात् अनासक्त चेतना और एकाग्रता का विकास करना – प्रेक्षाध्यान के विभिन्न अंगों के विकास का आधार है।***

6.3.2 शरीर के स्तर

वातावरण के प्रति जागरुकता एवं उसका ज्ञान चेतना के द्वारा होता है। ***हमारे व्यक्तित्व में चेतना के साथ पदार्थ भी जुड़ा हुआ है। यह पदार्थ शरीर के रूप में है। इसके तीन प्रकार हैं– स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतम।*** स्थूल शरीर अस्थि, मांस आदि से निर्मित है। दिखाई देता है। उसे दार्शनिक भाषा में औदारिक शरीर कहा गया है।

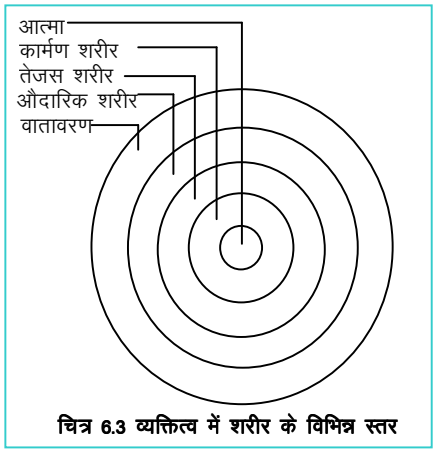

चित्र 6.3 व्यक्तित्व में शरीर के विभिन्न स्तर

सूक्ष्म शरीर का संबंध विद्युत ऊर्जा, प्राणशक्ति से है। सामान्यतया इसे आंखों से देख पाना संभव नहीं है किन्तु आजकल अति संवेदनशील उपकरणों (कैमरों) द्वारा इसके फोटो लिये जाते हैं। जिसे किर्लियन फोटोग्राफी कहते हैं। इसे दार्शनिक भाषा में तैजस् शरीर कहते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावली में उसके बाह्य रूप को आभामण्डल कहा जाता है। यह स्थूल शरीर के चारों तरफ सूक्ष्म तरंगीय क्षेत्र के रूप में विद्यमान रहता है।

सूक्ष्मतम शरीर का संबंध हमारे भीतर विद्यमान कर्म संस्कारों से है। इसे कार्मण शरीर कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि इसमें अपने दैनिक जीवन के प्रत्येक कार्य के सूक्ष्म संकेतों का निरन्तर अंकन व संचय होता रहता है। यह शरीर सूक्ष्मतम होता है। इसे भी आंखों से देखा नहीं जा सकता है। हमारी चेतना तीनों शरीरों में व्याप्त है किन्तु हमारी जागरुकता केवल स्थूल शरीर तक ही सीमित रहती है। हम अपने सूक्ष्म स्तरों तक जागरुक नहीं रह पाते। इस जागरुकता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

का विस्तार सूक्ष्मतम शरीर तक किया जा सकता है एवं इससे भी आगे अपने चैतन्य के प्रति भी निरन्तर जागरुक रहा जा सकता है।

6.3.3 चेतना के स्तर

हम आत्मा या शुद्ध चैतन्य के रूप में एक ओर अखण्ड हैं पर कर्मों के कारण खण्डित हैं। समझने की दृष्टि से चेतना को अनेक स्तरों पर विभाजित किया गया है। ***हमारे अस्तित्व से जुड़े हुए तीनों शरीर औदारिक, तैजस् और कार्मण के स्तर पर चेतना के भी अलग अलग स्तर बनते हैं।*** जैसा कि चित्र (6.4) में समझाया गया है – हमारे व्यक्तित्व के केन्द्र में है – आत्मा। कार्मण शरीर के स्तर पर जुड़ी हुई या संपृक्त चेतना स्तर को ***अध्यवसाय*** कहते हैं। इसी प्रकार तैजस् शरीर के साथ संपृक्त चेतना को ***लेश्या*** कहते हैं। औदारिक शरीर के स्तर पर संपृक्त चेतना को चित्त कहा गया है।

चित्र 6.4 व्यक्तित्व में चेतना के स्तर

जागरुक चित्त के द्वारा जाना जाता है। सुषुप्त चित्त द्वारा ज्ञान नहीं हो सकता। जागरुक चित्त द्वारा ही कार्मण शरीर में अंकित व संचित संकेतों का परिवर्तन किया जा सकता है। भीतर की प्रेरणाओं के क्रियान्वयन का निर्णय भी चित्त द्वारा ही होता है। यदि चित्त जागरुक नहीं है तो जैसी अच्छी या बुरी प्रेरणा भीतर से आती है वैसी ही क्रियान्विति हो जाती है। चित्त में यह शक्ति है कि वह एक समय में एक सूक्ष्म बिन्दु पर केन्द्रित हो सकता है और दूसरे ही क्षण एक विस्तृत क्षेत्र में भी फैल सकता है। जहां चित्त रहता है वहां का ज्ञान हो जाता है। वहां परिवर्तन घटित किया जा सकता है। जब चित्त आन्तरिक क्रियाओं से जुड़ता है तब उनके प्रति हमारी जागरुकता बढ़ती है। वहां परिवर्तन और बदलाव आता है। ***प्रेक्षाध्यान में जहां परिवर्तन करना होता है वहां चित्त को केन्द्रित किया जाता है इससे व्यक्तित्व की विशिष्ट क्षमताओं का जागरण होता है। व्यक्तित्व का रूपान्तरण होता है।*** स्थूल चेतना से सूक्ष्मतम चेतना तक चित्त का विस्तार अखण्ड व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होता है।

लेश्या चित्त से सूक्ष्म है। सामान्तया यह हमारे अनुभव में नहीं आ पाती है। हमारी जागरुकता केवल स्थूल और बाह्य जगत् तक सीमित होती है। सूक्ष्म और आन्तरिक जगत् की तरफ अभ्यास से जागरुकता को विस्तृत किया जा सकता है। लेश्या को, रंगीन प्रकाशमयी धाराओं को भी अनुभव कर सकते हैं। लेश्या के स्तर पर भी परिष्कार किया जा सकता है। लेश्या भीतर में अंकित और संचित संकेतों को रंगीन तरंगों के माध्यम से स्थूल शरीर तक लाता है एवं इसी प्रकार स्थूल स्तर की प्रवृत्तियों, क्रियाकलापों के संकेतों को रंगीन तरंगों के माध्यम से सूक्ष्मतम कार्मण शरीर के स्तर तक पहुंचाता है। अध्यवसाय का स्तर लेश्या से अधिक सूक्ष्म है। इसमें कर्म संस्कार, वृत्तियों के रूप में आगे बढ़ते हैं। तैजस् शरीर के स्तर पर आकर लेश्या का रूप ले लेते हैं। वे ही आगे चलकर औदारिक शरीर में भाव के रूप में प्रकट होते हैं जो विचार, आचार और व्यवहार में अभिव्यक्त होते हैं।

बोध प्रश्न :

1. चित्त, लेश्या एवं अध्यवसाय किसे कहा गया है ?
2. प्रेक्षाध्यान से व्यक्तित्व का रूपान्तरण कैसे होता है ?

6.4.0 व्यक्तित्व की कार्यप्रणाली और प्रेक्षा

प्रत्येक व्यक्ति में आत्मा और तीनों शरीर की पारस्परिक अन्तःक्रिया निरन्तर चलती रहती है। आत्मा के तीन मुख्य गुण हैं – ज्ञान, आनन्द और शक्ति। इनकी अभिव्यक्ति हमारे व्यक्तित्व में ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक क्षमताओं के रूप में होती है। आत्मा के इन तीन गुणों को चैतन्य की तीन धाराओं के रूप में समझ सकते हैं। (देखें चित्र 2.5) चैतन्य की प्रथम धारा आनन्द की है। वह कर्म शरीर, तैजस् शरीर और औदारिक शरीर के स्तर पर क्रमशः अध्यवसाय, लेश्या और भावों के रूप में अभिव्यक्त होती हुई आगे बढ़ती है।

चैतन्य की दूसरी धारा शक्ति की है। वह तैजस् शरीर से जुड़ कर आगे बढ़ती है। प्राण का रूप ले लेती है। यह औदारिक शरीर के नाड़ी तंत्र में अभिव्यक्त होती है। मन, वाणी और शरीर की क्रियाओं के लिए शक्ति प्रदान करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

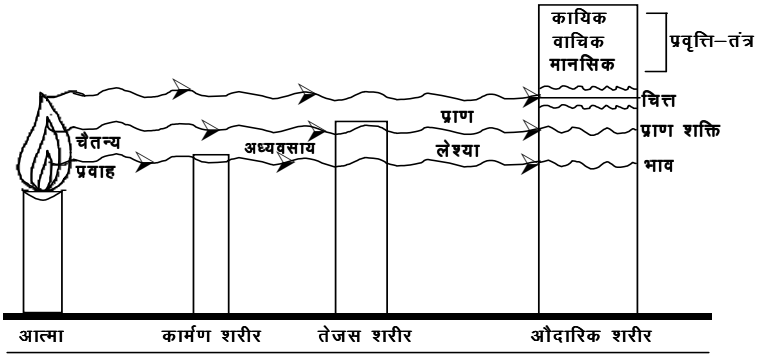

चित्र 6.5 चेतना स्तर का निर्माण

चैतन्य की तीसरी धारा ज्ञान की है। वह धारा औदारिक शरीर, स्थूल शरीर के स्तर पर चित्त के रूप में प्रकट होती है। ***चित्त की अपनी स्वतंत्रता होती है। वह कार्मण शरीर से आने वाले भावों की प्रेरणा को चाहने पर क्रियान्वित कर सकता है। अन्यथा नहीं चाहने पर रोक भी सकता है अथवा रूपान्तरित भी कर सकता है।*** यह स्वतंत्रता की शक्ति उसकी जागरुकता पर निर्भर है। सुषुप्त अवस्था में इस क्षमता का उपयोग नहीं किया जा सकता। मूर्च्छा, तंद्रा, निद्रा, आलस्य की स्थिति में जैसी भावना होगी वैसी ही मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्ति हो जायेगी। जब चित्त जागरुक होकर केवल देखेगा, द्रष्टाभाव से प्रेक्षा करेगा, भावों से नहीं जुड़ेगा तो भावों से प्रभावित प्रवृत्ति नहीं होगी। चित्त की मूर्च्छावस्था में भीतर से आने वाली भावों की प्रेरणा प्राणशक्ति का उपयोग करते हुए मानसिक, वाचिक और कायिक तीन प्रकार की प्रवृत्तियों में परिणत हो सकती है। ***जागरूक अवस्था में चित्त स्वतंत्र निर्णय लेकर भीतर की प्रेरणा को परिष्कृत कर प्रवृत्ति की धारा को अपने अनुकूल कर सकता है।***

6.4.1 व्यक्तित्व विघटन

चैतन्य की धाराएं कार्मण शरीर से प्रभावित होकर अध्यवसाय, लेश्या और भावों के रूप में अन्ततः औदारिक शरीर में प्रकट होती हैं। ये भाव (अच्छे या बुरे) आन्तरिक प्रेरणाओं के रूप में प्रकट होकर क्रियान्विति के लिए चित्त और मन पर दबाव डालते हैं। जब एक साथ अनेक प्रेरणाओं का दबाव होता है तब मानसिक अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। उसके निराकरण और समाधान के लिए चित्त को एक निर्णय पर पहुंचना होता है। जब चित्त निर्णय करने मे सफल हो जाता है तब मानसिक अन्तर्द्वन्द्व भी समाप्त हो जाता है। मन पर दबाव हट जाता है, उसको शक्ति मिल जाती है, क्रियान्विति

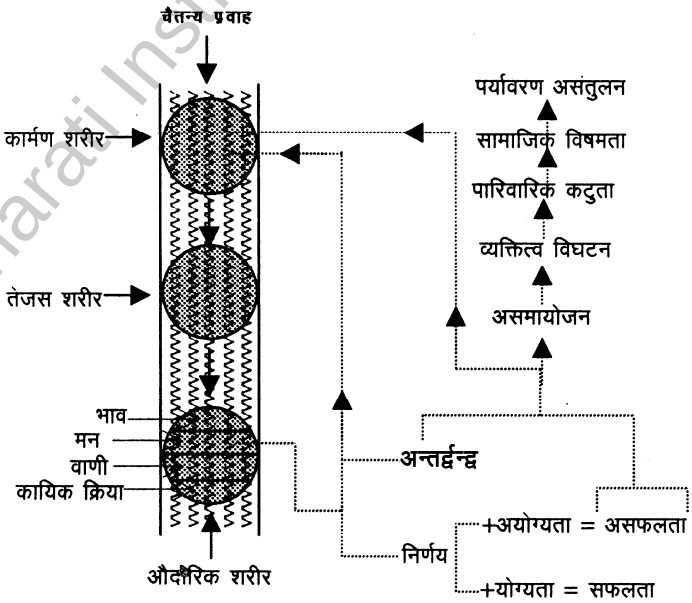

चित्र 6.6 व्यक्तित्व विघटन व परिणाम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाता है। निर्णय के बाद भी यदि प्रमाद, आलस्य, लापरवाही या अन्य किसी अयोग्यता के कारण वह उसे क्रियान्वित नहीं कर पाता है तब उसे सफलता नहीं मिल पाती है। बार–बार इच्छा होने पर भी सफल न होने पर व्यक्ति निराश और हताश हो जाता है। कार्य के प्रति उत्साह नहीं रहता है। यह स्थिति उस समय और भी अधिक भयावह होती है जब व्यक्ति निर्णय नहीं ले पाता है तथा भीतर लम्बे समय तक अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है। उपरोक्त दोनों ही स्थितियों में व्यक्ति अन्दर से टूट जाता है। व्यक्तित्व खण्डित व विघटित हो जाता है। इच्छा, निर्णय और क्रियान्विति में तालमेल, एकरूपता नहीं रह पाती है। इससे न केवल व्यक्तिगत स्तर पर हानि होती है किन्तु अनेक बार कुण्ठित और अवसाद ग्रस्त होने से सामाजिक संबंधों में सामंजस्य व समायोजन बनाये रखने में कठिनाई आती है। व्यक्ति मानसिक और भावनात्मक रूप से रुग्ण हो जाता है। यदि समय रहते ध्यान नहीं दिया गया तो अन्ततः व्यक्तित्व विघटित हो जाता है।

व्यक्तित्व विघटन का प्रेक्षाध्यान में एक सरल समाधान यह है कि भीतर से आने वाली प्रेरणाओं और इच्छाओं का दबाव कम हो। यह अत्यधिक दबाव भीतर से आने वाली अशुभ लेश्याओं के कारण होता है। इच्छाओं के संयम हेतु अणुव्रतों को स्वीकार करने तथा शुभ लेश्याओं (चमकते हुए रंगों) के ध्यान से दबाव कम होता है। दबाव कम होने से अन्तर्द्वन्द्व, अवसाद आदि समाहित हो जाते हैं। व्यक्ति निर्णय लेने में सक्षम हो जाता है। शुभ लेश्याओं के ध्यान से व्यक्ति में शक्ति का विकास होता है। इससे व्यक्ति अपने निर्णय को क्रियान्वित कर सफलता के शिखर पर आरोहण करने में समर्थ हो जाता है।

6.4.2 प्रेक्षाध्यान : अखण्ड व्यक्तित्व का विकास

व्यक्ति का व्यक्तित्व अन्तर्जगत् एवं बाह्य जगत् में विभाजित होता है। अन्तर् की प्रेरणा एवं बाह्य जगत् की अपेक्षाओं में तालमेल, सामंजस्य एवं समायोजन भी कम दिखाई देता है। अतः सामान्यतया व्यक्ति में जागरुकता का स्तर स्थूल और बाह्य जगत् तक ही सीमित रहता है। अतः वह केवल बाह्य जगत् का ही बोध कर पाता है। भीतर से आने वाले अशुभ संस्कारों के प्रभावों से वह अप्रभावित नहीं रह पाता है। यदि हमें अपने भीतर के अशुभ संस्कारों से स्वतंत्र होना है तो हमें अपनी जागरुकता को भी स्थूल से सूक्ष्म जगत् तक विस्तृत करना होगा। प्रेक्षाध्यान के अभ्यास से हम अपनी जागरुकता को स्थूल शरीर से फैलाते हुए व्यक्तित्व के केन्द्र आत्मा तक विस्तृत कर सकते हैं। हम अपने चैतन्य के प्रति जागरुक रह सकते हैं। यदि चेतना और पदार्थ को दो मापक इकाईयां मान लें तो प्रेक्षाध्यान द्वारा जागरुकता के विस्तार को चित्र (2.7) से समझा जा सकता है। प्रेक्षाध्यान के अभ्यास से यह माना जाता है एवं अनुभव किया गया है कि इससे स्थूल शरीर से लेकर अपने अस्तित्व तक परिपूर्ण जागरुकता का विकास संभव होता है।

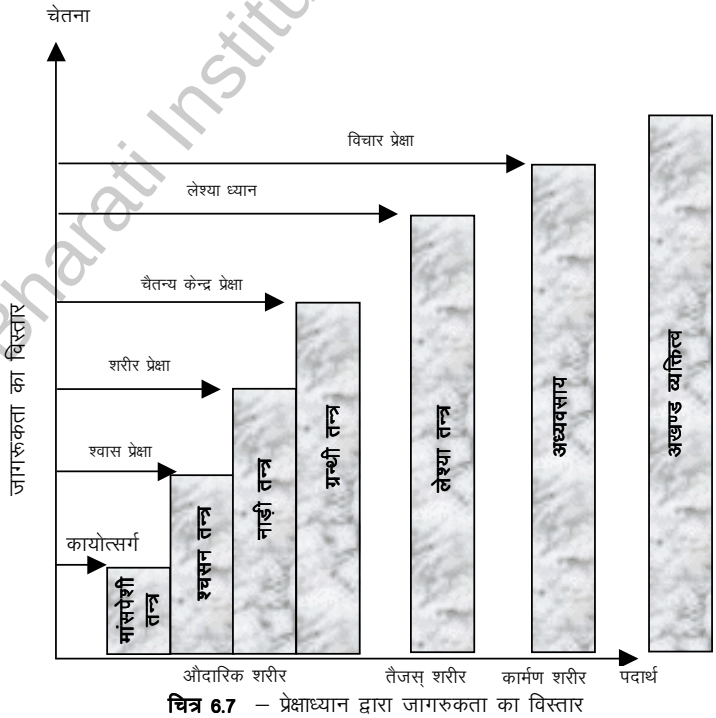

चित्र 6.7 – प्रेक्षाध्यान द्वारा जागरुकता का विस्तार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अखण्ड व्यक्तित्व विकास में अनेक बाधाएं हैं। जैसे–नकारात्मक भाव (Negative Emotion) शारीरिक तनाव, वाचिक असंयम और मानसिक व्यग्रता। इन बाधाओं को प्रेक्षाध्यान से दूर किया जा सकता है। प्रेक्षाध्यान के एक प्रयोग कायोत्सर्ग द्वारा स्थूल शरीर की मांसपेशियों में आये हुए तनाव को दूर किया जाता है। आसन भी तनाव को दूर करने में सहायक बनते हैं। वाणी के असंयम को ध्वनि, जप एवं मौन के प्रयोग द्वारा अनुशासित व प्रशिक्षित किया जाता है। मानसिक एकाग्रता के विकास के लिए श्वास प्रेक्षा एवं प्राणायाम के प्रयोग लाभकारी सिद्ध हुए हैं। इससे श्वास मंद एवं शान्त होता है। मन की चंचलता कम होती है। शरीर प्रेक्षा द्वारा पूरे शरीर में प्राण का संतुलन होता है। इससे समता भाव का विकास होता है। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा से ग्रन्थि तंत्र संतुलित होता है तथा नकरात्मक भाव दूर होते हैं। सकारात्मक भाव पुष्ट होते हैं। लेश्याध्यान द्वारा अशुभ लेश्याओं का दबाव कम होता है। विचार प्रेक्षा से अशुभ संस्कारों को देखने और उससे अप्रभावित रहने की क्षमता का विकास होता है। वर्तमान क्षण की प्रेक्षा द्वारा स्वयं के प्रति सतत जागरुक रहने का अभ्यास करते हैं। इस प्रकार प्रेक्षाध्यान से हम अपने व्यक्तित्व को समग्रता से जान सकते हैं। जो स्वयं को जान लेता है वह भेद में अभेद को समझ लेता है। अनेकता में एकता का बोध करने में समर्थ हो जाता है। वह स्वयं, को दूसरों को और प्रकृति को भी अधिक अच्छे ढंग से समझ सकता है। शान्ति, सौहार्द व सामंजस्य के साथ जी सकता है। इसकी परिणति सार्वभौम मैत्री भाव व स्वयं का अखण्ड व्यक्तित्व का विकास है।

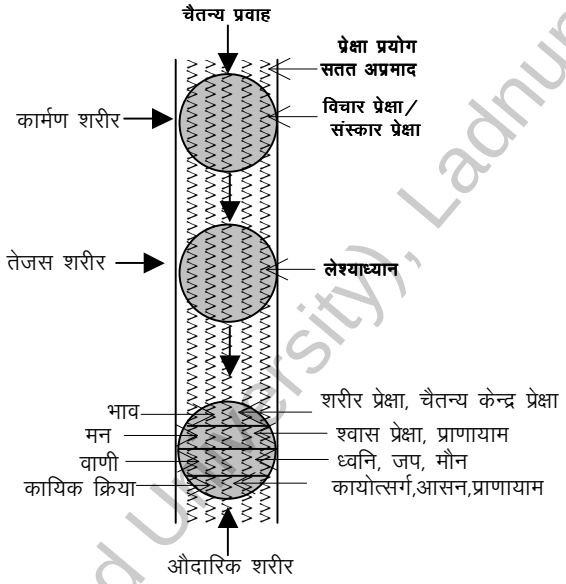

चित्र 6.8 प्रेक्षाध्यान से अखण्ड व्यक्तित्व का विकास

बोध प्रश्न :

1. किस अवस्था में चित्त स्वतंत्र निर्णय लेकर प्रवृत्ति को अपने अनुकूल कर सकता है ?
2. व्यक्तित्व विघटन का सरल समाधान क्या है ?
3. व्यक्तित्व विकास में बाधाएं कौन–कौन सी हैं ?

6.5.0 प्रेक्षाध्यान की विशेषताएं

6.5.1 अनुभव परक

आज अत्यधिक विकसित और उच्च प्रौद्योगिकी से सम्पन्न समाज में व्याप्त असंतोष और अतृप्ति का कारण तकनीकी की कमी नहीं बल्कि स्वयं के प्रति जागरुकता के विकास की कमी है। प्रेक्षाध्यान प्राचीन प्रज्ञा की विरासत और आधुनिक विज्ञान की व्याख्याओं से परिपूर्ण और परिष्कृत व्यवस्थित पद्धति है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने प्रलम्बकाल तक साधना और अनुभव के आधार पर विशेष रूप से स्वयं के प्रति जागरुकता के विकास के लिए इसको मूर्त रूप दिया है। यह आज के आधुनिक मानव की समस्याओं और असंतोष से निपटने में बहुत उपयुक्त है। इसके अभ्यास के लिए न विशेष पूंजी निवेश की आवश्यकता है और न ही गृहस्थ जीवन को त्याग कर संन्यासी बनने की अनिवार्यता है। केवल आवश्यकता है तो इच्छा शक्ति की कि हम अपने आप को जानने के लिए गहराई में उतरें और भीतर के रहस्यमय खजाने को अनावृत कर उसे प्राप्त करें।

6.5.2 विज्ञान सम्मत

प्रेक्षाध्यान के परिणामों की जांच–पड़ताल के लिए अनेक वैज्ञानिक अनुसंधान किये गये। इसके अन्तर्गत न केवल मनोवैज्ञानिक तथ्यों का आंकलन हुआ किन्तु शरीरगत व्यापक सकारात्मक परिणाम भी सामने आये। इससे उच्च रक्तचाप में कमी, हृदयगति में सुधार, श्वसन दर में कमी, त्वचा की प्रतिरोधक क्षमता में विकास आदि आश्चर्यजनक परिणाम भी स्पष्ट रूप से सामने आये हैं। उदाहरण के लिए अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली के हृदयरोग विभाग के तत्कालीन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विभागाध्यक्ष डॉ. मनचन्दा ने हृदयरोग में प्रेक्षाध्यान विषय पर अनुसंधान किया। इस ध्यान पद्धति को हृदय रोग की चिकित्सा में अत्यन्त लाभकारी पाया। ऐसे ही परिणाम अन्य क्षेत्रों से भी प्राप्त हुए हैं। ये परिणाम इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं कि इनसे रोगियों को न्यूनतम आर्थिक व्यय में तथा बिना किसी पीड़ा के स्वास्थ्य में लाभ होता है।

6.5.3 सीखने में सरल

जैन विश्व भारती व अन्य संस्थानों में इस बात को अनुभव किया गया कि प्रेक्षाध्यान को अल्पावधि में और सरलता से सीखा जा सकता है। एक बार सीखने के बाद यह आध्यात्मिक और मानसिक विकास में तो सहायक बनता है साथ ही जीवन के सभी क्षेत्रों में यह उपयोगी होता है। चेतना के प्रति जागरुकता और उसकी शक्तियों का उपयोग वर्तमान युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। आज एक नये विज्ञान चेतना के विज्ञान की आवश्यकता है जिससे व्यक्ति अधिक से अधिक स्वयं को समझ सके और मानवीय पीड़ाओं को दूर करने में अपनी सेवा दे सकें। **आज एक ऐसी नई पीढ़ी की आवश्यकता है जिसमें सत्य की खोज के लिए वैज्ञानिक दृष्टि हो तथा सब जीवों के प्रति मैत्री भाव के विकास के लिए आध्यात्मिक अनुभूति भी हो।** विश्वशान्ति और पर्यावरणपरक जीवनशैली के लिए आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण अब एक ऐसी आवश्यकता बन चुकी है जिसे अधिक टाला नहीं जा सकता।

बोध प्रश्न :

1. प्रेक्षाध्यान की तीन विशेषताएं बताइये ?
2. विश्वशान्ति के लिए नई पीढ़ी में किस प्रकार के व्यक्तित्व की आवश्यकता है ?

6.6.0 सारांश

- अखण्ड व्यक्तित्व निर्माण के लिए चेतना की क्षमता और स्वतंत्र इच्छाशक्ति का उपयोग करना होता है। अन्तःस्रावी ग्रन्थितंत्र व नाड़ीतंत्र में संतुलन के द्वारा मांसपेशियों को तनावमुक्त करना होता है। प्रेक्षाध्यान में चेतना की विलक्षण क्षमता ***जागरुकता*** का उपयोग किया जाता है। प्रेक्षाध्यान की पद्धति में चार सहायक, आठ मुख्य और तीन विशिष्ट अंग हैं।

- संसार में मुख्य से दो प्रकार के तत्त्व हैं – सजीव और निर्जीव। आत्मा के साथ निर्जीव जड़ पदार्थ शरीर भी जुड़ा हुआ है। आत्मा और जड़ के संयोग से हमारे व्यक्तित्व में छह तत्त्वों का उद्‌भव होता है – प्राण, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और भाव।

- अखण्ड व्यक्तित्व का विकास करना प्रेक्षाध्यान का मूल प्रयोजन है। इसमें दो बाधक तत्त्व हैं – प्रियता–अप्रियता के भाव तथा चंचलता। हमारे व्यक्तित्व में चेतना के साथ पदार्थ अर्थात् शरीर जुड़ा हुआ है। इसके तीन प्रकार हैं – स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतम। स्थूल शरीर औदारिक शरीर है। सूक्ष्म शरीर का संबंध विद्युत ऊर्जा या प्राण शक्ति से है। सूक्ष्मतम शरीर का संबंध कर्म संस्कारों से है।

- हमारे व्यक्तित्व में चेतना के तीन स्तर हैं – अध्यवसाय, लेश्या एवं चित्त। प्रेक्षाध्यान में जहां परिवर्तन करना होता है वहां चित्त को केन्द्रित किया जाता है। स्थूल चेतना से सूक्ष्मतम चेतना तक चित्त का विस्तार अखण्ड व्यक्तित्व निर्माण में सहायक है। लेश्या चित्त से सूक्ष्म है। अध्यवसाय का स्तर लेश्या से अधिक सूक्ष्म है। अध्यवसाय हमारे शरीर में भावों के रूप में प्रकट होते हैं, जो विचार, आचार एवं व्यवहार में अभिव्यक्त होते हैं।

- चैतन्य की प्रथम धारा आनन्द की, दूसरी धारा शक्ति की एवं तीसरी धारा ज्ञान की है। जागरुक अवस्था में चित्त स्वतंत्र निर्णय लेकर भीतर की प्रेरणा को परिस्कृत कर प्रवृत्ति को अपने अनुकूल कर सकता है। लेश्याध्यान द्वारा अशुभ लेश्याओं का दबाव कम होता है। विचार प्रेक्षा से अशुभ संस्कारों को देखने और उससे अप्रभावित रहने की क्षमता का विकास होता है।

- प्रेक्षाध्यान पद्धति सीखने में सरल होने के साथ–साथ विज्ञान सम्मत है। इसके द्वारा होने वाले शरीरगत सकारात्मक परिणाम को मापा जा सकता है। यह आचार्य महाप्रज्ञ की प्रलम्बकाल तक साधना और अनुभवों का सार रूप है। यह व्यक्ति के आध्यात्मिक और मानसिक विकास में विशेष रूप से सहायक बनती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6.7 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अध्यात्म विज्ञान के अनुसार आत्मा के तीन गुण कौन–कौन से है ?
2. लेश्याध्यान से क्या–क्या लाभ हैं ?
3. चैतन्य की प्रथम धारा किस स्तर पर किस रूप में अभिव्यक्त होती है ?
4. हृदयरोग में प्रेक्षाध्यान विषय पर अनुसंधान किसने किया ?
5. किर्लीयन फोटोग्राफी किसे कहते हैं ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रेक्षाध्यान की विशेषताएं क्या–क्या हैं ?
2. आत्मा के साथ शरीर के व्यक्तित्व के स्तर कौन–कौन से जुड़े हुए हैं ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. अखण्ड व्यक्तित्व विकास में प्रेक्षाध्यान किस तरह सहायक है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 2 उन्नत व्यक्तित्व का विकास और प्रेक्षाध्यान

पाठ – 7 व्यसन की समस्या : प्रेक्षा का समाधान

रूपरेखा

7.0.0 उद्देश्य

7.1.0 भूमिका

7.2.0 व्यसन–मुक्त व्यक्तित्व

7.2.1 स्वस्थ समाज

7.3.0 व्यसन का प्रभाव

7.3.1 शारीरिक प्रभाव

7.3.2 व्यसन और मनोभाव

7.3.4 व्यसन : समाज और राज्य

7.3.5 व्यसन और परिवार

7.3.5 व्यसन और आर्थिक क्षति

7.4.0 व्यसन : कारण और निवारण

7.4.1 व्यसन का समाधान

7.4.2 व्यसन मुक्ति और प्रेक्षा प्रयोग

7.4.3 व्यसन मुक्ति शिविर की उपलब्धियां

7.5.0 सारांश

7.6.0 अभ्यास प्रश्न

7.0.0 उद्देश्य

ज्ञानार्थी भगिनी, बंधुओं ! अपने व्यक्तित्व विकास के लिए आपने सुसंगठित एवं अखण्ड व्यक्तित्व के बारे में सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त किया। इस अध्याय में व्यक्तित्व की क्षमताओं को नष्ट करने वाली एक प्रमुखतम समस्या पर विचार करेंगे। विश्व की एक ज्वलंत समस्या है – व्यसन। उसका प्रेक्षाध्यान पद्धति से समाधान विषय पर आदर्शोन्मुख यथार्थ चिन्तन किया जायेगा। इससे आप स्वयं व्यसनमुक्त रहकर दूसरों को व्यसन मुक्त करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकेंगे। यह एक बहुत बड़ी राष्ट्र सेवा होगी। इस अध्याय में निम्न बिन्दुओं पर चर्चा केन्द्रित है :–

1. व्यसन मुक्त व्यक्तित्व
2. व्यसन का प्रभाव
3. व्यसन : कारण और निवारण

7.1.0 भूमिका

आज का युवा तनावों से ग्रस्त है। तनाव मुक्ति का समाधान व्यक्ति नशे में ढूंढ रहा है। नशे में व्यक्ति अपने आपको थोड़ी देर के लिए भूल भले ही जाए पर समस्या वहीं बनी रहती है। गणाधिपति आचार्यश्री तुलसी ने दक्षिण भारत की पदयात्रा में यह महसूस किया कि जनसंख्या का जो भाग गरीब है उसका एक प्रमुख कारण तीन 'स'कार व्यसन हैं। शराब, सिनेमा, सिगरेट। इन तीन व्यसनों से 25 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे हैं। आज भी देश की 26 प्रतिशत जनसंख्या गरीब है। जब तक व्यसनों का समाधान स्थायी रूप से नहीं किया जायेगा तब तक गरीबी की समस्या का स्थायी समाधान संभव नहीं लगता। विश्व की ध्यान पद्धतियों पर शोध करके, अपने शरीर को प्रयोगशाला बनाकर आचार्य महाप्रज्ञ ने मानव जाति को बहुमूल्य वरदान दिया है जिसे ''प्रेक्षाध्यान पद्धति'' से दुनियाँ जानने लगी है। जिसे प्रेक्षाध्यान की आदत बन जाए

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उसके लिए किसी व्यसन में पड़ने का कोई खतरा नहीं रहता। विज्ञान ने भौतिक सुख सुविधा के लिए कई खोजें की। प्रेक्षाध्यान पद्धति न केवल भौतिक सुखानुभूति प्रदान करती है बल्कि आत्मानंद की अनुभूतियां भी करवाती है। व्यसनों की मुक्ति तो इस युक्ति से बहुत आसान है। अपेक्षा है सम्यक् सश्रद्धा प्रयोगों। यदि हम अपने देश को अमीर राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो तीन बातों की आवश्यकता है – व्यसनमुक्ति, शान्ति एवं अनासक्ति।

7.2.0 व्यसन–मुक्त व्यक्तित्व

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। विज्ञान के साथ–साथ औद्योगिक विकास हुआ। तकनीकी का विकास हुआ। इस विकास के साथ मानसिक शान्ति का विकास नहीं हो सका। जितने सुविधा के साधन बढ़े हैं उसके अनुपात से कहीं अधिक मानसिक तनाव और उससे उत्पन्न होने वाली समस्याएं बढ़ी हैं। समाज में व्यसन और अपराध बढ़े हैं। ***यदि व्यसन में कमी आती है तो अपराध और गरीबी में बहुत कमी आ सकती है।*** मेडिकल कौंसिल ऑफ ऑक्सफोर्ड के प्रेसिडेन्ट जनरल डॉ. आकलैण्ड लिखते हैं –''यदि शराब के बारे में किसी को मालूम न होता तो संसार के अपराधों की आधी मात्रा तथा गरीबी की बहुत बड़ी मात्रा दूर हो जाती।''

विद्या ही समस्त विकास का आधार है। विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय विद्या प्रदान करने वाले महान् संस्थान हैं। जहां जीवन निर्माण होता है, वहां भी जीवन विनाश के बीज, व्यसन तेजी से अपना पैर जमा रहे हैं। ***शिक्षा जगत् से आज अपेक्षा है कि वह ऐसी शिक्षा, संस्कार तथा व्यवस्था दे जिससे विद्यार्थी हर परिस्थिति में अपने व्यसन–मुक्त व्यक्तित्व को सुरक्षित रख सके।***

7.2.1 स्वस्थ समाज

गुरुदेव श्री तुलसी के विचारों में स्वस्थ समाज का निर्माण तब तक नहीं हो सकता जब तक समाज व्यसन मुक्त नहीं हो जाता। अनेक अपराध, हिंसा और कुकृत्यों का एक प्रमुख कारण है – नशा। अहिंसक समाज संरचना के लिए अपराध, हिंसा व आतंक में न्यूनता आये, यह सबसे बड़ी अपेक्षा है। इसका एक प्रमुख आधार है – व्यसन मुक्त समाज।

समाज में धूम्रपान

प्रत्येक 8 सेकण्ड में एक व्यक्ति की मौत हो जाती है विश्व में, तम्बाकू के सेवन से।

प्रत्येक 1 मिनट में एक करोड़ सिगरेटों की बिक्री होती है दूनिया में।

50 लाख लोग हर साल मारे जाते हैं तम्बाकू जनित बीमारियों से विश्व में।

10 लाख हर साल मारे जाएंगे 2010 तक तम्बाकू जनित बीमारियों से देश में।

15 साल का जीवन (औसत) खो देता है एक युवा सिगरेट के कारण देश में।

25 करोड़ लोग धूम्रपान करते हैं भारत में यानि हर पांच में से एक।

5 में से एक स्कूली बच्चा देश का, किसी न किसी रूप में तम्बाकू सेवन करता है।

70 फीसदी धूम्रपान बीड़ी से किया जाता है फिलहाल भारत में।

74 देशों में स्वास्थ्य समस्याओं के बावजूद धूम्रपान की इजाजत है।

नोट : सभी आंकड़े विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार।

ब्रिटेन के पूर्व प्रधानमंत्री ग्लैडस्टन के अनुसार –''शराब कितनी ही थोड़ी मात्रा में क्यों न पी जाए, वह मानसिक शान्ति को खराब कर देती है। वह दिमाग के स्नायु केन्द्रों को शून्य कर देती है जिससे बुद्धि की भले–बुरे की पहचान की क्षमता तथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सहनशक्ति जाती रहती है।'' ***व्यसन धीमा विष है, विष से भी भयंकर है। विष तो एक ही बार मारता है परन्तु व्यसन व्यक्ति को ही नुकसान नहीं पहुंचाता, वह परिवार, समाज व राष्ट्र के चरित्र को ठेस पहुंचाता है एवं तहस–नहस कर देता है।*** व्यक्ति जानते हुए भी व्यसन छोड़ नहीं पाता है। पारिवारिक शान्ति, सामाजिक विकास और राष्ट्रीय चरित्र में उत्थान के लिए व्यसन मुक्त समाज की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

बोध प्रश्न

1. शिक्षा जगत् से क्या अपेक्षा है ?
2. व्यसन क्या है ?

7.3.0 व्यसन का प्रभाव

व्यसन को समझने के लिए उसे निम्न भागों में बांटा जा सकता है–

1. तम्बाकू और उससे निर्मित पदार्थ –ज़र्दा, गुटखा, बीड़ी, सिगरेट, चिलम आदि।
2. शराब आदि मादक पेय पदार्थ।
3. अफीम, गांजा, चरस, हेरोइन आदि।

महात्मा गांधी ने अपनी पुस्तक 'की टू हैल्थ' में लिखा है – ***''शराब शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आर्थिक दृष्टि से मनुष्य को बर्बाद कर देती है। शराब के नशे में मनुष्य दुराचारी बन जाता है एवं अफीम के नशे में वह सुस्त और मुर्दा बन जाता है।''*** इस प्रकार व्यसन व्यक्तिगत स्तर पर शरीर, मन व भावों को प्रभावित करते हैं। सामुदायिक स्तर पर परिवार, समाज व राष्ट्र को भी प्रभावित करते हैं। आर्थिक स्तर पर भी इससे व्यक्ति को हानि ही होती है।

7.3.1 शारीरिक प्रभाव

व्यसन से ग्रस्त व्यक्तियों में अनेक बार भयानक घातक बीमारियां भी हो जाती हैं। ***जैसे तम्बाकू का सेवन करने वाले व्यक्तियों के दांत, जबड़े, गला, होंठ, जीभ आदि अंग बूरी तरह से विकृत हो जाते हैं।*** अनेक व्यक्तियों की स्थिति ऐसी हो जाती है कि उनका चेहरा भी नहीं देख सकते। इंडियन सोसायटी ऑन टोबेको एण्ड हैल्थ के अध्यक्ष डॉ. सोबती के अनुसार भारत वर्ष में 9 से 10 लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष तम्बाकू के सेवन से होने वाली बीमारियों के कारण मरते हैं। उनके अनुसार वर्ष 2010 तक विश्व में प्रति वर्ष एक करोड़ लोग तम्बाकू के कारण होने वाले रोगों से मौत के मुंह में जाने लगेंगे। तम्बाकू चबाने से मुंह का कैंसर एवं गले का कैंसर भी हो सकता है।

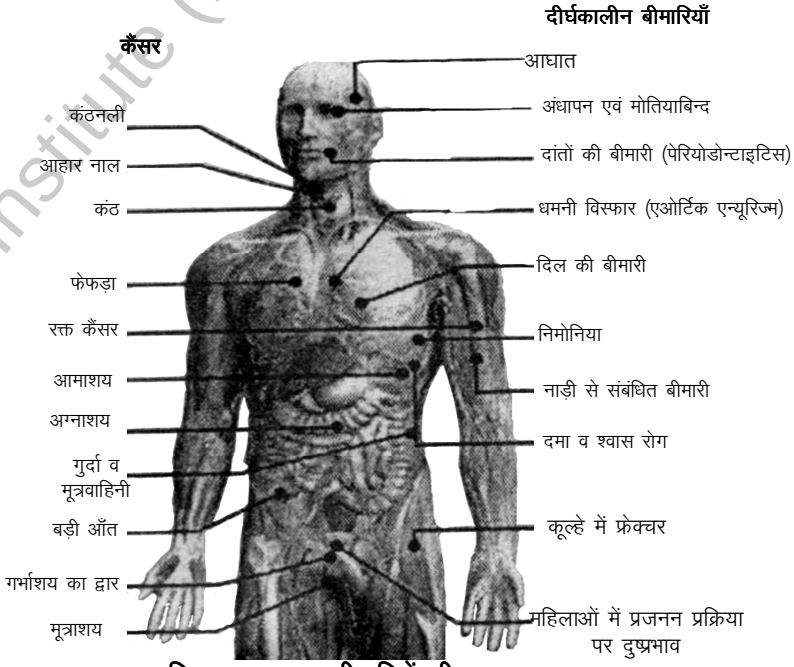

चित्र 7.1 धूम्रपान बीमारियों की जड

स्रोत : अमरिका के स्वास्थ्य मानव सेवा विभाग की रिपोर्ट – 2006

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वर्ल्ड हैल्थ ऑर्गेनाइजेशन के अनुसार अमेरिका में छः लाख एवं यूरोप में 10 लाख से अधिक व्यक्ति प्रतिवर्ष तम्बाकू के कारण समय से पूर्व ही मर जाते हैं। फैंफड़ों के कैंसर से होने वाली 80 से 90 प्रतिशत मौतें तम्बाकू से होती है। 65 वर्ष से कम आयु में दिल के दौरे से मरने वालों में 40 प्रतिशत धूम्रपान के कारण ही मरते हैं।

शराब आदि मद्यपान करने वाले व्यक्ति यह तर्क देते हैं कि उन्हें पाचन में व मानसिक तनाव में राहत मिलती है। एकांगी व अल्पकालिक प्रभावों को देखते हुए यदा–कदा चिकित्सक भी सेवन की सलाह दे देते हैं किन्तु दीर्घकालिक व व्यापक दुष्परिणामों को देखते हुए उनकी सलाह कहां तक उचित है ? वे स्वयं समझ सकते हैं। यह भी वैज्ञानिकों का मानना है कि ***एक बार के मद्यपान से हजारों स्नायु एक साथ नष्ट हो जाते हैं।*** जब व्यक्ति मद्यपान का गुलाम हो जाता है तब यकृत, आमाशय, व गुर्दे पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वे खराब हो जाते हैं। शरीर दुर्बल हो जाता है। कार्यक्षमता घट जाती है। अनेक अकाल मृत्यु की गोद में चले जाते हैं।

अफीम, गांजा, चरस, हेरोइन आदि का सेवन करने वाले व्यक्तियों की स्नायविक शक्ति दुर्बल हो जाती है। ***स्नायविक शक्ति को पुनः ठीक नहीं किया जा सकता।*** रोग–प्रतिरोधात्मक शक्ति भी क्षीण होती है और इससे व्यक्ति अकाल–मृत्यु से ग्रसित हो जाता है।

7.3.2 व्यसन और मनोभाव

इन व्यसनों का प्रभाव भावनात्मक स्तर पर भी बहुत हानिकारक होता है। एक बार व्यक्ति उत्तेजना या शान्ति का अनुभव करता है। भूल–भूलैया में चला जाता है। होश आने पर अधिक चिन्तित व तनावग्रस्त हो जाता है। व्यग्रता, अनिर्णय व असंतोष बढ़ता है। ***अफीम आदि के सेवन से व्यक्ति चेतना शून्य हो जाता है।*** व्यसनी व्यक्ति का स्वभाव असामान्य हो जाता है। आवेश, चिड़चिड़ापन, आक्रामकता, अपराध मनोवृत्ति आदि बातें व्यसन से ग्रस्त व्यक्तियों में आम होती चली जाती है।

7.3.3 व्यसन : समाज और राज्य

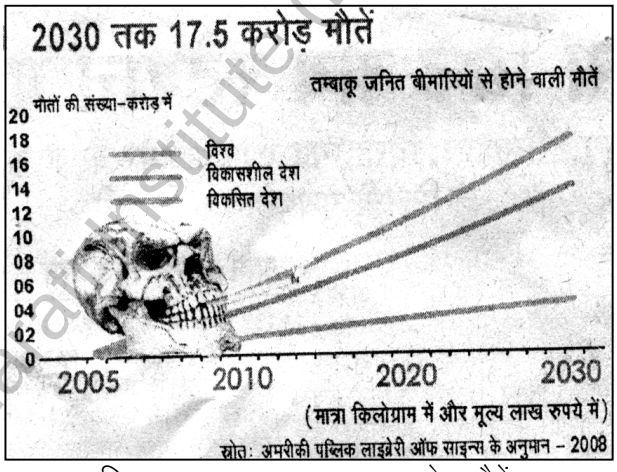

चित्र 7.2 – 2030 तक 17.5 करोड़ मौतें

एक तम्बाकू उद्योग से ही सरकार को भारी राजस्व मिलता है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार सरकार को हर साल करीब 35 से 40 हजार राजस्व प्राप्त होता है। ऐसे में इस पर नकेल कसना सरकार के लिए आसान नहीं होता है। अतः राजनैतिक कर्णधार व शासनाधीश व्यक्तियों को लगता है कि इससे बहुत बड़ा राजस्व मिलता है पर दूसरी ओर देखा जाए तो समाज में बढ़ती गरीबी, अस्वास्थ्य, कुपोषण और अपराध का एक बड़ा जिम्मेदार कारण है – व्यसन। एक तरफ राजस्व का व्यामोह व दूसरी तरफ बढ़ती सामाजिक समस्याएं – दोनों का तालमेल कहां हो पायेगा ? अनेक कार्य दिवसों की हानि व्यसन से जुड़ी हुई है। सृजन व निर्माण करने वाली युवा पीढ़ी अपंग एवं अकर्मण्यता की दिशा में चली जाती है। अनेक संभ्रांत व योग्य नागरिक असमय में ही काल कवलित हो जाते हैं। यह राष्ट्र की अपूरणीय क्षति है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.3.4 व्यसन और परिवार

व्यसन का जहां व्यक्तिगत स्तर पर नुकसान होता है वहीं पारिवारिक स्तर पर नुकसान कई गुणा अधिक होता है। ***धूम्रपान करने वाला धुंए को अनचाहे ही अपने संबंधियों में संक्रांत कर देता है। सबसे बुरा असर होता है बच्चों के कच्चे दिमाग पर।*** अनुकरण प्रिय बच्चे उसे देखकर, चोरी–छिपे इस कार्य को अंजाम देने की कोशिश करते हैं। अनेक व्यक्तियों की जीवन गाथा इस व्यथा से भरी हुई है कि हमने बचपन में बड़ों को देख कर चोरी–छिपे अनुकरण द्वारा इसे प्रारम्भ किया। बार–बार समझाने पर भी जब व्यक्ति नहीं छोड़ पाता है तब घरों में शान्ति व समायोजन में कमी आती है। कलह में वृद्धि व प्रतिष्ठा की हानि होती है। शराब से तो परिवार ही उजड़ जाते हैं। अफीम आदि व्यसनों से ग्रस्त व्यक्ति आवारा होकर परिवार से अलग भी हो जाता है। पूरी तरह से टूट जाता है।

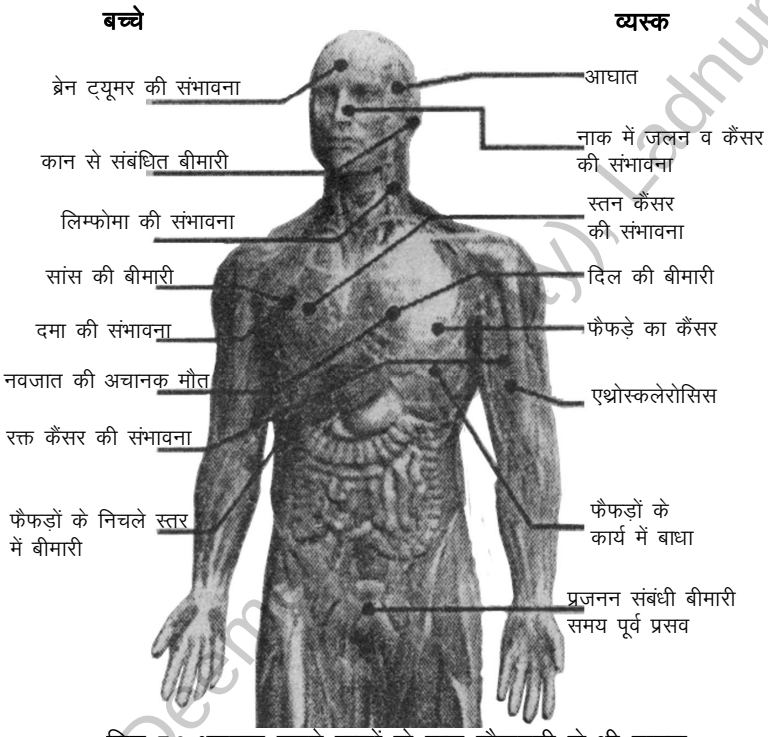

चित्र 7.3 धुम्रपान करने वालों के पास मौजूदगी से भी खतरा

स्रोत : अमरिका के स्वास्थ्य मानव सेवा विभाग की रिपोर्ट – 2006

7.3.5 व्यसन और आर्थिक क्षति

व्यसन छोटा से छोटा क्यों न हो वह आर्थिक अपव्यय का बड़ा कारण होता है। ***बीड़ी पीने वाले का भी आर्थिक अपव्यय 10 सालों में लाखों रुपयों तक हो जाता है।*** मद्यपान करने वाले व्यसनी की आर्थिक स्थिति का तो जनाजा ही निकल जाता है। भरा–पूरा परिवार निर्धन व दरिद्र हो जाता है। कर्ज भी मिलना आसान नहीं होता।

बोध प्रश्न

1. व्यसन से मन पर क्या दुष्प्रभाव पड़ता है ?
2. पारिवारिक स्तर पर व्यसन से क्या हानियां होती है ?

7.4.0 व्यसन : कारण और निवारण

आधुनिकता के नाम पर नशे की संस्कृति युवा पीढ़ी को जिन अंधी सुरंगों में धकेल रही है वहां जीवन नहीं मौत का सन्नाटा पसरा है। ***व्यसन का प्रारम्भ मुख्यतया दो प्रकार के कारणों से होता है – (1) बाह्य एवं (2) आन्तरिक।***

1. वातावरण, संगत, प्रतिष्ठा, फैशन आदि कुछ ऐसे बाह्य कारण है जिसका प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है।
2. आन्तरिक कारणों में अज्ञान, गलत दृष्टिकोण, संकल्पशक्ति की कमी, तनाव, उदासीनता, अशान्ति आदि है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आन्तरिक मनस्थिति व बाह्य परिस्थिति दोनों के संयोग से व्यसन प्रारम्भ हो जाता है। प्रारम्भ होने के बाद व्यक्ति उसका गुलाम हो जाता है। हानि को जानते हुए भी छोड़ नहीं पाता है तब यह कहावत चरितार्थ होती है – मनुष्य शराब नहीं पीता, शराब मनुष्य को पीने लग जाती है। लत पड़ने के बाद मूढ़ता और आसक्ति बढ़ती जाती है।

तालिका 7.1 : व्यसन की समस्या और परिणाम

व्यसन	शारीरिक	मानसिक	भावनात्मक	आर्थिक	पारिवारिक	सामाजिक
1.तम्बाकू, बिड़ी, सिगरेट, चिलम, जर्दा, गुटखा	फेफड़े की बीमारियां, कैंसर, दांत, होंठ, जीभ, गला।	स्नायविक दुर्बलता, अशान्ति, बैचेनी, चिन्ता।	चिड़चिड़ापन, क्रोधी स्वभाव	अपव्यय	समायोजन की कमी, कलह, बच्चों द्वारा अनुकरण	गरीबी, चिकित्सा खर्च में वृद्धि
2. शराब	जिगर, आमाशय, व गुर्दे के रोग, दुर्बलता, कार्य क्षमता में कमी।	,, अनिर्णय, असन्तोष, व्यग्रता, विक्षिप्तता,	,, आक्रमकता	अपव्यय, दरिद्रता	,, असमायोजन, कलह, संबंध में कठिनाई, विघटन	,, अपराध, हिंसा, भय, खर्चा, आतंक, विघटन
3. अफीम, गांजा, चरस, हेरोइन, L.S.D., Brown sugar	स्नायविक क्षति, कोशिका क्षति, रक्त विकार, श्वेत रक्त कणिकाओं की अल्पता, अकाल मृत्यु, हृदय दौर्बल्य।	,, तनाव, मूर्च्छा, चेतना शून्यता	,, हिंसक व्यवहार	,, कर्जदारी, कार्य दिवस की क्षति	,, विघटन, आवारापन, संबंध विच्छेद	,, सामाजिक क्षति

नशे का प्रारम्भ किसी भी मोड़ से, किसी भी कोण से हो, उसका अन्त भयानक ही होता है। विडम्बना तो यह है कि इसे विकास का सोपान, समृद्धि का प्रतीक माना जाता है। व्यक्ति यह तो कभी नहीं कहता कि व्यसन स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है किन्तु वे उसे उतना हानिकारक नहीं मानते जितना कि वास्तविकता में है। वे इसे मूड ठीक करने वाला, आनन्द देने वाला, मन–मस्तिष्क की एकाग्रता बढ़ाकर समस्याओं को सुलझाने में सहायता करने वाला, चुस्ती–फुर्ती लाने वाला एवं उच्च वर्ग के अधिकारियों से सम्बन्ध बना कर सहायता कर अधिक लाभ दिलाने में सहयोग करने वाला मानते हैं। वास्तविक सत्य तो वही होता है जो निष्पक्ष दृष्टि से तथ्यों, वैज्ञानिक खोजों एवं सर्वेक्षणों आदि निष्कर्षों पर आधारित हो।

व्यसन की विकराल समस्या से निपटने के लिए सभी स्तर के व्यक्तियों डॉक्टर, वैज्ञानिक, पत्रकार, राजनेता, शिक्षक, अभिभावक व धर्मगुरुओं को सामने आना चाहिए। अपना अपना योगदान देना चाहिए।

7.4.1 व्यसन का समाधान

तालिका 7.2 : व्यसन की समस्या और समाधान

क्र.सं.	कारण	उपाय
1.	वातावरण, परिवेश, समाज, संगत	वातावरण का निर्माण, स्वस्थ एवं अहिंसक समाज का निर्माण
2.	इच्छाशक्ति व मनोबल की कमी	संकल्प शक्ति का विकास, अणुव्रत का ग्रहण
3.	उपाय का अभाव	प्रेक्षा–प्रयोग
4.	अज्ञान	जीवन विज्ञान का शिक्षण प्रशिक्षण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

समस्या–समाधान हेतु अनेकान्त दृष्टि से विचार आवश्यक है। एकान्त दृष्टि से समाधान सर्वग्राही नहीं हो सकेगा। ***पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी एवं आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने सर्वांगीण चिन्तन और प्रक्रिया को प्रस्तुत किया है। स्वस्थ वातावरण के निर्माण के लिए 'अहिंसक समाज संरचना' की परिकल्पना दी।*** इसके अन्तर्गत व्यक्ति को शुभ संकल्पों द्वारा सुरक्षित और स्वस्थ जीवन जीने के लिए ***अणुव्रत*** की बात कही। जीवन में आने वाली समस्याओं से निपटने के लिए ***प्रेक्षाध्यान*** द्वारा आन्तरिक शक्तियों के विकास की बात कही। अच्छा जीवन जीने के लिए, बच्चों में प्रारम्भ से ही मूल्यों के विकास के लिए और व्यसन के सभी पहलुओं के ज्ञान के लिए ***जीवन विज्ञान की शिक्षा प्रणाली*** प्रस्तुत की। उन्होंने अणुव्रत के कार्यकर्ता और साधु–साध्वियों की शक्ति को इस पुनीत कार्य में नियोजित किया। आज अपेक्षा यह भी है कि नशा–मुक्ति के कार्य में संलग्न स्वैच्छिक संस्थाओं, समुदायों और समान उद्देश्यों से निहित विचारकों और कार्यकर्ताओं की संगठित शक्ति इस ओर लगे। सब मिलकर नशीले एवं मादक पदार्थों के विरुद्ध जन–जागरण में अपना शंखनाद करें। यह प्रसन्नता की बात है कि इस ओर विश्व स्वास्थ्य संगठन का ध्यान गया है एवं विशेषकर धूम्रपान निषेध की दिशा में ठोस कदम उठाए हैं। इन कदमों को और गतिशील एवं तीव्र करने की आवश्यकता है। सभी सरकारों का यह एक बड़ा दायित्व है।

वर्ष 2003 में विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O) के सभी सदस्य देशों ने पूरी दुनिया में तम्बाकू निषेध के लिए सर्वसम्मति से फ्रेमवर्क कन्वेंशन (सन्धि) को स्वीकार किया। इसके तहत् एक छह सूत्रीय एम. पॉवर पैकेज की घोषणा की गई। इस एम. पॉवर पैकेज में वर्ष 2008 तक वैश्विक और देशों के स्तर पर धूम्रपान और उसके दुष्प्रभावों के सम्बन्ध में प्रभावी निगरानी एवं तंत्र विकसित करने, कार्यस्थल और सार्वजनिक स्थलों में धूम्रपान पूर्ण प्रतिबन्धित करने की व्यवस्था है। सभी देशों में भी ऐसे कार्यक्रम चलाने का भी सुझाव दिया गया है जिससे लोगों को धूम्रपान छोड़ने में मदद मिले। तम्बाकू उत्पादों पर तस्वीरों और कम्प्यूटर ग्राफिक के जरिए लोगों को उनके खतरों की जानकारी देने, इन उत्पादों के विज्ञापनों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने व तम्बाकू उत्पादों पर खुदरा मूल्य की तुलना में 75 प्रतिशत तक टैक्स लगाने का भी सुझाव है।

7.4.2 व्यसन मुक्ति और प्रेक्षा–प्रयोग

धूम्रपान से लोगों को निजात दिलाने के लिए देश–दुनिया में निकोटीन रिप्लेसमेंट थैरेपी (एन.आर.टी.), ई–सिगरेट और हर्बल सिगरेट जैसे विकल्प उपलब्ध हैं। लेकिन हर विकल्प को लेकर किसी न किसी तरह का विवाद भी है। स्वास्थ्य विशेषज्ञ इनमें से किसी पर एकमत नहीं हैं।[1]

एन.आर.टी. – कई देशों में लोगों को धूम्रपान से छुटकारा दिलाने के विकल्प के रूप में निकोटीन रिप्लेसमेंट थैरेपी प्रचलित है। इसके तहत निकोटीन की पट्टी, खास किस्म की च्यूइंगम, नेजल स्प्रे, इनहेलर आदि का उपयोग किया जाता है। इन सभी के जरीए धूम्रपान करने वाले को धूआं रहित निकोटीन दिया जाता है। लेकिन इसमें दिक्कत यह है कि धूआं रहित ही सही लेकीन निकोटीन भी तो हानिकारक होता है।

ई–सिगरेट – सिगरेट के एक अन्य विकल्प के तौर पर इलेक्ट्रोनिक सिगरेट प्रचलन में है। यह पतली छड़ की तरह होती है। सिगरेट के फिल्टर की जगह इसमें बदलने योग्य कार्टरीज होता है जिसमें तरल निकोटीन के साथ प्रोपलीन ग्लीसरोल व फ्लेवर होता है। सिगरेट की तरह ही कश खींचकर निकोटीन लिया जाता है और उपभोगकर्ता को वास्तविक सिगरेट का अहसास होता है। यह हानिकारक है या नहीं इस पर विवाद है।

हर्बल सिगरेट – हर्बल सिगरेट में गुलाब की पंखुड़ियां, मार्शमैलो की पत्तियां, दूब आदि का इस्तेमाल होता है। कुछ सिगरेटों में लौंग, हल्दी, तेन्दू पत्ती, दानचीनी, अजवायन, तुलसी का भी इस्तेमाल होता है। दावा है कि इन सिगरेटों से स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव के बिना सामान्य सिगरेट की लत छूट जाती है। लेकिन वियना विश्वविद्यालय के शोध के मुताबिक हर्बल सिगरेट भी उतनी ही कार्बन मोनो ऑक्साइड छोड़ती है जितनी सामान्य।

[1] राजस्थान पत्रिका, रविवार, 28 सितम्बर 2008, रविवार विशेष पृष्ठ–8

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पूज्य आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने व्यसन मुक्ति के लिए प्रेक्षा के प्रयोग दिये। इसके द्वारा व्यक्ति की आन्तरिक समस्याओं का समाधान मिलता है। आन्तरिक शक्तियों का जागरण होता है जिससे व्यक्ति विपरीत परिस्थिति में भी अपने आपको संभाल लेता है। ऐसा व्यक्ति व्यसन मुक्त होकर व्यसन मुक्त बने रह सकता है। व्यसन मुक्ति हेतु प्रेक्षा प्रयोगों में मुख्य रूप से कायोत्सर्ग, दीर्घ श्वास प्रेक्षा, ज्योति केन्द्र पर श्वेत रंग का ध्यान, संकल्प का प्रयोग, कानों पर हरे रंग का ध्यान, अनुप्रेक्षा, आसन, प्राणायाम यौगिक क्रियाएं समाहित हैं।

तालिका 7.3 : व्यसन की समस्या : प्रेक्षा का समाधान

क्र.सं.	व्यसन के कारण	निवारण प्रेक्षाध्यान से
	व्यसन प्रारम्भ करने के कारण	
1.	तनाव	कायोत्सर्ग
2.	संगत, मनोबल की कमी	दीर्घश्वास प्रेक्षा
3.	उदासी, अशान्ति	ज्योति केन्द्र पर श्वेत रंग का ध्यान
	व्यसन न छूटने के कारण	
4.	आदत, मूढ़ता, मूर्च्छा, आसक्ति	कानों पर हरे रंग का ध्यान
	पश्चात् प्रभाव	
5.	स्वास्थ्य, सुरक्षा हेतु भी	आसन, यौगिक क्रियाएं

7.4.3 व्यसन–मुक्ति शिविर की उपलब्धियाँ

प्रत्येक क्षेत्र को व्यसन मुक्ति के अभियान में सहभागिता द्वारा स्वस्थ समाज के निर्माण में आगे आना चाहिए। राजस्थान में सशस्त्र बल के अधिकारियों ने जयपुर, बीकानेर, जोधपुर में अपने जवानों के बीच **'व्यसन मुक्ति प्रेक्षाध्यान'** शिविरों का आयोजन करवाया। अजमेर में इसी प्रकार रेलवे पुलिस में भी शिविर आयोजित करवाये गये। इनके बहुत अच्छे परिणाम आये। अनेक जवानों ने व्यसन–मुक्ति का संकल्प ग्रहण किया एवं व्यसन–मुक्त हुए। इनके परिणामों से उत्साहित होकर अधिकारियों ने अभ्यास क्रम को चालू रखने का निर्णय किया।

बोध प्रश्न

1. व्यसन के प्रारम्भ होने के मुख्यतया दो कारण कौन से हैं ?
2. व्यसन मुक्ति शिविरों की क्या उपलब्धियाँ हैं ?
3. व्यसन की समस्या का समाधान कैसे हो सकता है ?

7.5.0 सारांश

- आज का युवा वर्ग जिस सबसे बड़ी समस्या से घिरा हुआ है वह है ***व्यसनों का सेवन।*** वह अपनी शक्तियाँ, अपनी काबलियत, अपनी क्षमता सब कुछ इस नशे के गहरे अंधियारे में बर्बाद कर रहा है जिसके परिणाम स्वरूप समाज रुग्ण होता जा रहा है। दंगे–फसाद जैसी भंयकर सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो रही है।

- तम्बाकू, जर्दा, गुटखा, अफीम, गांजां, शराब आदि सभी व्यसनों में आते हैं। इनका सेवन व्यक्ति को केवल शारीरिक रुग्ण ही नहीं बनाता बल्कि मानसिक दृष्टि से भी कमजोर बना देता है। महात्मा गाँधी के शब्दों में ''शराब शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आर्थिक दृष्टि से मनुष्य को बर्बाद कर देती है। शराब के नशे में मनुष्य दुराचारी बन जाता है एवं अफीम के नशे में वह सुस्त और मुर्दा बन जाता है।'' इस प्रकार व्यसन व्यक्तिगत, सामाजिक व आर्थिक स्तर पर सभी को प्रभावित करता है।

- व्यसन के दो प्रमुख कारण है – आन्तरिक और बाह्य। आन्तरिक स्थिति व बाह्य परिस्थिति दोनों के संयोग से व्यसन प्रारम्भ हो जाता है। प्रारम्भ होने के बाद व्यक्ति उसका गुलाम हो जाता है। हानि को जानते हुए भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

छोड़ नहीं पाता है। अतः व्यक्ति को व्यसन करना ही नहीं चाहिए, इसी में वह खुद और उसका परिवार खुश रह सकता है।

- तनाव, खराब संगत, मनोबल में कमी, उदासी, अशान्ति, अज्ञान व परिवेश आदि अनेक कारण है जिनसे व्यक्ति व्यसन करने को मजबूर हो जाता है। यदि इनसे युवावर्ग को बचाना है एवं अपने आपको व्यसन मुक्त रखना है तो हमेशा अपनी संगत अच्छी रखना होगा। स्वस्थ वातावरण का अपने चारों ओर निर्माण करना होगा। अपने अन्दर ***संकल्प शक्ति*** का विकास करना होगा। इनके अतिरिक्त व्यसन मुक्ति हेतु कायोत्सर्ग, दीर्घश्वास प्रेक्षा, आसन व यौगिक क्रियाएं आदि भी बहुत उपयोगी निर्दोष, निर्विवाद एवं प्रभावी उपाय है।

- अतः यह स्पष्ट है कि अनेक अपराध, हिंसा और कुकृत्यों का प्रमुख कारण है – नशा। अहिंसक समाज संरचना के लिए अपराध, हिंसा व आतंक में न्यूनता आये यही सबसे बड़ी अपेक्षा है। इसका एक प्रमुख आधार है – ***व्यसन मुक्त समाज।***

7.6.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. तम्बाकू सेवन से होने वाली शारीरिक बीमारियों के नाम लिखो।
2. तम्बाकू सेवन से होने वाली मानसिक बीमारियों के नाम लिखो।
3. व्यसन न छूटने के प्रमुख कारण क्या है ?
4. तनाव को दूर करने का उपाय क्या है ?
5. समाज में बढ़ती गरीबी, अस्वास्थ्य, कुपोषण और अपराध के लिए कौन जिम्मेदार हैं।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. व्यसन करने से समाज व राज्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव कौन से हैं ?
2. व्यसन प्रारम्भ होने के कारण कौन–कौन से हैं ?
3. स्वस्थ समाज के निर्माण में आचार्यश्री तुलसी व आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने क्या परिकल्पना दी।

निबंधात्मक प्रश्न

1- व्यसन मुक्त व्यक्तित्व से आपका क्या अभिप्राय है ? व्यसन एक समस्या एवं इसके परिणाम विस्तार से समझाइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 2 उन्नत व्यक्तित्व का विकास और प्रेक्षाध्यान

पाठ – 8 उन्नत व्यक्तित्व और चारित्रिक विकास

रूपरेखा

8.0.0 उद्देश्य

8.1.0 भूमिका

8.2.0 अनासक्त व्यक्तित्व

8.2.1 मानसिक स्वास्थ्य और अनासक्ति

8.2.2 आसक्ति

8.2.3 आसक्ति और आवश्यकता में अन्तर

8.2.4 धन की आसक्ति

8.2.5 आसक्ति : कारण और परिणाम

8.2.6 आसक्ति का निवारण

8.3.0 श्रेष्ठ जीवन

8.3.1 प्रवृत्ति निवृत्ति का संतुलन : क्या और क्यो ?

8.3.2 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण

8.3.3 संतुलित जीवन

8.4.0 उन्नत व्यक्तित्व और चारित्रिक विकास

8.4.1 आत्मसिद्ध व्यक्तित्व एवं उसके लक्षण

8.4.2 मनोविज्ञान और चरित्र

8.4.3 चरित्र और आचार्यश्री महाप्रज्ञ

8.4.4 चरित्र परिवर्तन के उपाय

8.5.0 सारांश

8.6.0 अभ्यास प्रश्न

8.0.0 उद्देश्य

ज्ञान पिपासु भगिनि, बंधुओं !

जीवन विज्ञान का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है – आध्यात्मिक–वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण करना। अब तक 7 पाठों में आपने व्यक्तित्व विकास संबंधी ज्ञानार्जन किया एवं संबंधित प्रयोगों की जानकारी प्राप्त की। इस पाठ में आपकी ज्ञान वृद्धि की दृष्टि से आपका ध्यान ''उन्नत व्यक्तित्व और चारित्रिक विकास'' विषय पर आर्कषित करना चाहेंगे। इससे विद्यार्थी वर्ग अपने व्यक्तित्व को उन्नत कर आध्यात्मिक – वैज्ञानिक व्यक्तित्व निर्माण की दिशा में चरण न्यास कर सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनासक्त व्यक्तित्व, श्रेष्ठ जीवन, उन्नत व्यक्तित्व और चारित्रिक विकास आदि बिन्दुओं की परिधि में इस पाठ की चर्चा होगी। विश्वास है ज्ञानार्थी अवश्य लाभान्वित होंगे। इस प्रकार इस पाठ से आप जान सकेंगे –

1. अनासक्त व्यक्तित्व, मानसिक स्वास्थ्य के नियम एवं उस दिशा में बढ़ने के उपाय।
2. श्रेष्ठ जीवन से क्या तात्पर्य है एवं उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया।
3. मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तित्व के लक्षण।
4. संतुलित जीवन की दिशा में बढ़ने का व्यावहारिक अभ्यास।
5. उन्नत या आत्मसिद्ध व्यक्तित्व के लक्षण एवं व्यक्तित्व रूपान्तरण की प्रविधि।

8.1.0 भूमिका

मानव सुख, शान्ति और तनावमुक्त जीवन का इच्छुक है। ऐसे जीवन के लिए पहली आवश्यकता है– अनासक्ति। दूसरी अपेक्षा है संतुलित जीवन। तीसरा चरण है – सही आचरण। व्यक्तित्व विकास पर पूर्वी दुनिया में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने गहन चिन्तन कर मानव जाति के लिए उत्तम सूत्र दिये हैं। पश्चिम जगत् में अमेरिका के अब्राहम मैस्लो ने भी इस विषय पर गहरा चिन्तन, मनन कर विश्व को उत्तम विचार दिये हैं। यदि व्यक्ति–व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का उत्तम निर्माण करे तो धरती पर उत्तम वातावरण का निर्माण हो सकता है।

हमें दुर्लभ मानव जन्म बहुत सौभाग्य से प्राप्त हुआ है। क्यों नहीं इस मानव जीवन को सुख, शान्ति और आनन्द से जीने के लिए हर क्षण जागरूक बने रहें। हमें सम्यक् ज्ञान उपलब्ध होगा तो सहज श्रद्धा उस पर जायेगी। हम इस सम्यक् ज्ञान के अनुसार जितना अच्छा आचरण कर पाएंगे उतने ही सुखी बनेंगे।

उन्नत व्यक्तित्व और चारित्रिक विकास का स्वाध्याय हमारे बेहतर मानव जीवन के लिए प्रथम कदम होगा। अनेकान्त दृष्टिकोण से यह पाठ न केवल जीवन विज्ञान के ज्ञानार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है वरन् परिवार के हर समझने वाले स्वाध्यायी सदस्य के लिए लाभदायक है।

8.2.0 अनासक्त व्यक्तित्व

आज का मनुष्य दिन–प्रतिदिन उपभोक्तावादी होता जा रहा है। पदार्थ के प्रति उसकी आसक्ति बढ़ती जा रही है। अतः भौतिक सुख–सुविधा को प्राप्त करने की होड़ लगी हुई है। इस प्रतिस्पर्धा ने समाज में अनेक नई समस्याएं पैदा की हैं। मनुष्य का व्यवहार जटिल हो गया है। व्यक्ति के सामने समस्याएं और बाधाएं अपेक्षाकृत अधिक बढ़ गई है। यही कारण है कि आज अनेक व्यक्ति शारीरिक रोगों के साथ–साथ मानसिक रोगों से अधिक पीड़ित होते जा रहे हैं।

8.2.1 मानसिक स्वास्थ्य और अनासक्ति

व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को स्वस्थ बनाना चाहता है तो उसे आसक्ति और आवश्यकता में अन्तर जानना होगा। अपनी सीमाओं को पहचानना होगा तभी वह मानसिक रूप से स्वस्थ रह सकता है। आज मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान आवश्यक ही नहीं, अपितु मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा भी आवश्यक है। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति का प्रभावपूर्ण समायोजन मानसिक स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक स्वास्थ्य के अनेक नियमों का वर्णन किया है।[1] इनके द्वारा एक व्यक्ति अपने मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रख सकता है और अध्यात्म की दृष्टि से अनासक्त व्यक्तित्व का निर्माण कर सकता है।

1. अपने और दूसरों के व्यक्तित्व के प्रति सम्मान का भाव – मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने हेतु व्यक्ति के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने आत्म–सम्मान को बनाये रखें। इसके साथ–साथ दूसरों के आत्म–सम्मान को बनाये रखने का पूरा–पूरा प्रयास करें। इसके लिए अपेक्षित है कि व्यक्ति स्वयं सन्तुष्ट रहे और दूसरों को भी संतुष्ट रखे।

1 डॉ. प्रीति वर्मा एवं डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, पृष्ठ॰ 542

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. अपनी तथा अन्य व्यक्तियों की सीमा को पहचानना – व्यक्ति अपनी विभिन्न शारीरिक और मानसिक योग्यताओं से संबंधित सीमाओं को पहचानें। साथ ही साथ उन व्यक्तियों की भी सीमाओं को पहचाने जिनसे वह व्यवहार करने जा रहा है या करेगा। ***जब एक व्यक्ति अपनी सीमाओं के अनुसार और दूसरे व्यक्ति की सीमाओं को ध्यान में रखकर व्यवहार करता है तो सफलता मिलने की संभावना उतनी ही अधिक रहती है।***

3. व्यवहार के कार्य–कारण संबंध का ज्ञान – प्रत्येक व्यवहार का कोई न कोई आन्तरिक या बाह्य कारण होता है। दूसरों से अन्तःक्रिया करते समय यदि व्यक्ति को व्यवहार के कार्य–कारण संबंध का पर्याप्त ज्ञान है तो उसे अपने मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने में सहायता मिलती है।

4. इस तथ्य को पहचानना कि व्यवहार सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिणाम है – मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए इस बात का ज्ञान आवश्यक है कि उसका व्यवहार सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिणाम है। अर्थात् उसका व्यवहार उसके ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक पक्ष से संबंधित है।

5. महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पहचान – व्यक्ति की अनेक आवश्यकताएं होती है। ***मानसिक स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं का स्पष्ट ज्ञान करे और देखें कि उसमें कौन–सी आवश्यकताएं पूरी हो सकती है या पूरी करने के योग्य है।*** व्यक्ति को केवल उन्हीं आवश्यकताओं को महत्त्व देना और पूरा करने का प्रयास करना चाहिए जिन आवश्यकताओं को वह पूरा कर सकता है अथवा वह पूरा करने के योग्य हैं।

8.2.2 आसक्ति

मानसिक स्वास्थ्य के अनेक सिद्धान्त मनोविज्ञान ने दिये। उनमें एक है अपनी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पहचान। बहुत सुन्दर सिद्धान्त है पर व्यावहारिक जगत् में लागू नहीं हो पा रहा है। क्यों? इसका समाधान आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की पुस्तक 'सोया मन जग जाए' से मिलता है। ***व्यक्ति महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की पहचान इसलिए नहीं कर पा रहा है कि व्यक्ति में आसक्ति बहुत प्रबल है। आसक्ति क्यों है? क्योंकि मनुष्य में आवश्यकताओं के प्रति आकर्षण, प्रियता व राग का भाव है, जो धिरे–धिरे आसक्ति में बदल जाता है***। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी मानसिक स्वास्थ्य व उन्नत व्यक्तित्व निर्माण के संदर्भ में कहते हैं कि रागात्मक प्रकृति वाला संग्रह करता है, चाहे आवश्यक हो या न हो। सुख–सुविधाओं को बटोरता है, आवश्यक हो या न हो। उनके भोग व उपभोग में उलझ जाता है। जीवन में केवल राग और आसक्ति से जीवन बोझिल, मन अस्वस्थ और व्यक्तित्व का ह्रास हो जाता है। मानसिक तनाव, उच्च रक्तचाप, अवसाद, पागलपन, असामान्य व्यवहार और एकांगी जीवन ये सब आसक्ति के परिणाम हैं। इण्डियन एसोसिएसन ऑफ साइकेट्री के अनुसार 9 करोड़ 60 लाख भारतीय, उदासी, खिन्नता, चिड़चिड़ापन, ऊब आदि रोगों के शिकार हैं जो हृदय रोगों के बराबर ही है।[1]

जीवन यात्रा को चलाने के लिए शरीर, आहार और धन तीनों आवश्यक है। इन तीनों में भी धन की प्राथमिकता है। रोटी से जीवन चलता है। शरीर के स्वस्थ होने से जीवन अच्छा चलता है। पर रोटी और स्वास्थ्य सुविधाएं धन होने पर मिलती है। ***जो जितना आवश्यक होता है, वह उतना ही प्रिय बन जाता है। उससे राग भाव जुड़ने लगते हैं। वह आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। राग, आकर्षण और प्रियता बढ़ते–बढ़ते आसक्ति का रूप ले लेती है।*** दूसरी ओर देखें तो रागात्मकता को जीवन विकास की दिशा में अनिवार्य माना जाता है। कला और साहित्य से मनुष्य प्रेम करता है। जहां रागात्मकता नहीं होती है किसी भी कला का विकास नहीं होता और कलाशून्य जीवन पशुतुल्य माना जाता है। इस स्थिति में राग से विराग की ओर जाने की बात क्यों ? राग को भी ठीक से समझना है।

राग के दो प्रकार हैं – प्रशस्त और अप्रशस्त। महापुरुषों के प्रति जो आकर्षण होता है उसे प्रशस्त राग कहा गया है। जैसे भगवान महावीर के प्रति उनके प्रधान शिष्य गणधर गौतम स्वामी का अनुराग था। यह रागात्मकता दोष नहीं है। प्रशस्त राग, अप्रशस्त राग पर विजय पाने में सहायक बनता है। अप्रशस्त राग है – आसक्ति, मूर्च्छा और प्रमाद।

8.2.3 आसक्ति और आवश्यकता में अन्तर

1. राजस्थान पत्रिका, बैंगलोर संस्करण, 7 जुलाई 2008, पृ. 10

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शरीर एक आवश्यकता है, उसे छोड़ा नहीं जा सकता। आहार जीवन की आवश्यकता है, परम आवश्यकता है, उसे छोड़ा नहीं जा सकता। धन जीवन निर्वाह का साधन है, उसे छोड़ा नहीं जा सकता। तब आवश्यकता और आसक्ति में अन्तर क्या है ? इसे एक उदाहरण से समझ सकते हैं। गुरु ने शिष्य से एक पिंजरा और एक फल मंगवाया। पिंजरा खाली था, खुला था। एक पक्षी आया फल खाकर पिंजरे को देख कर चला गया। दूसरे दिन एक फल बाहर रखा और दूसरा फल अन्दर। पिंजरा बंद था। ठीक समय पर पक्षी आया। बाहर पड़ा फल खाया। उसकी पिंजरे में पड़े फल पर गई। वह पिंजरे के चक्कर लगाने लगा। बहुत समय तक चक्कर लगाता रहा। थक गया। फल मिला नहीं। उड़ गया।

गुरु ने कहा – पक्षी की कल थी आवश्यकता और आज है आसक्ति। आवश्यकता पूरी हुई। पक्षी उड़ कर चला गया। आज आसक्ति है। फल पिंजरे में बन्द है। उसे पाने को पक्षी छटपटा रहा है।

एक और उदाहरण से आसक्ति को समझ सकते हैं। बन्दर चनों का लालची होता है। वह संकरे मुंह वाले बर्तन में हाथ डालता है। चनों से मुट्ठी भर कर हाथ बाहर निकालने का प्रयत्न करता है, पर वह हाथ बाहर निकाल नहीं पाता है, क्योंकि मुट्ठी में चने हैं, वह बन्द है। यह बन्दर की आसक्ति है।

अध्यात्म के चिन्तकों ने सीधे वीतराग बनने की बात नहीं कही। उन्होंने व्यावहारिक बात कही। राग से विराग की ओर बढ़ो। इसके लिए आवश्यक है, जीवन में आसक्ति और आवश्यकता के अन्तर को समझना। यह बोध स्पष्ट होने पर आगे की जीवन यात्रा सुगम हो जाती है।

8.2.4 धन की आसक्ति

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार मनुष्य में तीन प्रमुख आसक्तियां हैं – शरीर की आसक्ति, आहार की आसक्ति और धन की आसक्ति। ये तीनों आसक्तियां अन्य अनेक आसक्तियों को पैदा करती है। धन की आसक्ति मनुष्य की सभी आसक्तियों में प्रबलतम आसक्ति है। मनुष्य को धन जितना प्रिय है उतना कुछ भी नहीं है। भाई को भाई प्रिय होता है, पर तब तक ही जब तक कि धन का प्रश्न बीच में न आ जाए। पति को पत्नी और पत्नी को पति सबसे अधिक प्रिय है। पर जब धन का प्रश्न उठता है तो पति पत्नी से और पत्नी पति से अलग हो जाते हैं। धन का प्रश्न आते ही चूल्हें दो, दरवाजे दो, घर दो और सबकुछ दो हो जाते हैं। इन सारे संदर्भों में यही फलित निकलता है कि संसार में सबसे अधिक प्रिय है धन, संपदा, संपति। शेष सारे संबंध इसके समक्ष फीके हैं, व्यर्थ हैं।

धन की आसक्ति के कारण व्यक्ति क्या–क्या नहीं करता ? क्या–क्या नहीं सोचता ? प्राचीन आचार्यों ने कहा – भागीदार यहां तक सोच लेते हैं कि कब आदमी मरे और कब हमें धन का हिस्सा मिले। चोर धन चुराने की ताक में रहते हैं। राजा भी जनता के धन के अपहरण की बात सोच लेता है। राज्याधिकारी भी धन लूटने की ताक में देखे जाते हैं। आग लगती है, धन को जमीन में गाढ़ कर सुरक्षित रखना चाहता हैं। आदमी अचानक मर जाता है और धन जमीन में गढ़ा का गढ़ा रह जाता है। करोड़ों का संचय करता है और उसकी आचरणहीन व संस्कारहीन संतान उस संचित धन को थोड़े समय में ही बरबाद कर डालती है। मनुष्य इन सब सच्चाइयों को अपने चारों ओर देखता है फिर भी धन के प्रति इतनी आसक्ति क्यों?

8.2.5 आसक्ति : कारण और परिणाम

आचार्यश्री महाप्रज्ञ अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि क्या जीवन निर्वाह के लिए धन अत्यन्त आवश्यक है, इसलिए इसके साथ इतनी प्रियता जुड़ गई या अन्य कोई कारण है ? इसके समाधान में वे कहते हैं कि ***धन के प्रति आसक्ति होने का मुख्य कारण है – मिथ्यादृष्टिकोण। व्यक्ति के अन्दर एक गलत धारणा बन गई है कि धन से सब कुछ हो सकता है, होता है।*** धन सर्वशक्तिमान देवता है, प्रभु है। यह धारणा इतनी गहरी हो गई है कि धन है तो सबकुछ है, धन नहीं तो कुछ भी नहीं है। **सर्वेगुणा कांचनमाश्रयन्ति** यह उक्ति इसी धारणा का प्रतिनिधित्व करती है। जिसके पास धन है, वह व्यक्ति सर्वगुण सम्पन्न है। जिसके पास धन नहीं है, वह अगुणी है, फिर चाहे वह कितना ही विद्वान् क्यों न हो। इन सारी बातों ने यह मानने के लिए विवश किया है कि धन ही परमेश्वर है। यही शक्ति है। इससे सबकुछ साधा जा सकता है। इस

1 आचार्य महाप्रज्ञ, कैसे सोचें, पृष्ठ 135

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

धारणा ने धन के प्रति आसक्ति को और अधिक गहरा कर दिया है। धन के प्रति असीम मोह पैदा हो गया। इतना मोह कि आदमी और सब कुछ छोड़ सकता है, पर धन को नहीं छोड़ सकता।

धन के प्रति आसक्ति होने का दूसरा कारण व्यावहारिक जगत् में है। बाह्य जगत् के व्यवहार में मनुष्य जब दूसरे व्यक्तियों को धन के प्रति आसक्त देखता है, मौज उड़ाते हुए देखता है, तब उसके मन में यह ललक जागती है कि जब सब धन एकत्रित कर रहे हैं तो भला मैं क्यों बाकी रहूं। यह ललक लालसा पैदा करती है और उसमें आसक्ति बढ़ जाती है। यह बहुमत के प्रभाव से, बाहरी दुनिया के प्रभाव से होने वाली आसक्ति है। ***आज का बहुमत धन के पक्ष में है। इसका परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति ने अपने शरीर की स्वस्थता, मन की शान्ति, पारिवारिक दायित्व, सामाजिक सम्बन्ध सबको गौण कर दिया है। एक मात्र धन को प्रमुखता दे दी। इससे उसका जीवन एकांगी होता जा रहा है।***

8.2.6 आसक्ति का निवारण

सुखद जीवन का एक मात्र विकल्प धन नहीं है। ''धन ही सब कुछ नहीं है।'' व्यक्ति–व्यक्ति में इस धारणा का निर्माण हो। स्वास्थ्य, शरीर बल, मनोबल, मानसिक संतुलन, बुद्धि–बल, विवेक आदि–आदि होने पर ही जीवन सुखी हो सकता है। यदि ये नहीं होते और कोरा धन हो तो अनेक समस्याएं पैदा हो जाती है। धन समस्या के समाधान का बहुत बड़ा साधन माना जाता है परन्तु आसक्ति के कारण, एकांगी जीवन के कारण वही समस्याओं को बढ़ाने वाला बन जाता है। जब यह तथ्य हृदयगंम हो जाता है तब मनुष्य जीवन की सफल यात्रा के लिए धन को पच्चीस प्रतिशत और पचहत्तर प्रतिशत अन्यान्य तत्त्वों को जिम्मेदार मानेगा। इस सम्यक् धारणा या दृष्टि के प्रकाश से जब व्यक्ति का मन आलोकित होता है, जब यह समग्रता की दृष्टि प्राप्त होती है तब आसक्ति टूटने लगती है। सम्यक् दर्शन की जागृति का क्षण आसक्ति के टूटने का शुभारम्भ है। जब व्यक्ति के मन में यह मनोरथ जागता है –'कब मैं इस परिग्रह की आसक्ति के बन्धन से मुक्त हो, सुखी जीवन जीऊं, उसी क्षण से आसक्ति का चक्र टूटने लगेगा। अनासक्त व्यक्तित्व का बीजारोपण होता है। स्वस्थ व्यक्तित्व विकास का प्रारम्भ होता है।

बोध प्रश्न

---

4. आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के अनुसार मानव में तीन आसक्तियां कौन–कौन सी हैं? समझाइये।
5. आसक्ति को किन दो उदाहरणों से समझाया गया है ?

8.3.0 श्रेष्ठ जीवन

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं कि श्रेष्ठ जीवन की परिभाषा क्या है?[1] उनके अनुसार जिस जीवन में प्रवृत्ति का संतुलन है वह है श्रेष्ठ जीवन, उत्कृष्ट जीवन। जिसमें यह संतुलन नहीं है वह है जघन्य जीवन, निकृष्टतम जीवन। प्रवृत्ति और निवृत्ति, श्रम और विश्राम, करने और न करने का संतुलन जीवन में आवश्यक है। व्यावहारिक जीवन में कोरी निवृत्ति चल नहीं सकती। कोरी प्रवृत्ति चलती है तो जीवन टूट जाता है। मानसिक और शारीरिक विकृतियां पैदा हो जाती है। वह जीवन घोर कष्टमय बन जाता है।

व्यक्ति आवश्यकता और अनासक्ति की सीमा में जीवन जीए। इन दोनों के बीच में जो आसक्ति है उसको समझे। ***एक ओर आवश्यकता है, दूसरी ओर अनासक्ति। दोनों के बीच निवृत्ति का धागा जुड़ जाए तो आसक्ति कम हो जायेगी। तब आवश्यकता अनासक्ति को जन्म देगी और अनासक्ति आवश्यकता को कम करेगी।*** यदि केवल आवश्यकता की ही बात रही तो प्रवृत्ति को बल मिलेगा, जीवन की व्यवस्था गड़बड़ा जायेगी। अतः प्रत्येक व्यक्ति कुछ समय निवृत्ति की साधना और अभ्यास में बिताए। निवृत्ति का सूत्र जीवन विकास का, संतुलन का महान सूत्र है।

8.3.1 प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन : क्या और क्यों ?

---

1 सोया मन जग जाए, पृष्ठ 146

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जीवन चलाने के लिए प्रवृत्ति अनिवार्य है। प्रवृत्ति का अर्थ है क्रिया या व्यवहार। प्रवृत्ति, क्रिया या व्यवहार के तीन साधन हैं – मन, वाणी और शरीर। मन की प्रवृत्ति, वाणी की प्रवृत्ति और शरीर की प्रवृत्ति – इन तीनों को जीवन रहते छोड़ा नहीं जा सकता। जब तक शरीर है तब तक प्रवृत्ति और जब तक प्रवृत्ति है तब तक शरीर। प्रवृत्ति और शरीर का घनिष्ट संबंध है। मन से क्रिया न करना या अमन होना, वाणी की क्रिया न करना या मौन रहना और शरीर की क्रिया न करना या शरीर को स्थिर रखना निवृत्ति है। यह ध्यान और योग की साधना है। ध्यान और योग की साधना निवृत्ति प्रधान है। ***निवृत्ति क्यों?*** प्रश्न है कि हम निवृत्ति का चुनाव क्यों करें ? योग और ध्यान की साधना क्यों करें ? आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं कि –

1. जीवन में आसक्ति बहुत बड़ी समस्या है। यदि हम चाहते हैं कि जीवन में **अनासक्ति आये**, आसक्ति न रहे, केवल आवश्यकता मात्र रह जाये तो जीवन में निवृत्ति को, ध्यान और योग की साधना को लाना ही होगा। इसका परिणाम होगा – अनासक्ति। इसके बिना अनासक्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। निवृत्ति में से जो प्रवृत्ति निकलती है, वह है अनासक्ति।
2. अनासक्ति का आधार है – प्रवृत्ति–निवृत्ति का संतुलन। यदि 'न करने' से 'करना' निकलता है, योग साधना में से प्रवृत्ति निकलती है तो 'करने' के साथ विवेक होगा कि क्या करना है, कितना और कैसे करना है? प्रवृत्ति में से प्रवृत्ति, 'करो' में से 'करो' निकलेगा तो वहां **कर्तव्य का विवेक** नहीं होगा। कार्य की सीमा नहीं होगी।
3. ठहरना निवृत्ति है, चलना प्रवृत्ति है। ठहरने के बाद जो उसमें से गति निकलेगी वह **शक्तिशाली** होगी। एक आदमी चलता जाये, निरन्तर चलता जाये तो उसकी गति में मंदता आ जायेगी। यदि गति के साथ विश्राम नहीं करेगा तो लुढ़क जायेगा। समाप्त हो जायेगा।
4. हमारा जीवन आहार और अनाहार के संतुलन से चलता है। यदि केवल आहार से चलता है तो कोई चौबीस घन्टा निरन्तर खाकर देखे। निरन्तर खाते रहेंगे तो दूसरे दिन निकम्मे हो जायेंगे। अतः जीवन आहार और अनाहार के उचित योग से चलता है। **जीवन संचालन** में यथार्थ में आहार से अनाहार का महत्व अधिक है।
5. चिन्तन और अचिन्तन का उचित योग ही हमारी **कार्य क्षमता** को बढ़ाता है। निरन्तर सोचना, अधिक सोचना आदमी को पागल बना देता है। समझदार और पागल में यही अन्तर है कि समझदार आदमी जब चाहे अपने चिन्तन पर नियन्त्रण कर सकता है जबकि पागल नियंत्रण नहीं कर सकता। जो चिन्तन के साथ चिन्तन को विश्राम भी देता है उसका **चिन्तन तेजस्वी** होता है।
6. निरन्तर बोलना भी मनुष्य को खोखला बना देता है। जो केवल बोलता ही है, चुप नहीं रहता, वह झूठ अधिक बोलेगा। जो सीमित बोलता है वह झूठ से बच सकता है। उसका **बोलना तेजस्वी और महत्त्वपूर्ण** होता है।
7. जिस प्रकार व्यावहारिक जीवन में निवृत्ति महत्वपूर्ण है वैसे ही साधना के क्षेत्र में भी इसका कम महत्व नहीं है। श्वास लेना प्रवृत्ति है, आवश्यकता है। इसके बिना कोई रह नहीं सकता। यदि हम श्वास के साथ दो सैकिण्ड अ–श्वास, श्वास संयम या कुंभक का अभ्यास करें तो **जीवनी शक्ति, कर्मजा शक्ति और मस्तिष्कीय शक्ति** बढ़ेगी।
8. आसन का अभ्यास करते हैं। आसन के साथ स्थिरता का अभ्यास नहीं है तो वह आसन **पूर्ण** नहीं होगा। प्रत्येक आसन के साथ निवृत्ति जोड़ने से ही वह **फलदायी** होता है।
9. आचार्यश्री महाप्रज्ञजी इस पर विशेष बल देते हुए कहते हैं कि ***प्रवृत्ति के पीछे–पीछे नहीं, साथ–साथ निवृत्ति चलेगी तो क्रिया अच्छी होगी। चलते–चलते ही कायोत्सर्ग हो सकता है। यह असंभव नहीं है। इधर तो चल रहे हैं, उधर शरीर को शिथिल करने की क्रिया भी चालू है। यह साधना जब परिपक्व हो जाती है तब साधक आनन्द से आप्लावित हो जाता है। यह प्रवृत्ति में निवृत्ति की साधना है।***

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10. हमारे शरीर के स्वतः चालित हृदय की भी यही प्रकृति है। कार्य के साथ–साथ विश्राम। हृदय एक पल धड़कता है तो दो पल विश्राम करता है। प्रवृत्ति से दुगुनी निवृत्ति। यह है उसकी कार्य प्रणाली। जिस प्रवृत्ति के साथ निवृत्ति जुड़ी हुई होती है वह अनासक्त प्रवृत्ति होती है। अनासक्त कर्म होता है।
11. जो केवल अनासक्ति की चर्चा करते हैं पर प्रवृत्ति की सीमा नहीं करते, निवृत्ति की साधना नहीं करते वे और अधिक आसक्ति में फंस जाते हैं। एक व्यक्ति ने कहा संपदा का अत्यधिक विस्तार अनासक्ति का कारण बन सकता है। पर अनुभव ऐसा नहीं कहता। जिन–जिन लोगों ने संपदा का विस्तार किया है, वे आसक्ति में फंसे हैं वे जीवनभर अनासक्ति का सपना लेते रहे, पर अनासक्त बन नहीं पाये। मृत्यु के क्षणों में जब उन्हें इस सच्चाई का पता चला तो उन्हें केवल पछतावा ही हाथ लगा। सिकन्दर महान इसका ज्वलन्त उदाहरण है। साम्राज्य का इतना विस्तार कर लेने के बाद भी वह अनासक्त नहीं बन सका।

8.3.2 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण

आज मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में जागरूकता आवश्यक है। इसके अभाव में समाज, राष्ट्र और संस्कृति की सुरक्षा संभव नहीं है। कैसे पता चले कि हम मानसिक रूप से स्वस्थ हैं या नहीं? मनोविज्ञान में मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की अनेक विशेषताएं बताई गई हैं। इनके प्रति जागरूक रहकर हम अपने मानसिक स्वास्थ्य के बारे में न केवल जान सकते हैं, बल्कि मानसिक रूप से स्वस्थ भी रह सकते हैं। मानसिक स्वस्थता की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं –

1. **आत्म–मूल्यांकन** – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति अपने गुणों और सीमाओं का सही–सही मूल्यांकन कर सकता है। उसमें विभिन्न अन्तःनिहित योग्यताएं क्या है और कितनी मात्रा में हैं, इसका उसे सही–सही ज्ञान होता है। पारस्परिक अन्तःक्रियाओं में वह अपनी इन्हीं योग्यताओं के आधार पर सामान्य अन्तःक्रियाएं करने अथवा उपयुक्त समायोजन करने में सफल होता है।
2. **आत्म–विश्वास** – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में पर्याप्त मात्रा में आत्म–विश्वास पाया जाता है। वह जीवन की विभिन्न संघर्षमय परिस्थितियों में धैर्य नहीं खोता है, वह आत्म–विश्वास और उत्साह के साथ संघर्षमय परिस्थितियों का सामना करता है और उन परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने के प्रति आशावान रहता है।
3. **समायोजनशीलता (Adjustibility) –** मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में पर्याप्त समायोजनशीलता पायी जाती है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में, चाहे वह कितनी ही जटिल हो, उसका समायोजन प्रभावपूर्ण होता है। वह विभिन्न समायोजन परिस्थितियों में ही शान्तिपूर्ण ढंग से स्वयं और दूसरों को प्रसन्नचित्त रखने का प्रयास करता है।
4. **जीवन लक्ष्य का चुनाव (Selection of the Life Goal) –** ***इनके लक्ष्य सामाजिक मूल्य और स्वयं की आकांक्षाओं के अनुरूप तो होते ही है साथ ही पारिवारिक और सांस्कृतिक मान्यताओं और परिस्थितियों के अनुसार भी होते हैं। वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने का पूरा प्रयास करते हैं तथा अधिकांश लक्ष्यों को प्राप्त भी कर लेते हैं।***
5. **संवेगात्मक स्थिरता** – उनमें पर्याप्त मात्रा में संवेगात्मक स्थिरता पाई जाती है। उनके विभिन्न संवेग इतने नियंत्रित होते हैं कि वह संवेगों की अभिव्यक्ति परिस्थिति एवं आवश्यकतानुसार ही करता है। जहां जितनी संवेगात्मक अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है, वहां वह उसी रूप में संवेगों की अभिव्यक्ति करता है। ऐसा नहीं होता कि वह हर समय प्रेम, भय या क्रोध को प्रदर्शित करे।
6. **काम परिपक्वता (Sexual Maturity) –** मानसिक स्वास्थ्य का यह भी एक लक्षण है कि व्यक्ति में पर्याप्त काम–परिपक्वता पाई जाती है। वह अपनी काम भावनाओं की संतुष्टि केवल समाज द्वारा स्वीकृत मान्य तरीकों और स्रोतों से प्राप्त करता है। वह समाज में सुसंस्कृत व्यक्तियों की तरह जीवन व्यतीत करता है।
7. **मुख्य कार्यों में संतुष्टि –** व्यक्ति अपने लक्ष्य से जुड़े मुख्य कार्यों में रूचि लेता है। संतोष का अनुभव करता है। प्रसन्नता से अपने कार्यों में जुटा रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. **नियमित जीवन** – व्यक्ति का जीवन अधिकांशतया नियमित होता है। प्रातः से सायंकाल तक दिनचर्या, वेशभूषा आदि सब व्यवस्थित होता है। समाज और संस्कृति के अनुरूप होता है।

9. **अतिशयता का अभाव –** मानसिक स्वस्थता की स्थिति में व्यक्ति किसी भी बात में अति नहीं करता। वह न तो अधिक सम्मान पाना चाहता है और न ही प्रतिष्ठा। वह न ही अधिक कामुक होता है और न ही अधिक संवेगी। किसी भी क्षेत्र में अतिशयता अच्छी नहीं होती है। इससे अन्य क्षेत्रों में असंतुलन पैदा हो जाता है।

उपर्युक्त विशेषताएं मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। पर्याप्त मात्रा में ये विशेषताएं न हो तो उसे मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं कह सकते हैं। पर्याप्त मात्रा में होने पर ही उसे मानसिक रूप से स्वस्थ कह सकते हैं। मानसिक अस्वस्थता को अत्यधिक संवेदनशीलता, रुचियों का अभाव, भूख और नींद में कमी, अधिक जिद्द और चिड़चिड़ापन, दूसरों पर अधिक संदेह और सामाजिक सम्पर्क से पलायन आदि लक्षणों से आसानी से पहचाना जा सकता है। लक्षणों और विशेषताओं के प्रति जागरूक होकर व्यक्ति अपने मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रख सकता है।

16.3.3 संतुलित जीवन

स्व–प्रबन्धन के विद्वान् जेक ब्लेक के अनुसार जीवन में पूर्ण संतुलन के निकटतम पहुंचना सफलता है।[1] जीवन में असंतुलन कहां है? उसको जानने के लिए वर्तमान जीवन का अवलोकन अपेक्षित है। वर्तमान जीवन के अवलोकन के लिए यहां एक अभ्यास दिया जा रहा है जो वर्तमान में हो रहे असंतुलन को समझने में सहायक सिद्ध होगा।

जीवन चक्र – जीवन एक यात्रा है। यह यात्रा कैसी चल रही है, उसकी एक झलक आपको 'जीवन–चक्र' के अभ्यास से मिल सकेगी।

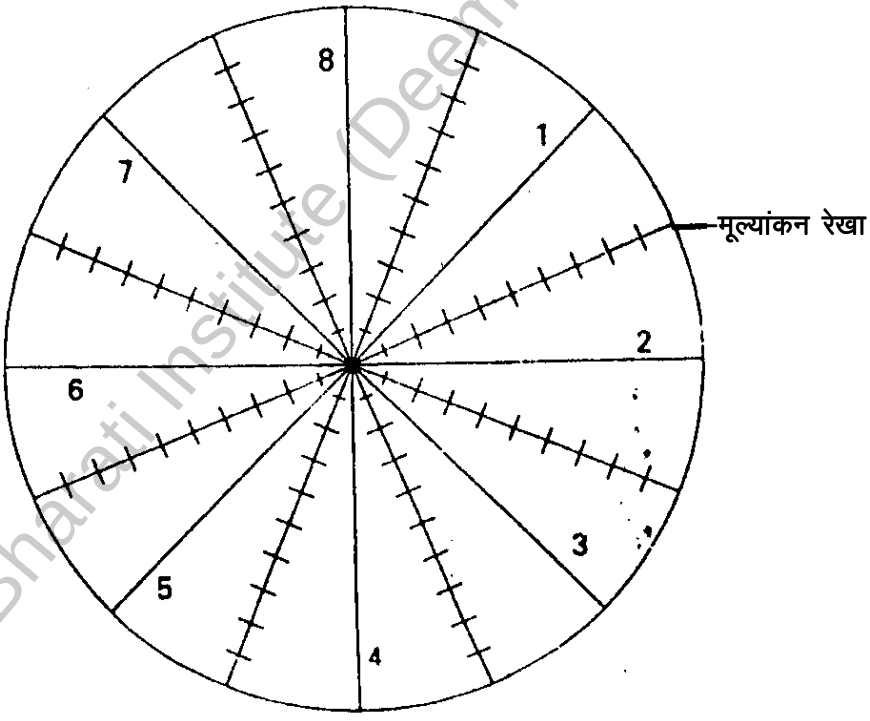

अभ्यास–1

एक खाली कागज लें। उस पर एक चक्र बनायें। उसको आठ भागों में विभाजित करें। प्रत्येक भाग के अन्तर्गत मूल्यांकन रेखा बनाएं। 10 भागों में बांट दें। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर विचार करें। उसका अंकन जीवन चक्र में निम्नलिखित प्रकार से करें।

1 I mean by success, and for me it is a life that is in near perfect balance as possible – Jack black, Mind Store, Page – 13.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस अभ्यास में वर्तमान जीवन को आठ भागों में बांटकर देखा गया है। इसके विभाजन को कम–ज्यादा भी किया जा सकता है। वे आठ भाग हैं – पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, वैयक्तिक विकास, स्वास्थ्य, दृष्टिकोण, व्यवसाय या कार्यक्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र, आध्यात्मिक जीवन।

1. **पारिवारिक जीवन –** जीवन में पारिवारिक जीवन का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रत्येक संस्कृति पारिवारिक जीवन को बहुत महत्त्व देती है। विशेषकर भारतीय संस्कृति में इसका और भी अधिक महत्त्व है। ***पारिवारिक जीवन में पारस्परिक जीवन की मधुरता या कड़वाहट, दायित्व एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूकता या लापरवाही, बच्चों या छोटों द्वारा पालन किया जाने वाला अनुशासन या उद्दण्डता, मर्यादाओं के प्रति सम्मान या अवहेलना, बड़ों का छोटों के प्रति स्नेह या उपेक्षाभाव, आदि बातें व्यक्ति के पारिवारिक जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव छोड़ते हैं।*** वे व्यक्ति की कार्यक्षमता, प्रसन्नता, संतोष व उत्साह आदि को प्रभावित करते हैं। आप अपने पारिवारिक जीवन अर्थात् अपने पारस्परिक सम्बन्ध, दायित्व, कर्तव्य, संतोष के प्रति कैसा अनुभव करते हैं उसका स्वयं मूल्यांकन करें। उसके लिए अपने आपको 10 में से कितने अंक प्रदान कर सकते हैं ? मान लो इसमें आपने पांच अंक दिये।

2. **सामाजिक जीवन –** व्यक्ति का जीवन समाज से बहुत प्रभावित होता है। समाज का तात्पर्य है – मित्र, साथ कार्य करने वाले साथी, अधिकारीगण और प्रत्येक व्यक्ति जिनसे व्यक्ति सम्पर्क में आता रहता है। व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता, पीड़ा, दुःख–दर्द आदि के प्रति कितना जागरूक और संवेदनशील है। वह दूसरों का ध्यान रख पाता है या नहीं, दूसरों की स्वतंत्रता का सम्मान कर पाता है या नहीं? वह केवल लेता ही लेता है या कुछ देता भी है। क्या वह अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर परार्थ की बात भी सोचता है।

   इन्हीं बातों से व्यक्ति का समाज में मूल्यांकन होता है। समाज से व्यक्ति को सहयोग, सम्मान, प्रोत्साहन, पुरस्कार आदि प्राप्त होता है। इससे उसको आत्म–संतुष्टि होती है। आप अपने आपको सामाजिक जीवन में कितना संतुष्ट अनुभव करते हैं ? स्वयं मूल्यांकन करें। इसके लिए आप अपने आपको 10 में से कितने अंक दे सकते हैं ? मान लो आपने इसमें तीन अंक दिये।

3. **वैयक्तिक विकास –** ***जीवन की सफलता का सबसे बड़ा रहस्य है निरन्तर अपनी क्षमताओं के विकास के प्रति जागरूक रहना। शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक क्षमताओं के विकास के लिए प्रयत्नशील रहना।*** मानसिक क्षमताओं का विकास निरन्तर सीखते रहने की भावना से होता है। नई–नई बातों को सीखना। अपने लक्ष्य में सहायक, उद्देश्यपूर्ण जीवन में उपयोगी एवं शान्तिपूर्ण जीवन का निर्माण करने वाली नई–नई तकनीक सीखते रहने से व्यक्ति का व्यक्तिगत विकास बढ़ता रहता है। संसार में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनका यह दृष्टिकोण बन जाता है – ''मैं सबकुछ जानता हूँ।'' वे अपने विकास के द्वारों को बन्द कर देते हैं। आप अपने आपको कहां पाते हैं? स्वयं मूल्यांकन करें। 10 में से कितने अंक स्वयं को दे सकते है? मान लो इसमें सात अंक दिये।

4. **स्वास्थ्य –** जीवन की प्रत्येक गतिविधि का आधार अच्छा स्वास्थ्य होता है। इस बात को जानते हुए भी हम में से कितने व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक हैं? कहीं हमने ऐसी आदतें तो नहीं पाल रखी है जो हमारे स्वास्थ्य के लिए घातक हैं, जैसे मादक पदार्थो का सेवन। क्या हम जीभ के स्वाद के लिए खा रहे हैं स्वास्थ्य के लिए सात्विक एवं संतुलित भोजन करते हैं? क्या हम श्रम के साथ–साथ विश्राम का संतुलन रखते हैं? क्या स्वस्थ मांसपेशी के लिए नियमित योगाभ्यास करते हैं? क्या हम तनाव से निपटने के लिए कायोत्सर्ग जैसे उपायों को काम में लेते हैं? क्या आप बिल्कुल अस्वस्थ रहते हैं या पूर्ण स्वस्थ? आप अपनी जीवनशैली से स्वास्थ्य को किधर ले जा रहे हैं? स्वयं मूल्यांकन करें। 10 में से स्वयं को कितने अंक दे सकते हैं? मान लो इसमें आपने छह अंक दिये।

5. **दृष्टिकोण –** जीवन में व्यक्ति के दृष्टिकोण का बहुत बड़ा महत्त्व होता है। ***जीवन एक पगबाधा दौड़ है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अनेक बाधाओं को पार कर अपने लक्ष्य तक पहुंचना होता है।*** कुछ व्यक्ति अपना ध्यान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अंतिम मंजिल पर टिकाकर दौड़ते हैं। हर तरीके से बाधाओं को पार कर अपनी मंजिल तक पहुंच जाते हैं। वे बाधाओं पर चिन्ता नहीं करते, रुकते नहीं, परेशान नहीं होते पर हर संभव प्रयत्न से पार करने की कोशिश करते हैं।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो प्रत्येक बाधा पर चिन्ता करने लग जाते हैं, निराश हो जाते हैं और वहीं रुक जाते हैं, आगे नहीं बढ़ पाते हैं। क्या हम जीवन में बाधाओं के बारे में अधिक सोचते हैं या लक्ष्य प्राप्ति के उपायों पर? क्या हम असफलता पर जल्दी निराश हो जाते हैं एवं प्रयत्न को छोड़ देते हैं या हम असफलता से सीखते हुए निरन्तर आशावादिता के साथ अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते हैं? स्वयं अपना मूल्यांकन करें। अपने आपको 10 में से कितने अंक दे सकते हैं? मान लो इसमें चार अंक दिये।

6. **कार्यक्षेत्र या व्यवसाय** – अधिकांशतः व्यक्ति का आर्थिक पक्ष व संतुष्टि का आधार उसका कार्यक्षेत्र होता है। जिस कार्य को आप कर रहे हैं क्या उससे आपको संतुष्टि है? क्या आप अपने लक्ष्य को जानते हैं? क्या आपको अपने कार्य में रूचि है? क्या आपको इसको करने में आनन्द व संतोष की अनुभूति होती है? क्या आपका अपने कार्य के प्रति पूर्ण समर्पण है? आप स्वयं अपना मूल्यांकन करें। अपने आपको 10 में से कितने अंक दे सकते हैं? मान लो इसमें छह अंक दिये।

7. **आर्थिक जीवन** – जीवन संचालन का एक प्रमुख साधन है – अर्थ। अर्थ के अभाव से जीवन की सामान्य आवश्यकताओं को भी पूरा करना कठिन हो जाता है। ***अर्थ की विपुलता से विलासिता, दुरुपयोग, लालसा, भय व अहंकार जैसी नई समस्याएं उत्पन्न हो जाती है। आर्थिक जीवन का तात्पर्य यह नहीं है कि हमारे पास धन कितना है? इसका तात्पर्य है कि धन के प्रति हमारा दृष्टिकोण कैसा है? क्या धन को हम साधन मानते हैं या साध्य? धन का सदुपयोग करते हैं या दुरुपयोग? धन होने के बावजूद भी हम संतुष्ट हैं या असंतुष्ट? हम सुरक्षित अनुभव करते हैं या असुरक्षित?*** स्वयं मूल्यांकन करें। अपने आपको 10 में से कितने अंक दे सकते है? मान लो इसमें सात अंक दिये।

8. **आध्यात्मिक जीवन** – आध्यात्मिक जीवन से तात्पर्य स्वयं के प्रति जागरूकता से है। कुछ लोग इसको महत्त्व देते हैं, कुछ लोग इससे बिल्कुल अनभिज्ञ होते हैं। ***आध्यात्मिक जीवन के विकास से व्यक्ति में स्वयं को जानने की जिज्ञासा पैदा होती है। अपनी क्षमताओं के विकास और दुर्बलताओं के नियंत्रण के उपाय हस्तगत होते हैं।*** क्या हम जीवन के इस पक्ष को भी आवश्यक मानते है? क्या उसके प्रति जागरूक हैं? क्या हम प्रयत्नशील हैं? स्वयं अपना मूल्यांकन करें। हम अपने आपको 10 में से कितने अंक दे सकते हैं ? मान लो इसमें आपने तीन अंक दिये।

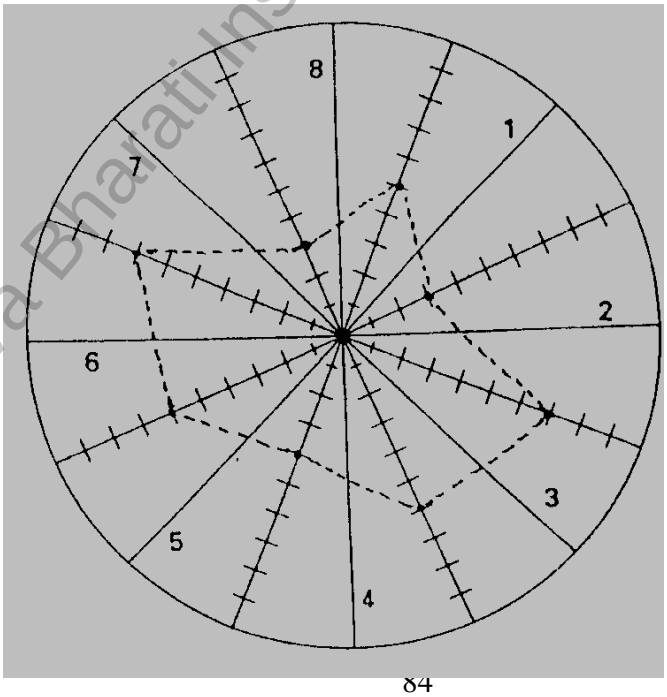

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपरोक्त जीवन चक्र का प्रति दो मास में एक बार मूल्यांकन करें। अब आप सभी क्षेत्रों के अंकों का अंकन जीवन चक्र में करें। जैसे चित्र में दिखाया गया है। क्या इस प्रकार के चक्र से जीवनरथ सहजता से चल सकता है। इस चक्र से आपको अपनी प्रगति एवं संतुलन का बोध होता रहेगा। यह भी पता चलेगा कि किस क्षेत्र पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न

1. मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के क्या–क्या लक्षण हैं?
2. अपने जीवन का मूल्यांकन किन–किन बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है? समझाइये।

8.4.0 उन्नत व्यक्तित्व और चारित्रिक विकास

उन्नत व्यक्तित्व या चरित्रनिष्ठ व्यक्तित्व कैसा होना चाहिए? उसके लक्षण क्या हो सकते है? इसका भारतीय चिन्तन में गहन विचार हुआ है और उसके उपायों पर भी सफल चर्चा की गई है। इसी प्रकार पाश्चात्य मनोविज्ञान में भी मैसलो ने 'आत्म–सिद्ध' व्यक्तित्व पर विचार किया है एवं उसके लक्षण बताये हैं। ये लक्षण परिपक्व व्यक्ति के लक्षण हैं। अन्य मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत कम होती है। फिर भी ये लक्षण परिपक्व व्यक्ति या उसके अन्तरंग स्वरूप को जानने के लिए प्रेरित करते हैं। यह भी अनुभूति कराते हैं कि किस प्रकार व्यक्ति अपने को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ अनुभव कर सकता है।

8.4.1 आत्म–सिद्ध व्यक्तित्व एवं उसके लक्षण

अमेरिका के अब्राहम एच. मैस्लो (1908 से 1970) ने व्यक्तित्व के सर्वांगिक स्वरूप को स्पष्ट करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने व्यक्तित्व के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए अन्तरंग स्वरूप पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार व्यक्तित्व का अन्तरतम बीज मूलतः स्थायी, अपरिवर्तनशील, सूक्ष्म और कोमल होता है। ***व्यक्ति का अन्तरंग व्यक्तित्व जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से प्रभावित होकर विकसित होता है। लेकिन जब कभी असामान्य परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं और व्यक्ति को ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जिनका समाधान करने में वह असमर्थ है तब व्यक्तित्व संबंधी रोग उत्पन्न होने की संभावना उपस्थित होती है।***

मैस्लो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने अन्तरंग को जानने का प्रयास करे। उन्होंने इसमें विद्यालय की उत्तम भूमिका मानी है। विद्यालय में छात्रों को अपनी **स्वतंत्रता को पहचानने, अपनी रूचियों के अनुसार व्यवसाय खोजने और उत्तम मूल्यों को समझने का उत्तम अवसर मिलता है।** जो छात्र इस प्रकार के अवसर को पाकर प्रयास करते हैं उनमें **आत्मसिद्धि** का विकास होता है। दूसरे शब्दों में उनमें **स्वस्थ व्यक्तित्व** का विकास होता है।

मैस्लो के व्यक्तित्व सिद्धान्त की एक मुख्य विशेषता यह है कि उन्होंने इस सिद्धान्त को स्वस्थ व्यक्तियों के अध्ययन पर विकसित किया है। आत्म–सिद्ध व्यक्तियों की विशेषताओं को जानने के लिए उन्होंने अनेक महापुरुषों के व्यक्तित्व संबंधी गुणों और विशेषताओं का अध्ययन और विश्लेषण किया है। जैसे अब्राहम लिंकन, जेफरसन, व्हाइट मेन, बीथोवन, रूजवेल्ट, आइन्सटीन आदि। इसके आधार पर उन्होंने आत्म–सिद्ध व्यक्ति के निम्नांकित लक्षण बताते हुए कहा है कि –

1. वे अपने जीवन की वास्तविकता और यथार्थतता की ओर उन्मुख होते हैं। उनका दर्शन या नजरिया जीवन के वास्तविक स्परूप पर आधारित होता है। वे पूर्वाग्रह और आकांक्षाओं से मुक्त होते हैं।
2. वे स्वयं को, प्रकृति को और अन्य व्यक्तियों को पूर्णतः स्वीकार करते हैं। उनका सम्मान करते हैं। अतः वे मिलनसार व सबसे मधुर संबंध रखने वाले होते हैं।
3. वे लोग सहज, सरल व स्वाभाविक होते हैं। बनावट से दूर रहते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. वे अपना व्यवहार समस्या को केन्द्र में रखकर करते हैं, न कि स्वयं को केन्द्र में रख कर या मुख्यता देकर। फलतः वे निष्पक्ष होकर समस्या का समाधान ढंढ लेते हैं।
5. वे अनासक्त और एकान्तप्रिय होते हैं।
6. वे स्वतंत्रता और स्वायत्तता को पसन्द करते हैं।
7. वे घटनाओं और अन्य लोगों को नवीन दृष्टि से देखते हैं। अर्थात् उनका देखने का दृष्टिकोण विलक्षण और नया होता है।
8. वे अलौकिक शक्ति एवं रहस्यवादी अनुभूतियों से सम्पन्न होते हैं। उनका आत्मविश्वास सुदृढ़ होता है। वे साहसी एवं निर्णायक होते हैं। उनकी दृष्टि अत्यन्त व्यापक, भावना में जीव मात्र के प्रति दया भाव तथा कण–कण में एक परमतत्त्व की अनुभूति होती है। मैसलो ने इसे शीर्ष अनुभूतियां (Peak experience) कहा है।
9. वे मानवता से विशेष प्यार करते हैं। मानव सहज त्रुटियों का घर होता है। इसके बावजूद भी उनमें मानवतावादी विचारों एवं सामाजिक अभिरूचि की प्रधानता होती है।
10. वे सबके साथ आत्मीय संबंध एवं सहानुभूति रखते हैं। उनके घनिष्ठ संबंध कुछ ही लोगों के साथ होते हैं।
11. वे प्रजातान्त्रिक मूल्यों और अभिवृत्तियों को अधिक महत्त्व देते हैं। अतः वे किसी के अधिकारों का हनन नहीं करते हैं।
12. वे साध्य व साधन को समान महत्त्व देते हैं। अर्थात् वे किसी भी कार्य की सफलता सिद्धान्तों के आधार पर ही चाहते हैं। सिद्धान्तहीन होकर नहीं।
13. वे दार्शनिक, हंसमुख व विनोदी होते हैं।
14. वे सृजनशील होते हैं।

8.4.2 मनोविज्ञान और चरित्र

मनोविज्ञान में जो चरित्र शब्द का अर्थ है वही उन्नत व्यक्तित्व को दर्शाता है। परन्तु साहित्यिक जगत् में प्रयुक्त पात्र के चरित्र और व्यक्तित्व को एक समझा जाता है। अतः आम लोग कभी–कभी व्यक्तित्व को चरित्र और चरित्र को व्यक्तित्व समझ लेते हैं। मनोविज्ञान में व्यक्तित्व और चरित्र एक–दूसरे के पर्यायवाची नहीं हैं। उचित–अनुचित की भावना, आज्ञापालन, ईमानदारी, क्षमा, दया, सत्यवादिता, भक्ति, निष्पक्षता, आत्म–नियंत्रण, विश्वसनीयता और उत्तरदायित्व की भावना आदि सामाजिक और नैतिक मूल्यों के योग को चरित्र कहते हैं। जो व्यक्ति के व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष है। मनोवैज्ञानिक रूप से चरित्र आदतों और स्थायी भावों और आदर्शों का वह समन्वय है जिसकी सहायता से व्यक्ति की क्रियाएं स्थायी और भविष्य कथन योग्य बनती है।[1] चरित्र में एक नैतिक स्तर होता है जिसमें मूल्यों के सम्बन्ध में निर्णय होते हैं। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि मनोविज्ञान में चरित्र शब्द व्यक्तित्व के उन्नत स्वरूप का द्योतक है।

8.4.3 चरित्र और आचार्यश्री महाप्रज्ञ

व्यक्ति के व्यक्तित्व में अच्छाई और बुराई का संगम होता है। वह अनेक बार व्यक्तित्व को उन्नत करना चाहता है किन्तु असफल हो जाता है। क्यों ? जीवन–विज्ञान प्रणेता आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ अतीत का भण्डार होता है। जब तक उसका परिमार्जन और परिष्कार नहीं हो जाता तब तक व्यक्ति जानता हुआ भी अनजान बना रहेगा।[2] अतीत के परिमार्जन के लिए अपने व्यक्तित्व को समझना, अपनी प्रकृति और चरित्र को समझना बहुत जरूरी है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने यहां चरित्र शब्द का प्रयोग व्यक्तित्व के अर्थ में ही किया है। उनके अनुसार मनुष्य अनेक चरित्र वाला है। उसके छहः प्रकार होते हैं –

1. **रागात्मक चरित्र –** इस चरित्र वाले व्यक्ति को आसक्ति और राग अच्छा लगता है। वह इन्द्रिय विषयों में आसक्त रहता है। वह सौन्दर्य का पिपासु होता है। लुभावनी आकृतियों में आसक्त रहता है।

1 डॉ0 डी. एन. श्रीवास्तव, व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
2 आचार्य महाप्रज्ञ, सोया मन जग जाए, पृष्ठ 131

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **द्वेषात्मक चरित्र –** इस चरित्र वाला जहां भी जाता है वहां द्वेष ही द्वेष फैला देता है। द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और संघर्ष की दुर्भावना से भरा हुआ होता है।
3. **मोहात्मक चरित्र –** इस चरित्र वाले में आलस्य, मूढ़ता और अकर्मण्यता की प्रधानता होती है। वह कुछ करना नहीं चाहता। निरन्तर आराम, खाना, पीना और सोना.. ये उसके जीवन के मुख्य कार्य होते हैं। वह मूढ़ता में जीता है।
4. **श्रद्धात्मक चरित्र –** वह हर बात में विश्वास कर लेता है। प्रत्येक व्यक्ति की बात को मान लेता है।
5. **बुद्धयात्मक चरित्र –** वे हर बात को सोच–समझकर फिर उसे मानेंगे। उनका चरित्र जिज्ञासात्मक या ज्ञानात्मक होता है।
6. **वितर्कात्मक चरित्र –** वे हर बात में तर्क–वितर्क करते हैं। उनका चित्त व्यवस्थित नहीं रहता है। उनका संदेह कभी नहीं मिटता। तर्क–वितर्क के जाल में फंसते जाते हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं, चरित्र के आधार पर छः नहीं छह सौ विभाग किये जा सकते हैं। जितनी आकृतियां, उतनी ही प्रकृतियां और उतने ही चरित्र। अपने व्यक्तित्व को उन्नत बनाने, अपने चरित्र में परिवर्तन के लिए सबसे पहले अपने चरित्र को समझना आवश्यक है।

8.4.4 चरित्र परिवर्तन के उपाय

चरित्र परिवर्तन से तात्पर्य है नैतिक विकास या जीवन में मूल्यों के विकास से है। हम अपने व्यक्तित्व को रूपान्तरिक कर उन्नत बना सकते हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने उन्नत व्यक्तित्व के विकास के लिए कुछ उपाय सुझाये हैं। वे निम्नलिखित हैं –

1. व्यक्ति सबसे पहले अपने व्यक्तित्व या प्रकृति को समझें। जैसे कि उसका व्यक्तित्व राग प्रधान हैं या द्वेष प्रधान। दोनों के रूपान्तरण के लिए भिन्न–भिन्न आलम्बन होंगे। ***द्वेषात्मक प्रकृति वाले के लिए ज्योति केन्द्र की साधना और रागात्मक प्रकृति वाले के लिए आनन्द केन्द्र की साधना लम्बे समय तक करना अत्यधिक लाभप्रद होता है।***
2. दृढ़ विश्वास हो कि किसी भी प्रकृति को प्रयोग और सिद्धान्त द्वारा बदला जा सकता है।
3. आज समाज और व्यक्ति में धन का स्तर आवश्यकता मात्र न होकर आसक्ति बन गया है। आवश्यकता पूर्ति समस्या नहीं है। वास्तव में आसक्ति समस्या है। अनासक्त व्यक्तित्व या व्यक्तित्व रूपान्तरण के लिए धन की आसक्ति मिटाने की जरूरत है। अध्यात्म का दृष्टिकोण, धर्म की आराधना या ध्यान – ये ही धन की आसक्ति को तोड़ सकते हैं। ये शक्तिशाली उपाय हैं।
4. आसक्ति से वही व्यक्ति मुक्त हो सकता है जिसमें आसक्ति से मुक्त होने की प्रबल भावना है। चाह पैदा हो जाने पर व्यक्ति धर्म और ध्यान को साधन बनाकर रूपान्तरण घटित कर सकता है। ध्यान या धर्म से जबरन किसी को नहीं बदला जा सकता। ध्यान दण्ड और कानून नहीं है जिसका व्यक्ति को पालन करना ही पड़े। रूपान्तरण व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है।
5. भावना के साथ–साथ उपाय का ज्ञान होना चाहिए। उपाय की खोज करना चाहिए। ध्यान उपाय है। पर कैसा ध्यान? इसका विवेक अपेक्षित है। सबके लिए एक ही प्रकार का ध्यान कारगर नहीं होता है। क्रोध को मिटाया जा सकता है, पर हर प्रकार के ध्यान से वह नहीं मिटता। यह जानना जरूरी होता है कि शरीर के किस बिन्दु पर कैसा ध्यान करने से वह मिटता है। जैसे क्रोध को बदलना है तो ललाट पर ध्यान करना होगा। इसी प्रकार विशुद्धि केन्द्र और आनन्द केन्द्र पर ध्यान करने से कामवासना पर नियंत्रण किया जा सकता है।
6. धन के प्रति आसक्ति तोड़ने के लिए सही धारणा बने कि ''**धन ही सब कुछ नहीं है।**'' इसे अनुप्रेक्षा के द्वारा पुष्ट किया जाये। जीवन के दो महत्त्पूर्ण घटक हैं – बुद्धि और स्वास्थ्य। जिनके पास धन का अंबार है पर बुद्धि और स्वस्थता नहीं है तो वह धन उसके लिए शत्रु बन जायेगा। वे उस धन का उपभोग नहीं कर पाएंगे। मनोबल टूट जायेगा। वे केवल धन के नौकर मात्र रहेंगे, स्वामी कभी नहीं बन पाएंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. आवश्यकता और आसक्ति का भेद समझना चाहिए। आहार, शरीर और धन – ये जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक साधन है। इन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। पहले पैदा हुई आवश्यकता, उससे जन्मी प्रियता और उससे उत्पन्न हुई आसक्ति। आवश्यकता को छोड़ने का प्रश्न नहीं है। प्रश्न है आसक्ति को तोड़ने का।

8. शरीर के प्रति होने वाली आसक्ति को मिटाने का उपाय है – अशौच भावना। शरीर बाहर से सुन्दर है। चमड़ी गौरी है। रंग अच्छा है। पर भीतर रक्त है, मांस है, चर्बी है, मज्जा है, हड्डियां है और नानाविध मल हैं। दुर्गन्ध है। सड़ान ही सड़ान है। ऊपर चमड़ी न हो तो भीतर का रूप विभत्स है, डरावना है, अशुचिमय है। ऐसा सोचना अशौच भावना है। इस चिन्तन में शरीर को भीतर से भीतर देखने की प्रेरणा है। इस भावना का दृढ़ अभ्यास होने पर शरीर की आसक्ति नहीं टिकती।

9. आसक्ति को तोड़ने का एक शक्तिशाली उपाय है – श्मशान प्रतिमा। ध्यान साधक श्मशान में जाता है। जलते हुए मुर्दों को देखता है और देखता है कि चिता ठण्डी हुई, हवा आई, राख उड़ गई। इधर–उधर उसी व्यक्ति की हड्डियां बिखरी पड़ी हैं। खोपड़ी भूमि पर असहाय पड़ी है। इस प्रकार शरीर की नश्वरता से ओत–प्रोत हो जाता है। श्मशान दर्शन रागात्मक वृत्ति या आसक्ति को रूपान्तरित कर विराग की भूमि पर साधक को स्थिर कर देता है। अनासक्त व्यक्ति का निर्माण होता है।

10. परिणाम का बोध – इन्द्रिय–विषयों का अति उपभोग हानिकारक होता है। भोग आपातप्रद होते हैं। तत्काल सुख का अहसास कराते हैं पर उनका परिणाम विरस ही होता है। परिणाम का भय व्यक्ति को दुराचरण से बचाता है। ऐसा काम करोगे तो नाम पर धब्बा लग जायेगा। प्रतिष्ठा कम होने का भय, गुरु के उलाहने का भय, साथी के उपालंभ का भय, परिवार के सम्मान का भय, ये सारे भय रागात्मक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को बचाते हैं।

11. नियंत्रण – नियंत्रण के बिना रागात्मक भाव सहसा बदल नहीं पाता। आवास, भोजन, साथी – इन सबका सही चयन आवश्यक है। ***राग भाव वाला मनोज्ञ (प्रिय) भोजन पसन्द करेगा। उससे राग में वृद्धि होगी। द्वेष प्रकृति वाला अमनोज्ञ भोजन पसन्द करेगा। इससे चिड़चिड़ापन बढ़ता जायेगा। रागात्मक चरित्र वाले को कभी–कभी अमनोज्ञ भोजन और द्वेषात्मक प्रकृति वाले को मनोज्ञ भोजन देने से संतुलन बना रहता है। यह नियंत्रण आवश्यक है।***

    दूसरा नियंत्रण है – आवास का। रागात्मक प्रकृति वाले व्यक्ति के लिए नीले रंग का आवास उपयोगी होता है। द्वेषात्मक प्रकृति वाले व्यक्ति के लिए हरे रंग का आवास कारगर होता है।

    तीसरा नियंत्रण है – साथी का। अच्छा साथी मिलता है तो व्यक्ति बदल जाता है। यदि बुरे का सहवास होता है तो अद्यःपतन होता है। नियंत्रण का अर्थ बांधना नहीं है। इसका अर्थ है मनोवैज्ञानिक ढंग से स्थितियों का चयन कर या बदलकर वृत्तियों को नियंत्रित करना है।

बोध प्रश्न

1. अब्राहम एच. मैसलो ने उत्तम व्यक्तित्व के क्या–क्या लक्षण बताए हैं ?
2. आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने मुख्य छः प्रकार के चरित्र कौन–कौन से बताए हैं ?

8.5 सारांश

- आधुनिक मानव भौतिक साधनों का उपभोग करने की होड़ में लगा हुआ है। इस वैज्ञानिक युग में भौतिक सुख सुविधाएं बढ़ी है, पर स्वास्थ्य व शान्ति घटी है। अध्यात्म को जीवन में स्थान देकर ही आचार्य महाप्रज्ञजी के सपनों का वैज्ञानिक–आध्यात्मिक जीवन का निर्माण हो सकता है। अनासक्त व्यक्तित्व का सृजन हो सकता है।
- व्यक्ति को मानसिक स्वास्थ्य के लिए अनासक्ति को समझना होगा। मनुष्य की कुछ आवश्यकताएं हैं और उसके प्रति आसक्ति भी है। रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, चिकित्सा आदि आवश्यकताओं की पूर्ति स्वाभाविक है। आसक्ति समस्याएं पैदा करती है अतः उस पर आध्यात्मिक उपायों से नियंत्रण किया जाना भी एक परम आवश्यकता है। इससे ही मनुष्य का जीवन तनावमुक्त, शान्त और सुखी रह सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- जीवन को संतुलित करके बेहतर बनाया जा सकता है। अतः प्रथमतया मानसिक रूप से स्वस्थ बने रहना जरूरी है। इसके लक्षण हैं – 1. आत्म–मूल्यांकन, 2. आत्मविश्वास, 3. समायोजनशीलता, 4. जीवन लक्ष्य का चुनाव, 5. संवेगात्मक स्थिरता, 6. काम–परिपक्वता, 7. मुख्य कार्यों में संतुष्टि आदि। व्यक्ति अपने संतुलित जीवन का मूल्यांकन एक जीवन चक्र द्वारा इन तत्त्वों के आधार पर कर सकता है– 1. पारिवारिक जीवन, 2. सामाजिक जीवन, 3. वैयक्तिक जीवन, 4. स्वास्थ्य, 5. दृष्टिकोण, 6. व्यवसाय, 7. आर्थिक जीवन, 7. आध्यात्मिक जीवन।
- अमेरिका के वैज्ञानिक अब्राहम मैसलो (1908–1970) ने आत्म–सिद्ध व्यक्तित्व के 14 लक्षण बताए हैं। मैसलो के दर्पण में व्यक्ति अपने आपको देखकर भी अपना मूल्यांकन कर सकता है। जीवन को संतुलित व स्वस्थ बनाने की प्रेरणा प्राप्त कर सकता है।
- आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने व्यक्तियों को चारित्रिक दृष्टि से छः बड़े भागों में विभक्त किया है – 1. रागात्मक चरित्र, 2. द्वेषात्मक चरित्र, 3. मोहात्मक चरित्र, 4. श्रद्धात्मक चरित्र, 5. बुद्धयात्मक चरित्र, 6. वितर्कात्मक चरित्र। अनेकान्त दृष्टि से जितनी आकृतियां उतनी प्रकृतियां हो सकती हैं।
- आचार्य महाप्रज्ञजी ने व्यक्ति के परिवर्तन के लिए ग्यारह उत्तम मनोवैज्ञानिक–आध्यात्मिक उपाय सुझाए हैं। इनका प्रयोग करके व्यक्ति अपने आपको रूपान्तरित कर सकता है। इससे धरती को स्वर्ग बनाया जा सकता है।

8.6.0 अभ्यास प्रश्न

अति लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. द्वेषात्मक चरित्र वाले व्यक्ति को किस केन्द्र पर ध्याना करना चाहिए?
2. रागात्मक चरित्र वाले व्यक्ति को किस केन्द्र पर ध्यान करना चाहिए?
3. किस मनोवैज्ञानिक ने उत्तम व्यक्तित्व के बारे में गहन चिन्तन मनन किया?
4. हमें आवश्यकतानुसार धन अर्जन करना चाहिए या धन के प्रति आसक्त होकर धन संग्रह करते रहना चाहिए।
5. आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के अनुसार श्रेष्ठ जीवन कौनसा है?

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन क्यों आवश्यक है?
2. ''धन की आसक्ति के कारण और निवारण'' विषय पर दो परिच्छेद (पैराग्राफ) लिखिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने चरित्र परिवर्तन के क्या–क्या उपाय सुझाए हैं ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 3 सफल व्यक्तित्व का विकास

पाठ – 9 लक्ष्य–निर्माण और लक्ष्य–प्राप्ति

रूपरेखा

9.0.0 उद्देश्य
9.1.0 भूमिका
9.2.0 लक्ष्य का महत्त्व
9.2.1 लक्ष्य पर अनुसंधान
9.2.2 लक्ष्य विहीनता के कारण
9.2.3 सफल व्यक्तित्व
9.3.0 लक्ष्य के प्रकार
9.3.1 अन्तिम लक्ष्य
9.3.2 दीर्घकालिक लक्ष्य
9.3.3 अल्पकालिक लक्ष्य
9.3.4 तात्कालिक लक्ष्य
9.4.0 लक्ष्य का मनोविज्ञान
9.4.1 लक्ष्य निर्माण और चेतन मन
9.4.2 अल्पकालिक लक्ष्य का निर्माण
9.4.3 तात्कालिक लक्ष्य का निर्माण
9.4.4 लक्ष्य प्राप्ति और अवचेतन मन
9.5.0 अवचेतन मन से सम्पर्क
9.5.1 हमारा मस्तिष्क
9.5.2 मस्तिष्कीय तरंगे
9.5.3 दायां मस्तिष्क एवं अल्फा तरंगें।
9.5.4 अल्फा तरंगें एवं कायोत्सर्ग
9.6.0 लक्ष्य प्राप्ति और प्रेक्षाध्यान
9.6.1 अभिप्रेरणा
9.6.2 शिथिलीकरण
9.6.3 एकाग्रता
9.6.4 साक्षात्कार
9.7.0 सारांश
9.8.0 अभ्यास प्रश्न

9.0.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों !

अच्छे व्यक्तित्व का अर्थ न केवल अच्छा व्यक्ति बनना है किन्तु साथ ही साथ अपने उद्देश्यों में सफलता भी प्राप्त करना है। सफल व्यक्तित्व के विकास के लिए सही लक्ष्य का निर्माण और उसकी प्राप्ति आवश्यक है। अतः इस 'सफल व्यक्तित्व' की इकाई के 'लक्ष्य निर्माण और प्राप्ति' के पाठ से आप जान पाएंगे –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. लक्ष्य निर्माण का महत्त्व
2. लक्ष्य न बना पाने के कारण
3. सफल व्यक्तित्व का तात्पर्य
4. लक्ष्य के प्रकार
5. लक्ष्य बनाने और प्राप्त करने का मनोविज्ञान
6. अवचेतन मन से सम्पर्क की प्रक्रिया
7. प्रेक्षाध्यान द्वारा लक्ष्य प्राप्ति की प्रक्रिया में योगदान

9.1.0 भूमिका

अर्जुन की दृष्टि लक्ष्य पर लगी हुई थी। वह सफल हो गया, अन्य सभी असफल हो गये। लक्ष्य उसी को प्राप्त होता है जो लक्ष्य का निर्माण करता है। उसको प्राप्त करने में पूरी शक्ति को वहीं केन्द्रित कर देता है। लक्ष्य–निर्धारित हो जाने पर कठिन से कठिन परिस्थिति में भी मार्ग मिल जाता है और विपरीत परिस्थितियों से लड़ने की क्षमता आ जाती है। विपरीत परिस्थितियां व्यक्ति को और मजबूत बना देती है।

वह पथ क्या ? पथिक परीक्षा क्या ?
जिस पथ में बिखरे शूल न हो।
नाविक की धैर्य परीक्षा क्या ?
जो धाराएं प्रतिकूल न हो।।

प्रभावशाली व्यक्तित्व विकास के लिए तीन महत्वपूर्ण तथ्यों पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है –

1. **लक्ष्य–निर्माण –** अपनी अनेक इच्छाओं, आकांक्षाओं, भावनाओं को पहचान कर उनमें से एक का चयन करना एवं उससे संकल्पित होना।
2. **क्षमताओं की पहचान, विकास व नियोजन –** अपनी क्षमताओं को पहचान कर उनका निरन्तर विकास करना और उनका लक्ष्य–प्राप्ति में उपयोग करना।
3. **योगदान –** किसी भी क्षेत्र में जैसे – आध्यात्मिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि क्षेत्रों में अपना योगदान देना।

कोई भी व्यक्ति ऐसी बस या ट्रेन में यात्रा नहीं करना चाहेगा जिसकी मंजिल का पता नहीं हो किन्तु आज अधिकतर व्यक्ति बिना मंजिल के जीवन यात्रा कर रहे हैं। जीवन जोकरों का खेल नहीं है जिसे मनुष्य मौन होकर भाग्य भरोसे कुछ होते हुए देखता रहे। **जीवन को सार्थक बनाने के लिए सतत पुरुषार्थ और उद्देश्य की खोज आवश्यक है।** जीवन में उद्देश्य की खोज ही जीवन की सबसे बड़ी चुनौती है। बहुत कम व्यक्ति जीवन में उद्देश्य की खोज कर पाते हैं। अधिकांश व्यक्ति अपने जीवन का मूल्यांकन नहीं कर पाते हैं। व्यक्ति अपने जीवन में उद्देश्य को जितना जल्दी खोज ले उतना ही अच्छा है।

9.2.0 लक्ष्य का महत्त्व

हजारों वर्षों से भारतीय संस्कृति में जीवन–उद्देश्यों पर गहन चिन्तन मनन होता रहा है। उसी के अनुरूप जीवन–दृष्टि और जीवनशैली का प्रतिपादन हुआ है। ***यदि पवित्र उद्देश्य और स्पष्ट दृष्टिकोण जीवन का मार्ग दर्शन नहीं करते हैं तो मिथ्या स्वप्न और ख्याली पुलाव ही जीवन के मार्ग दर्शक बन जायेंगे।*** यदि जीवन रूपी खेत में सार्थक मूल्यवान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

फसल सलक्ष्य नहीं बोई जाती है तो निरर्थक और मूल्यहीन घास–फूस और दुःखद कांटे स्वतः पैदा हो जायेंगे। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति सलक्ष्य प्रयत्न करे।

एक बार यदि जीवन का उद्देश्य और नैतिक मूल्य स्पष्ट हो जाये तो वैयक्तिक स्वार्थ और सामाजिक दायित्व के बीच होने वाले आन्तरिक संघर्ष में एक **नैतिक संतुलन** आ जाता है। व्यक्ति में **जागरूकता** आ जाती है कि कब उसे दृढ़ रहना है एवं कब उसे लचीला रह कर सामञ्जस्य स्थापित करना है। व्यक्ति **दूरदर्शी** बन जाता है। छोटे, तुच्छ और त्वरित लाभ के लिए गलत निर्णय और आकर्षण से बच जाता है। सही और दूरगामी निर्णय लेने की क्षमता आ जाती है। स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ की भेद बुद्धि स्पष्ट हो जाती है।

9.2.1 लक्ष्य पर अनुसंधान

येल विश्वविद्यालय में (1953) एक अनुसंधान किया गया। अन्तिम वर्ष के विद्यार्थियों से साक्षात्कार लिया गया। विश्वविद्यालय, शिक्षा, शिक्षक आदि से संबंधित अनेक प्रश्न पूछे गये। उन्हें एक प्रश्नावली भी दी गई। इस प्रश्नावली में उनके जीवन से संबंधित प्रश्न भी थे। उसमें एक प्रश्न यह भी था कि 'क्या आपने अपना कोई लक्ष्य बनाया है?' इस प्रश्न का 'हाँ' में उत्तर केवल 10 प्रतिशत विद्यार्थियों ने दिया। एक दूसरा प्रश्न यह भी था कि क्या आपने अपने लक्ष्य को लिखा भी है ? केवल चार प्रतिशत व्यक्तियों ने उसका उत्तर 'हाँ' में दिया।

20 वर्ष बाद, 1973 में पुनः उसी प्रकार के अनुसंधान की पुनरावृत्ति उस विश्वविद्यालय में करने की तैयारी हो रही थी। उनमें से एक अधिकारी ने प्रश्न किया कि बीस साल पूर्व जिन छात्रों ने विश्वविद्यालय को छोड़ा है, उनका जीवन स्तर कैसा है? इसका भी हमें अनुसंधान करना चाहिए। इस बात पर सब सहमत हो गये। कुछ व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। अधिकांश व्यक्तियों का पता लगा लिया गया।

यह जानकर आश्चर्य हुआ कि जिन चार प्रतिशत व्यक्तियों ने अपने लक्ष्य को लिखा था वे सफलता की दृष्टि से 96 प्रतिशत व्यक्तियों से आगे थे। ***उनका जीवन संतुलित था। उनकी स्वस्थता, सामाजिकता, परस्परता शेष 96 प्रतिशत से श्रेष्ठ थी। उनकी आर्थिक सुदृढ़ता भी शेष लोगों से अच्छी थी।***

वस्तुतः बहुत कम व्यक्ति लक्ष्य बना पाते हैं। लक्ष्य प्राप्ति के मानवीय रहस्य को न समझने के कारण लक्ष्य बनाने और उसे प्राप्त करने में उत्साह नहीं दिखाई देता है। लक्ष्य प्राप्ति के रहस्य को समझ लिया जाये तो लक्ष्य बनाना और उसे प्राप्त करना आसान हो जाता है।

9.2.2 लक्ष्य विहीनता के कारण

लक्ष्य न बना पाने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं –

1. **निराशावादी दृष्टिकोण** :– इस दृष्टिकोण के कारण व्यक्ति संभावनाओं को न देखकर केवल बाधाओं को ही देखता रहता है।

2. **असफलता का भय** :– अनेक व्यक्ति असफलता के भय से ग्रसित होते हैं। वे सोचते हैं कि यदि कोई निर्णय लूंगा, पूरा नहीं होगा तो लोग क्या कहेंगे? यदि निर्णय लूंगा ही नहीं तो असफल ही नहीं होऊंगा। वास्तव में यह असफलता का ही दृष्टिकोण है।

3. **इच्छाशक्ति की कमी** :– व्यक्ति में अनेक इच्छाएं घूमती रहती हैं, किन्तु कोई भी इच्छा इतनी प्रबल नहीं होती कि उसका वह चयन करके दिशा को निर्धारित कर सके। अतः वह निर्णय लेने व लक्ष्य–निर्धारण में सफल नहीं हो पाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **आत्मविश्वास की कमी** :– आत्मविश्वास व मनोबल की कमी के कारण व्यक्ति में अपने आप पर भरोसा नहीं होता है। वह अपने सामर्थ्य व योग्यता के प्रति सही दृष्टिकोण नहीं रख पाता है। अपनी क्षमता से अनजान परिस्थितियों के प्रवाह में, बहाव के अनुरूप बहता चला जाता है, स्वतन्त्र निर्णय नहीं ले पाता है।

5. **लक्ष्य का महत्त्व न समझना** :– व्यक्ति को लक्ष्य निर्माण का बोध न होने से उसके प्रति उत्साह नहीं रहता है। वर्तमान शिक्षा पद्धति द्वारा या परिवार में कभी लक्ष्य निर्माण के महत्त्व को समझाया ही नहीं जाता है। इसी का परिणाम है कि अधिकांश व्यक्ति इसके महत्त्व को जान ही नहीं पाते हैं।

6. **अज्ञान** :– अधिकांश व्यक्तियों को लक्ष्य–निर्माण और लक्ष्य प्राप्ति की प्रक्रिया का ज्ञान नहीं होता है। अतः वे लक्ष्य बनाने का साहस नहीं कर पाते हैं।

लक्ष्य विहीनता के कारणों को दूर कर लक्ष्य निर्माण की दिशा में व्यक्ति को प्रेरित किया जा सकता है। ***व्यक्ति अपने चेतन मन की तर्क शक्ति का उपयोग कर अपने लक्ष्य का निर्माण कर आगे बढ़ सकता है। एक बार लक्ष्य निर्धारण करने के बाद संकल्पशक्ति, समर्पण व पूर्ण विश्वास जुड़ जाने पर वह सशक्त आन्तरिक अभिप्रेरणा के रूप में व्यक्ति को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है।*** प्रेक्षाध्यान में इसको और अधिक पुष्ट करने के लिए उसे अवचेतन स्तर तक पहुंचाया जाता है। यदि स्पष्ट ''शब्दावली'' के रूप में लक्ष्य अवचेतन मन तक नहीं पहुंचता है तो उसकी सफलता के प्रति चेतन मन संदेह उपस्थित करता रहता है जो गति प्रगति व लक्ष्य प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा है। अतः आवश्यक है कि लक्ष्य बनाने के बाद उसे अवचेतन मन तक पहुंचाया जाये जिससे उत्साह और सक्रियता बनी रहे।

9.2.3 सफल व्यक्तित्व

सफल का शाब्दिक अर्थ है – फल सहित। लक्ष्य प्राप्ति का अर्थ है कि व्यक्ति ने जो समयबद्ध लक्ष्य बनाया वह उसे ठीक समय में प्राप्त हो जाये। अर्थात् व्यक्ति ने जीवनरूपी खेत में जो बीज बोये उसकी फसल या फल उसे सही समय पर मिल जाये। ऐसे व्यक्ति को सफल व्यक्तित्व भी कहा जाता है। सफल व्यक्तित्व विकास के लिए एक पूरी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। जैसे बीज से फसल प्राप्ति तक एक सुनिश्चित पूरी प्रक्रिया होती है – बीज का चयन, बुवाई, सिंचन, पोषण, सुरक्षा आदि अनेक चरणों से गुजरते हुए एक किसान अपने खेत को लहलहाता हुआ देखता है। वैसे ही जीवन में सफल व्यक्ति बनने के लिए लक्ष्य–निर्माण करने से लेकर लक्ष्य–प्राप्ति तक अनेक चरणों से गुजरना पड़ता है। इसका ज्ञान करना और उसकी प्रक्रियाओं को क्रियान्वित करना लक्ष्य प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

सफल व्यक्तित्व निर्माण और लक्ष्य प्राप्ति के लिए पहला चरण है – लक्ष्य का निर्माण करना। खेती के लिए किसान को सर्वप्रथम बीज का निर्धारण करना होगा क्योंकि खेत में अनेक प्रकार की खेती हो सकती है। अनेक प्रकार के बीज भी होते हैं किन्तु वर्तमान में कौनसी फसल सर्वाधिक उपयुक्त होगी यह तो निर्णय करना ही होगा। जीवन में गति प्रगति, सही दिशा, आत्मसंतुष्टि आदि का आधार व्यक्ति का लक्ष्य ही होता है। लक्ष्य–विहीन गति प्रगति नहीं है। प्रगति तो लक्ष्य की दिशा में होने वाली गति ही कहलाती है। अतः लक्ष्य–प्राप्ति का पहला चरण है – लक्ष्य का निर्माण करना।

बोध प्रश्न

1. आन्तरिक संघर्ष में नैतिक संतुलन कब आता है ?
2. हम लक्ष्य क्यों नहीं बना पाते हैं ?
3. लक्ष्य बनाने से क्या लाभ होते हैं ?

9.3.0 लक्ष्य के प्रकार

भारतीय संस्कृति मूलतः भाग्यवादी कभी नहीं रही है। इस संस्कृति में भाग्य के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी शुभ भविष्य के लिए पुरुषार्थ पर बल दिया है। पुरुषार्थ अर्थात् पुरुष के अर्थ या प्रयोजन पर गहन विचार किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पुरुष के जीवन में क्या क्या प्रयोजन होने चाहिए ? कुछ पाश्चात्य लेखकों ने जीवन के प्रयोजन या लक्ष्यों को मुख्य रूप से दो ही भागों में बांटा है – अल्पकालीन और दीर्घकालीन लक्ष्य। ***भारतीय संस्कृति की दृष्टि से विचार करने पर सम्पूर्ण जीवन के संदर्भ में लक्ष्य को चार भागों में बांटा जा सकता है – 1. अन्तिम या चरम लक्ष्य, 2. दीर्घकालिक लक्ष्य, 3. अल्पकालिक लक्ष्य, 4. तात्कालिक लक्ष्य।*** जीवन में सफलता, शान्ति व स्वास्थ्य के लिए चारों लक्ष्यों की संवादिता आवश्यक है।

9.3.1 अन्तिम/चरम लक्ष्य

यह लक्ष्य न होकर जीवन का ध्येय है। जीवन का अन्तिम ध्येय भी स्पष्ट होना चाहिए। इसके अभाव में व्यक्ति का दृष्टिकोण बहुत छोटा हो जाता है। भारतीय संस्कृति में जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष, व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास माना गया है। पुरुष का अन्तिम प्रयोजन सभी भारतीय दर्शनों के अनुसार दुःख की पूर्णतः निवृत्ति और परम शान्ति की प्राप्ति है।

9.3.2 दीर्घकालिक लक्ष्य

भारतीय विचारकों ने व्यक्ति की क्षमताओं एवं सम्पूर्ण जीवन अवस्थाओं को सामने रखते हुए चार पुरुषार्थ – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रतिपादन किया। भगवान महावीर ने जीवन का उद्देश्य समता को बताया। इसके लिए संतुलित व संयमित जीवनशैली का प्रतिपादन किया। 'तिण्णाणं तारयाणं' स्वयं के कल्याण के साथ सबके कल्याण की बात कही। ***अतः व्यक्ति अपने जीवन का उद्देश्य बनाये कि मुझे अच्छा जीवन जीते हुए मानवता की सेवा करनी है।*** संतुलित और संयमित जीवन जीना है। आचार्य श्री तुलसी ने अपने एक गीत मे इसी भावना को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है –

"सर्वांगीण व्यक्तित्व उदय हो।
लक्ष्य सामने सर्वोदय हो।।"

हम इस प्रकार जीवन को जीयें जिससे सबके विकास में सहभागी बनें। यदि व्यक्ति ने अपने जीवन का लक्ष्य सेवा बना दिया है तो वह व्यक्ति कभी निराश नहीं हो सकता क्योंकि सेवा के सैंकड़ों उपाय हैं, माध्यम हैं, साधन हैं जिनके द्वारा व्यक्ति मानवता की सेवा कर सकता है। सबके विकास में सहभागी बन सकता है। दूसरों को मेहन्दी लगाने से स्वयं के हाथ तो मेहन्दी के रंग में रंग ही जाते हैं।

9.3.3 अल्पकालिक लक्ष्य

सही कैरियर का चुनाव विद्यार्थी जीवन के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष होता है। मानवता की सेवा, शान्ति और सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास के जीवन उद्देश्य रखने वालों को भी कार्य–क्षेत्र (कैरियर) का चुनाव तो करना ही होता है। व्यक्ति मानवता की सेवा अनेक रूपों में कर सकता है। वह उसके लिए जीवन के किसी भी कार्यक्षेत्र का चयन करने में स्वतन्त्र होता है। कैरियर के चुनाव की एक व्यापक प्रक्रिया भी है। ***नौंवी कक्षा के बाद से उसका ज्ञान व उसके प्रति जागरूकता सही कैरियर के चुनाव में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।*** कैरियर चयन के कुछ महत्त्वपूर्ण चरण निम्न प्रकार से हैं –

1. स्वयं को पहचानना एवं अपने विकास की दिशा का निर्धारण कर उसके लिए तैयारी करना।
2. **अन्वेषण** – विभिन्न कार्यक्षेत्रों का सूक्ष्मता से अध्ययन करना। कुछ वांछित कैरियर विकल्पों को छांटना एवं उनके लिए आवश्यक पात्रता (शैक्षिक, व्यावहारिक, व्यावसायिक) के विषय में जानकारी प्राप्त करना।
3. **चयन** – उस कैरियर का चयन जो अपने मानदण्डों पर खरा उतरता है।
4. **कार्य योजना** – लक्ष्य को भेदने के लिए विस्तृत कार्य–योजना बनाना।
5. **योग्यताओं का विकास** – कैरियर के लिए अपेक्षित विशेष क्षमताओं को अर्जित करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. स्वयं की विशेषताओं की अच्छी तैयारी एवं उसे अच्छे ढंग से अभिव्यक्त करना।

9.3.4 तात्कालिक लक्ष्य

जीवन की किसी भी अवस्था में आने वाली चुनौतियां, दायित्व, कर्तव्य, अपेक्षाएं, आकांक्षाए आदि को निपटना या सफलता से उसको पूरा करना जीवन के तात्कालिक लक्ष्य बन जाते हैं। मान लो किसी 10वीं कक्षा पास विद्यार्थी ने अपना अल्पकालीन लक्ष्य बनाया –''मैं अगले सात वर्षों में डॉक्टर बन कर मानवता की सेवा में अपने जीवन को लगाऊंगा।'' इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी के जो कर्तव्य हैं या जिन चुनौतियों का उसे सामना करना है, वे उसके लिए तात्कालिक लक्ष्य हैं। जैसे वह विद्यार्थी यह निर्णय करता है कि ''मुझे डाक्टरी में प्रवेश हेतु 12वीं कक्षा में 90 प्रतिशत अंकों से उत्तीर्ण होना है।

इसी प्रकार जीवन के कार्यक्षेत्र में उतरने के बाद जीवन की वास्तविकताओं से सामना होने पर उससे संबंधित समस्याओं को प्रत्येक व्यक्ति को अनुभव करना पड़ता है। चाहे उसका अल्पकालीन या दीर्घकालीन लक्ष्य न भी हो। ***कुछ लोग निरन्तर सीखने एवं समस्याओं को निपटाने की क्षमता के कारण विकास करते चले जाते हैं।*** वे स्वयं आत्म–संतोष का अनुभव करते हैं एवं बड़ों को भी संतुष्ट कर पाते हैं अन्यथा उनका विकास रुक जाता है। कार्य–कौशल में गिरावट आ जाती है। जो वास्तव में ही समर्पित, जिम्मेदार एवं सफल व्यक्ति के रूप में उभरते हैं उन्हें अधिक महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियां, पद एवं प्रोत्साहन प्राप्त होते हैं। यथार्थ में सफल व्यक्ति भी वही है जो अधिक से अधिक समस्याओं को सुलझाने की क्षमता रखता हो।

बोध प्रश्न

1. दीर्घकालिक लक्ष्य क्या होना चाहिए ?
2. केरियर चयन के महत्वपूर्ण चरण कौन–कौन से हैं ?

9.4.0 लक्ष्य का मनोविज्ञान

लक्ष्य प्राप्ति की सम्पूर्ण प्रक्रिया के पीछे शक्ति–स्रोत क्या है ? शक्ति–स्रोत है चेतना का महासागर। भारतीय चिन्तन के अनुसार आत्मा अनन्त शक्ति सम्पन्न है किन्तु सबमें उसकी अभिव्यक्ति एक जैसी नहीं है।आत्मा के तीन भेद भी किये जाते हैं – बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। परमात्मा अनन्त शक्ति सम्पन्न है। अन्तरात्मा की शक्ति परमात्मा से कम है। बहिरात्मा की शक्ति सबसे कम होती है। जब व्यक्ति का सम्पर्क अन्तरात्मा से होता है तब उसकी शक्ति का असीमित विकास होता है। अतः अपने लक्ष्य को अन्तरात्मा तक पहुंचाना होगा। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मन के मुख्यतया तीन स्तर हैं– चेतन मन, अवचेतन मन और अचेतन मन। (देखें चित्र 9.1)

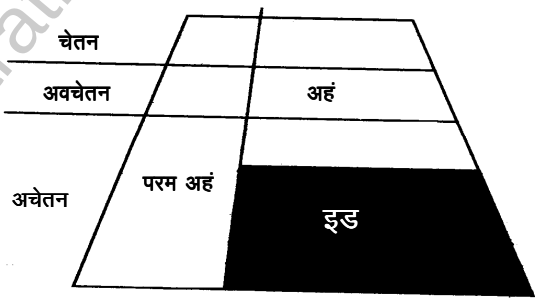

चित्र 9.1 मन के स्तर

मनोविज्ञान में मन की तुलना समुद्र में बहने वाले एक विशाल हिमखण्ड से की गई है। हिमखण्ड का ऊपरी हिस्सा जो मात्र 10 प्रतिशत बाहर दिखाई देता है उसकी तुलना चेतन मन से की गई है। हिमखण्ड का बहुत थोड़ा हिस्सा जो बाहर से पानी के भीतर दिखाई देता है उसकी तुलना अवचेतन मन से की गई है। लगभग 90 प्रतिशत भाग जो पानी के भीतर है, बाहर से दिखाई नहीं देता है उसकी तुलना अचेतन मन से की गई है। चेतन मन की शक्ति सीमित होती है और अचेतन मन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की शक्ति असीम। यदि कोई जहाज का कप्तान उस हिमखण्ड को मात्र 10 प्रतिशत समझकर उससे टकरा जाये तो पूरा जहाज नष्ट हो जाता है क्योंकि भीतर हिमखण्ड पर्वत जितना विशाल होता है। इसी प्रकार दिखने वाला चेतन मन बहुत थोड़ा

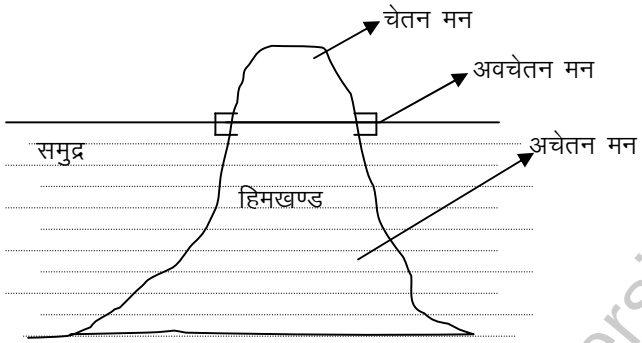

चित्र नं. 9.2 समुद्री हिमखण्ड और मन के स्तर

है। उसकी शक्ति सीमित है। नहीं दिखने वाला अचेतन बहुत विशाल है। उसकी शक्ति असीमित है। चेतन मन और अचेतन का संधि स्थल है – अवचेतन मन। अतः व्यक्ति को जो लक्ष्य प्राप्त करना है उसे भीतर अवचेतन मन की शक्ति से जोड़ना होगा जिससे वह अचेतन तक जा सके।

9.4.1 लक्ष्य निर्माण और चेतन मन

जीवन में सामर्थ्य, एकाग्रता, स्वास्थ्य, संसाधन आदि सब कुछ है किन्तु यदि लक्ष्य नहीं बनाया तो नयी विशिष्ट उपलब्धि संभव नहीं है। लक्ष्य का निर्माण करना जीवन में एक बहुत कठिन व चुनौतीपूर्ण कार्य है। यह कार्य चेतन मन का है। इसके लिए विभिन्न प्रयासों की आवश्यकता होती है। सामान्यतया व्यक्ति में अनेक प्रकार की इच्छाएं होती हैं। वे इच्छाएं व्यक्ति में चेतन मन के स्तर पर दबाव उत्पन्न करती हैं जिससे उनको पूरा किया जा सके। अतृप्त इच्छाएं असंतोष पैदा करती हैं। असंतोष, अत्यधिक दबाव और अनेक दिशागामी इच्छाएं व्यक्ति में अन्तर्द्वन्द्व, व्यक्तित्व विघटन और मनोविकारों को पैदा करते हैं। ***लक्ष्य निर्माण का अर्थ है – अपनी इच्छाओं में से कुछ अत्यावश्यक और मूल्यवान इच्छाओं को महत्त्व देते हुए उसे विकसित करने का पूर्ण प्रयत्न करना।*** शेष इच्छाओं को स्थगित कर देना, गौण कर देना, सीमित व संयमित करना या पूर्ण रूप से त्याग कर देना। इससे दबाव, असंतोष, अन्तर्द्वन्द्व कम हो जाते हैं एवं शक्ति अनावश्यक दिशा मे नष्ट होने से बच जाती है।

9.4.2 अल्पकालिक लक्ष्य का निर्माण

अनेक इच्छाओं में से एक सर्वाधिक उपयुक्त इच्छा का अल्पकालिक लक्ष्य के रूप में निर्धारण, उसकी कार्ययोजना व क्रियान्विति का सारा कार्य चेतन मन द्वारा होता है। चेतन मन इस कार्य को चिन्तन व आत्म–निरीक्षण के आधार पर करता है। लक्ष्य निर्धारण हेतु अनेक महत्पूर्ण सूत्रों में से एक सूत्र है – आई.ए.एस. (**IAS**) अर्थात् I=Interest (रुचि), A=Ability (योग्यता), S=Social demand (सामाजिक जरूरतों का अवलोकन करना व उस आधार पर निर्णय करना)। इस सूत्र को विस्तार से इस प्रकार समझा जा सकता है –

1. लक्ष्य निर्धारण के समय स्वयं की रुचि का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि रुचिकर कार्य में व्यक्ति को स्वतः आत्मसंतोष मिलता है। उसमें वह लगनपूर्वक लम्बे समय तक बिना थके प्रसन्नता से कठोर परिश्रम कर सकता है। एकाग्र रह सकता है।

2. इसके साथ लक्ष्य के अनुरूप स्वयं में उपयुक्त योग्यता भी है या नहीं ? इस पर भी विचार करना आवश्यक है। योग्यता यदि नहीं है, फिर भी उस क्षेत्र में जाना ही चाहते हैं तो फिर योग्यता का विकास करना होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. जिस लक्ष्य को पाना चाहते हैं, उसकी समाज में स्वीकार्यता या उपयोगिता कितनी है ? उसके लिए भावी अवसर कितने हैं? परिवार व समाज का सहयोग कितना है ? यह देखना भी लाभदायक रहता है। इससे हमें बाह्य प्रोत्साहन भी मिलता रहता है।

लक्ष्य निर्धारण के बाद कार्य योजना के विकास हेतु एक और महत्त्वपूर्ण सूत्र है – **SWOT** अर्थात् –

1. **Strength** (शक्ति) – स्वयं की शक्ति, सबलता अथवा गुणों का आकलन करना। उनके विकास की योजना बनाना।
2. **Weakness** (दुर्बलता) – स्वयं की दुर्बलता, कमजोरी अथवा अवगुणों का आकलन करना। उनके प्रति जागरूक रह कर उनको कम करने के उपाय करना।
3. **Opportunity** (संभावना) – सामने आ रहे अवसर और संभावनाओं को देखना। उनको साकार करने के लिए कठोर परिश्रम करना।
4. **Threat** – संभावनाओं को यथार्थ में बदलते समय आने वाली चुनौतियों और खतरों को देखना एवं इनका साहस के साथ सामना करना।

विशेषज्ञों द्वारा इन चारों के बलाबल का विवेक करते हुए लक्ष्य को निर्धारित करने की सलाह दी जाती है। लक्ष्य निर्धारित करने के बाद बार–बार नहीं बदलना चाहिए। बार–बार बदलने से पीछे का पूरा परिश्रम और अनुभव व्यर्थ हो जाता है। अतः एक दिशा को बनाये रखना आवश्यक है।

9.4.3 तात्कालिक लक्ष्य का निर्माण

हम आगामी एक वर्ष में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्या परिवर्तन चाहते हैं? हमारी क्या अभिलाषाएं एवं आकांक्षाएं हैं? उनका वार्षिक एवं त्रैमासिक कार्यक्रम बनाएं। यदि और लम्बा बनाना चाहते हैं तो वह भी आप बना सकते हैं। नीचे दी गई तालिका के अनुसार अपने त्रैमासिक एवं वार्षिक लक्ष्यों को निर्धारित करें।

तालिका 9.1

जीवन क्षेत्र	त्रैमासिक लक्ष्य	वार्षिक लक्ष्य
पारिवारिक सामाजिक वैयक्तिक विकास स्वास्थ्य दृष्टिकोण व्यवसाय आर्थिक आध्यात्मिक		

कार्य योजना – अपने वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कार्य योजना तैयार करें। इसस लक्ष्य प्राप्ति हेतु शक्तिशाली अभिप्रेरणा जागृत होगी। कमजोर इच्छाशक्ति व अभिप्रेरणा से लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। प्रत्येक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कार्ययोजना तैयार करें।

प्रत्येक लक्ष्य हेतु अलग–अलग पृष्ठ पर उसका स्पष्ट व निश्चित वर्णन करें। उसका संकल्प करें कि मुझे इसे प्राप्त करना है। इससे अवचेतन मन को आपकी इच्छा को पूरा करने में आसानी होगी। अस्पष्ट व अनिश्चित लक्ष्य होने से उसको

क्षेत्र ..... दिनांक ..... त्रैमासिक लक्ष्य वार्षिक लक्ष्य
संकल्प .....
वर्णन .....

रेखाचित्र / चित्र

कार्यक्रम दिनांक ..... उपलब्धि दिनांक ..... हस्ताक्षर .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पूरा करना आसान नहीं होता है। उस लक्ष्य का बनाना और न बनाना एक जैसा हो जाता है। लक्ष्य के वर्णन और संकल्प के साथ आपके मस्तिष्क में यदि उसका रेखाचित्र या कोई चित्र हो तो उसको भी आप कार्ययोजना के साथ जोड़ दें। इससे अवचेतन मन तेजी से उसकी प्राप्ति में जुट सकेगा। आप कब तक चाहते हैं उस उपलब्धि की दिनांक भी उस पृष्ठ के अन्तिम में लिख देवें। फिर अपने हस्ताक्षर भी करें।

पनुरावलोकन – प्रतिदिन आदत बनाएं। सोने से पूर्व अपने कार्यक्रम को देखें, ध्यान करें। अपने मानसिक चक्षु के द्वारा अपने भीतर उसका साक्षात्कार करें। एक–एक करके सभी कार्यक्रम पृष्ठों को देखें। प्रतिदिन की आदत बनाएं। इससे आपके जीवन में स्वतः अनुकूल व्यक्ति, परिस्थितियां व अवसर आते चले जाएंगे। हमारा अवचेतन मन बेतार का संप्रेषक (वायर लेस ट्रांसमीटर) है जो स्वतः अपना काम करता है। हमें नियमित रूप से उस तक सम्पर्क बनाए रखना चाहिए।

9.4.4 लक्ष्य प्राप्ति और अवचेतन मन

लक्ष्य निर्धारित करने के बाद उसे अवचेतन मन से जोड़ देना चाहिए अन्यथा उसी एक दिशा को बनाये रखना कठिन होता है। कठिन परिस्थितियों में चेतन मन लक्ष्य के बारे में चिन्तन के साथ–साथ उसकी सफलता में संदेह भी करने लगता है। जिस प्रकार खेती के लिए बीज का निर्णय करने के बाद यदि उसे धरती के भीतर आरोपित नहीं किया जाता है, वे बीज केवल धरती के ऊपर ही पड़े रहते हैं तो पक्षी उन बीजों को उगने से पहले ही खा जाते हैं। उसी प्रकार संदेह भी लक्ष्य को पूरा होने से पहले ही समाप्त कर देता है। संदेह से बचाने के लिए लक्ष्य को अवचेतन मन तक पहुंचाना बहुत जरूरी है।

लक्ष्य अवचेतन मन में तीन प्रकार से पहुंच सकता है –

1. नींद लेकर उठते समय व्यक्ति अचेतन मन की अवस्था से चेतन मन की ओर आता है। इस प्रकार नींद से ठीक पूर्व व्यक्ति जागृत चेतन मन की अवस्था से अचेतन मन की अवस्था, गहन नींद की ओर जाने वाला होता है। इन दोनों ही अवस्थाओं में व्यक्ति का सम्पर्क कुछ क्षणों के लिए अवचेतन मन से रहता है। उस समय अर्थात् सोने से पहले एवं प्रातः जागने के बाद अपने लक्ष्य की शब्दावली को मन ही मन दोहराने से वह अवचेतन मन में चला जाता है।

2. किसी भी बात का अभ्यास बार–बार करते रहने से वह बात चेतन मन से अवचेतन मन में चली जाती है। जैसे कोई नया व्यक्ति सचेतन होकर पूरी जागरुकता से पहली बार साइकल चलाना सीखता है तो कभी हेण्डल इधर उधर हो जाता है तो कभी पैण्डल छूट जाता है या ब्रेक लगाना भूल जाता है किन्तु कुछ महिनों के अभ्यास के बाद वही सारा कार्य अवचेतन मन अपने नियंत्रण में ले लेता है। अब वही व्यक्ति हाथ छोड़कर बात करते–करते भी साइकल चला लेता है। इस प्रकार बार–बार अभ्यास करने से वह बात अवचेतन मन में चली जाती है एवं वह कार्य सहज रूप से होने लग जाता है।

3. ध्यान के द्वारा भी बात को अवचेतन मन में पहुंचाया जा सकता है। यह बहुत ही कारगर एवं शक्तिशाली प्रक्रिया है।

अवचेतन मन लक्ष्य को पाने के लिए तीन प्रकार से सहयोग देता है। अन्तःप्रेरणा, शक्ति व गतिशीलता। लक्ष्य को एक बार अवचेतन मन में पहुंचा दिया जाता है तो अवचेतन मन उस लक्ष्य को पूरा करने के लिए स्वतः व्यक्ति को प्रेरित करता है। जितने भी बड़े एवं महान् व्यक्ति हुए हैं उनके भीतर अवचेतन मन में कुछ करने की तीव्र अन्तःप्रेरणा होती है। वह अन्तःप्रेरणा व्यक्ति को तब तक शान्त नहीं बैठने देती जब तक लक्ष्य पूरा न हो जाये। इससे व्यक्ति के पास लक्ष्य को पाने के लिए शक्ति, साहस, आत्मविश्वास का अखूट खजाना उपलब्ध रहता है। गतिशीलता बनी रहती है। वह कभी भी हार मान कर रुकता नहीं है। साहस और धैर्य के साथ चलता रहता है। हर समस्या के समाधान का बोध होता रहता है।

बोध प्रश्न

---

1. लक्ष्य प्राप्ति में **I A S** का अर्थ समझाइये ।

2. अवचेतन मन और लक्ष्य प्राप्ति पर एक टिप्पणी लिखिये ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9.5.0 अवचेतन मन से सम्पर्क

लक्ष्य को अवचेतन मन से जोड़ने के लिए उससे सम्पर्क करना होगा। अवचेतन मन से सम्पर्क कैसे और कब करें ? इसे समझने के लिए संक्षेप में मस्तिष्क और उसकी तरंगों के बारे में जानना होगा।

9.5.1 हमारा मस्तिष्क

यह दो भागों में विभक्त है – दायां मस्तिष्कीय गोलार्द्ध और बायां मस्तिष्कीय गोलार्द्ध (देखें चित्र 9.3)।

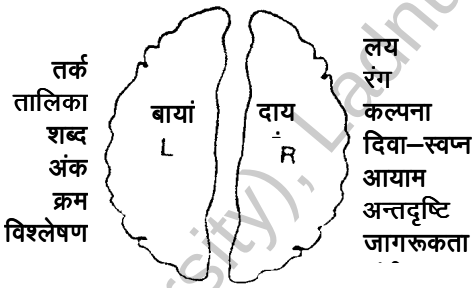

चित्र 9.3 मस्तिष्क के गोलार्द्ध

बायां मस्तिष्कीय गोलार्द्ध उन क्रियाओं में विशेष सहयोगी बनता है या दायित्व निभाता है जो भाषा, तर्क एवं गणित से संबंधित है। दायां मस्तिष्क कल्पनाशीलता, कला, सृजनात्मक शक्ति आदि से संबंधित कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाता है। यह भी माना जाता है कि दायां मस्तिष्क हमारे अवचेतन और अचेतन की शक्तियों से जुड़ा हुआ है। ***दाएं मस्तिष्क को सक्रिय करने से हमारा सम्पर्क अवचेतन स्तर से हो जाता है। प्रश्न है कि दाएं मस्तिष्क को सक्रिय कैसे करें?***

9.5.2 मस्तिष्कीय तरंगे एवं अवचेतन मन

आधुनिक शोधों ने यह प्रमाणित किया है कि हमारा मस्तिष्क भी तरंगित होता है, प्रकम्पित होता है। इन प्रकम्पनों को प्रति सैकेण्ड में होने वाली आवृत्ति से मापा जाता है। पूर्ण जागृति, इन्द्रियों की सक्रियता एवं चिन्तन की अवस्था में मस्तिष्क के तन्तु एक सैकेण्ड में 13 से 20 बार प्रकम्पित होते हैं। वैज्ञानिक इसे मस्तिष्क का बीटा स्तर कहते हैं। जब निद्रा में शिथिलता एवं विश्राम की अवस्था होती है तो मस्तिष्क मंद गति से प्रकम्पित होता है। उस समय प्रकम्पन की 8 से 12 आवृत्ति प्रति सैकेण्ड रहती है। इसे अल्फा स्तर कहते हैं। इससे भी मंद 4 से 7 आवृत्ति प्रति सैकेण्ड रहती है, उसे थीटा स्तर कहा जाता है। और अधिक मंद 1 से 4 आवृत्ति डेल्टा स्तर कहलाती है।

9.5.3 दायां मस्तिष्क एवं अल्फा तरंगें

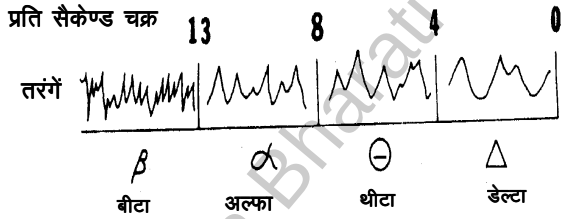

चित्र 9.4 मानसिक तरंगे

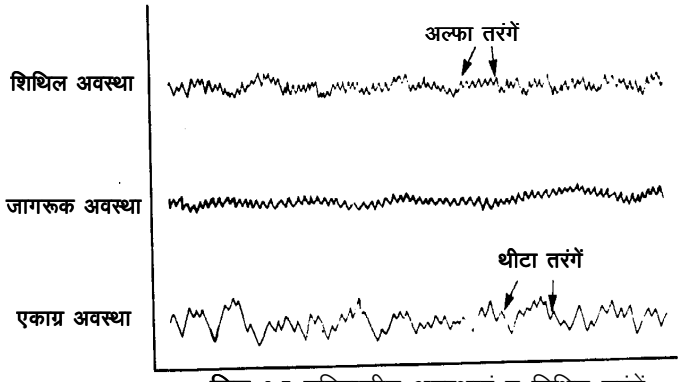

चित्र 9.5 मस्तिष्कीय अवस्थाएं व विभिन्न तरंगें

जब हमारा मस्तिष्क बीटा स्तर पर रहता है तो सामान्यतया हम मस्तिष्क के बायें भाग का अधिक उपयोग करते हैं। मस्तिष्क के अल्फा अवस्था में, दायें मस्तिष्क का अधिक उपयोग होता है। इस स्तर पर कल्पना शक्ति व साक्षात्कार करने की शक्ति जागृत रहती है। यह सिद्ध हो गया है कि दायें मस्तिष्क का सीधा संबंध हमारे अवचेतन के साथ है। ***यदि हमें अवचेतन व अचेतन की शक्तियों का उपयोग करना है तो हमें सप्रयत्न मस्तिष्क के अल्फा स्तर को सक्रिय करना सीखना होगा तथा हमें कल्पना शक्ति और साक्षात्कार करने की शक्ति का विकास करना होगा।***

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9.5.4 अल्फा तरंगें एवं कायोत्सर्ग

मस्तिष्क के अल्फा स्तर को सक्रिय करने के लिए कायोत्सर्ग बहुत महत्पूर्ण है। अनुसंधानों से यह पाया गया है कि कायोत्सर्ग में व्यक्ति के मस्तिष्क में अल्फा तरंगे सक्रिय हो जाती है। इस स्थिति में दायां मस्तिष्क भी सक्रिय हो जाता है। हमारा सम्पर्क अवचेतन स्तर से हो जाता है। इस स्तर का उपयोग हम लक्ष्य–प्राप्ति में कर सकते हैं। इस अवस्था में ***लक्ष्य की शब्दावली पर एकाग्र होकर मानसिक उच्चारण व साक्षात्कार करने से वह अचेतन मन में चला जायेगा।*** हमारे लक्ष्य के साथ अचेतन की शक्ति जुड़ जायेगी। एक दिन वह लक्ष्य साकार बन जायेगा।

बोध प्रश्न

1. दाएं एवं बाएं मस्तिष्क में किन–किन विषयों का विश्लेषण होता है ?
2. अल्फा तरंगे एवं कायोत्सर्ग पर एक परिच्छेद अपने शब्दों में लिखिये।

9.6.0 लक्ष्य प्राप्ति और प्रेक्षाध्यान

प्रेक्षाध्यान सर्वांगीण विकास की परिपूर्ण ध्यान पद्धति है। इस ध्यान पद्धति में लक्ष्य–प्राप्ति हेतु चार चरण हैं – ***अभिप्रेरणा, शिथिलीकरण, एकाग्रता एवं साक्षात्कार।*** लक्ष्य अल्पकालिक हो या दीर्घकालिक, इन चार चरणों के प्रयोग से उसे प्राप्त किया जा सकता है। इसके माध्यम से हम स्वास्थ्य को सुधार सकते हैं, स्मृति का विकास कर सकते हैं, पारस्परिक संबंधों को मधुर बना सकते हैं, जीवन में सौहार्द, वात्सल्य, प्रसन्नता, आनन्द और आत्म–साक्षात्कार भी प्राप्त कर सकते हैं।

9.6.1 अभिप्रेरणा

सर्वप्रथम लक्ष्य–निर्माण की सशक्त प्रेरणा होनी चाहिए। प्रबल इच्छाशक्ति होनी चाहिए। सही दृष्टि और आत्म–विश्वास लक्ष्य की दिशा में गति प्रदान करते हैं। अतः आन्तरिक योग्यता और क्षमताओं को जानकर इच्छाशक्ति को प्रबल करना होगा। उसके बाद ''स्पष्ट शब्दावली'' में लक्ष्य को बनाना होगा।

9.6.2 शिथिलीकरण

अवचेतन से सम्पर्क करने के लिए आवश्यक है कि हम पूर्णतया तनाव से मुक्त हों। मस्तिष्क के अल्फा स्तर एवं दायें भाग को सक्रिय कर सकें। कायोत्सर्ग के दैनिक प्रयोग से शिथिलीकरण को सिद्ध किया जा सकता है। इसमें प्रत्येक अवयव का अनुभव करके सुझावों के द्वारा शिथिलता का अभ्यास किया जाता है।

9.6.3 एकाग्रता

कल्पना शक्ति को उपयोग में लेने का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है– एकाग्रता। एकाग्रता का अर्थ है – जो काम हाथ में है उसी में चित्त को लगाना। प्रेक्षाध्यान में श्वास–प्रेक्षा एकाग्रता को बढ़ाने का सशक्त एवं सरल उपाय है। श्वास–प्रेक्षा एकाग्रता के साथ–साथ सही ढंग से श्वास लेने की प्रक्रिया का प्रशिक्षण भी है। यह कार्यक्षमता को बढ़ाने का अमोघ साधन भी है। शिथिलीकरण के पश्चात् लक्ष्य की द्योतक शब्दावली पर एकाग्र हो जायें।

9.6.4 साक्षात्कार

हमें मस्तिष्क के बायें भाग की सुसुप्त शक्ति, कल्पना एवं साक्षात्कार की शक्ति को नियमित अभ्यास से जागृत करना है व अपनी बंद आंखों के सामने श्वेत पर्दे (टी.वी. के पर्दे के समान) की कल्पना को तीव्र बनाना है फिर उस पर्दे पर अपने लक्ष्य का स्पष्ट चित्र बनाना है। उस चित्र में जितनी अधिक स्पष्टता से एक–एक वस्तु दिखाई देगी उतनी ही अधिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सफलता मिलेगी। अचेतन मन में हमारा लक्ष्य स्पष्ट रूप से अंकित हो सकेगा। इस प्रयोग का नियमित तीन बार अभ्यास करें। एक बार में 20 मिनट समय लगाएं। तीन महीने तक प्रयोग करें।

दृढ़ इच्छाशक्ति एवं अभिप्रेरणा के साथ, शिथिलीकरण को साध कर दायें मस्तिष्क में प्रवेश कर पूरी एकाग्रता से यदि लक्ष्य का साक्षात्कार किया जाए तो ऐसा कोई लक्ष्य नहीं है जो पूरा नहीं हो सके। ऐसी कोई बाधा नहीं है जो अपने लक्ष्य–प्राप्ति को रोक सके। आवश्यकता है हम अपने आपको जानें एवं अपनी शक्तियों का सम्यक् उपयोग करें।

बोध प्रश्न

1. लक्ष्य प्राप्ति में प्रेक्षाध्यान कैसे सहायक होता है ?
2. लक्ष्य प्राप्ति में प्रेक्षाध्यान के चार चरण समझाइये ?

9.7.0 सारांश

- जीवन को सार्थक बनाने के लिए सतत पुरुषार्थ और उद्देश्य की खोज आवश्यक है। जीवन में उद्देश्य की खोज जीवन की सबसे बड़ी चुनौती है। यदि एक बार जीवन का उद्देश्य स्पष्ट हो जाये तो अपने आप ही मनुष्य के जीवन में नैतिक संतुलन, जागरुकता, निर्णय लेने की क्षमता और भेद बुद्धि आ जाती है। अनुसंधान से यह भी पुष्ट हुआ है कि लक्ष्य बनाने वाले, स्वस्थता, सामाजिकता व आर्थिक सुदृढ़ता में अधिक सफल रहे।

- जीवन में सामर्थ्य, एकाग्रता, स्वास्थ्य, संसाधन आदि सबकुछ है किन्तु यदि लक्ष्य नहीं बनाया है तो नयी विशिष्ट उपलब्धि संभव नहीं है। निराशावादी दृष्टिकोण, असफलता का भय, इच्छाशक्ति की कमी, आत्मविश्वास की कमी और अज्ञानता आदि कारणों से व्यक्ति लक्ष्य नहीं बना पाता है।

- लक्ष्यहीनता के कारणों को दूर कर लक्ष्य–निर्माण की दिशा में व्यक्ति को प्रेरित किया जा सकता है। जहां से व्यक्ति अपने चेतन मन की तर्क शक्ति (Reasoning Power) का उपयोग कर अपने लक्ष्य का निर्माण कर आगे बढ़ सकता है।

- सफल व्यक्तित्व निर्माण और लक्ष्य प्राप्ति का पहला चरण है – ***लक्ष्य का निर्माण करना।*** जीवन में गति, प्रगति, सही दिशा, आत्मसंतुष्टि का आधार व्यक्ति का लक्ष्य ही होता है। लक्ष्य विहीन गति प्रगति नहीं है। प्रगति तो लक्ष्य की दिशा में होने वाली गति ही कहलाती है।

- भारतीय संस्कृति के अनुसार अन्तिम या चरम लक्ष्य मोक्ष है। दीर्घकालिक लक्ष्य सेवा की भावना है। अल्पकालिक लक्ष्य सेवा के लिए चयनित माध्यम है और तात्कालिक लक्ष्य दैनिक जीवन की प्राथमिकताओं और चुनौतियों का सामना करना है। इन चारों के प्रति व्यक्ति सतत जागरुक रहकर अपने जीवन में सफलता के उच्चतम सोपानों को छू सकता है।

- लक्ष्य निर्माण का अर्थ है अपनी इच्छाओं में से कुछ आवश्यक और मूल्यवान इच्छाओं को महत्व देते हुए उसे विकसित करने का पूर्ण प्रयत्न करना, शेष इच्छाओं को स्थगित कर देना, गौण कर देना, सीमित कर देना या पूर्ण रूप से त्याग कर देना।

- मनोविज्ञान की दृष्टि से लक्ष्य निर्माण का कार्य चेतन मन का है एवं उसे प्राप्त करने के लिए सतत प्रेरणा, मार्गदर्शन व शक्ति प्रदान करने का कार्य अवचेतन मन का है। यदि लक्ष्य अवचेतन मन तक नहीं पहुंचता है तो चेतन मन संदेह व शंका उत्पन्न कर लक्ष्य को समाप्त कर देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- लक्ष्य निर्धारण हेतु कुछ महत्वपूर्ण सूत्र है जिनमें से एक है – आई. ए. एस. एवं दूसरा है – स्वॉट (SWOT)। इनमें मुख्यतः व्यक्ति की व्यक्ति की शक्ति, दुर्बलता, लक्ष्य प्राप्ति की संभावना आदि का आकलन कर लक्ष्य निर्माण किया जाता है और जिस चीज की कमी होती है उसे विकसित करने का प्रयास किया जाता है ताकि लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके।

- लक्ष्य प्राप्ति हेतु अवचेतन मन में लक्ष्य को पहुंचाना आवश्यक है। इस हेतु प्रेक्षाध्यान में चार चरण बताए गये हैं – 1. अभिप्रेरणा, 2. शिथिलीकरण, 3. एकाग्रता, 4. साक्षात्कार। यदि व्यक्ति इनका सही ढंग से अभ्यास करे तो वह अपने जीवन में लक्ष्य की प्राप्ति आसानी कर सकता है।

9.8.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. लक्ष्य प्राप्ति का क्या अर्थ है ?
2. सफल व्यक्तित्व निर्माण का पहला चरण क्या है ?
3. भारतीय संस्कृति के अनुसार लक्ष्य को कौन से चार भागों में बांटा गया है ?
4. भारतीय संस्कृति में जीवन का चरम लक्ष्य क्या है ?
5. मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मन के मुख्य तीन स्तर कौन से हैं ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. लक्ष्य विहीनता के चार कारण संक्षिप्त में बताएं ?
2. SWOT पद्धति से आप क्या समझते हैं ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. हमारे जीवन में लक्ष्य निर्माण का क्या महत्त्व है ? भारतीय संस्कृति के अनुसार लक्ष्य के चार प्रकारों का विस्तार से वर्णन करो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 3 सफल व्यक्तित्व का विकास
पाठ – 10 सकारात्मक दृष्टिकोण और आत्म-विश्वास

रूपरेखा

10.0.0 उद्देश्य
10.1.0 भूमिका
10.2.0 आत्म–विश्वास
10.2.1 सकारात्मक दृष्टिकोण
10.2.2 आत्म-विश्वास : अर्थ और स्वरूप
10.2.3 आत्म-विश्वास और आत्म-हीनता
10.2.4 आत्म-हीनता के दुष्परिणाम
10.2.5 आत्म-विश्वास के सुपरिणाम
10.3.0 सुदृढ़ आत्म-विश्वास
10.3.1 आत्म-विश्वास में अभिवृद्धि का उपाय
10.3.2 प्रेक्षा एवं प्रेक्षा के परिणाम
10.3.3 परिपूर्णता के प्रयास
10.4.0 आत्म-विश्वास और अन्तर्दृष्टि
10.4.1 अन्तर्दृष्टि और प्रेक्षाध्यान
10.4.2 चैतन्य केन्द्र और आधुनिक विज्ञान
10.4.3 अनिष्ट भाव और गोनाड्स ग्रन्थि
10.4.4 विवेक चेतना और अन्तर्दृष्टि
10.5.0 अन्तःस्रावी ग्रन्थि तंत्र का संतुलन और दर्शन केन्द्र प्रेक्षा
10.5.1 प्रयोग प्रविधि
10.6.0 सारांश
10.6.1 अभ्यास प्रश्न

10.0.0 उद्देश्य

ज्ञान पिपासु भगिनी, बंधुओं !

अब तक 9 अध्यायों में आपने व्यक्तित्व विकास के विभिन्न बिन्दुओं पर ज्ञानार्जन किया। इस अध्याय का उद्देश्य आपके चिन्तन में सकारात्मकता आए। आप आशावादी बनें। आपका आत्मविश्वास सुदृढ़ बने। आप अपनी अन्तर्दृष्टि को जागृत कर सकें। अन्तःस्रावी ग्रन्थितंत्र के संतुलन को समझ सकें एवं प्रयोग प्रविधि सीखकर बेहतर आध्यात्मिक, वैज्ञानिक व्यक्तित्व का (प्रविधि का प्रयोग कर) निर्माण कर सकें। इस नये पाठ के स्वाध्याय से आप जान पाएंगे –

1. आत्म–विश्वास और सकारात्मक दृष्टिकोण का तात्पर्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. आत्म–विश्वास के सुपरिणाम

3. आत्म–हीनता के दुष्परिणाम

4. आत्म–विश्वास को सुदृढ़ करने के उपाय

5. अन्तर्दृष्टि और आत्मविश्वास का सम्बन्ध

6. अन्तदृष्टि को जागृत करने हेतु प्रेक्षाध्यान के प्रयोग

7. दर्शन केन्द्र पर ध्यान की प्रविधि

10.1.0 भूमिका

कहा जाता है जो जैसा सोचता है वह वैसा हो जाता है। इसका कारण स्पष्ट है। हम जो सोचते हैं उसे करने में अपनी शक्ति का सही नियोजन कर लेते हैं, सहयोग भी मिल जाता है और अन्ततः सफलता का सही वरण भी कर लेते हैं। जैसे कोई विद्यार्थी 90 प्रतिशत अंक पाने के लिए सोचता है और प्रयास करता है तब वह 90 प्रतिशत के आस–पास अंक प्राप्त कर सकता है। यदि वह सोचता है कि मैं 50 प्रतिशत अंक ही पाऊंगा तब वह कभी भी 80 प्रतिशत अंक नहीं पा सकता है। भले ही उसकी योग्यता कितनी ही क्यों न हो।

मनुष्य के भीतर अनन्त शक्तियां हैं किन्तु वह अज्ञानता, अविश्वास और सकारात्मक सोच के अभाव में उनका जागरण व उपयोग नहीं कर पाता है। एक लोहार तलवार बना रहा था। तलवार तैयार होने वाली थी। अचानक उसके मन में आया कि तलवार अच्छी नहीं बन पायेगी। उसने आगे का कार्य रोक दिया। लोहे को पुनः आग में डाल दिया। कुछ समय बाद उसने पुनः घोड़े की नाल बनाना प्रारम्भ किया। परन्तु उस पर भी विश्वास नहीं जमा। उसे पुनः पानी डालकर ठण्डा कर दिया।

वह लोहार अच्छी तलवार बना सकता था। परन्तु सकारात्मक चिन्तन व आत्म–विश्वास की कमी के कारण उसने समय व शक्ति दोनों का अपव्यय कर दिया। सकारात्मक सोच और आत्म–विश्वास वह शक्ति है जो प्रत्येक कार्य की सफलता के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

केवल परिश्रम मात्र से परिणाम अच्छे नहीं प्राप्त होते हैं। परिश्रम के साथ सकारात्मक सोच और आत्मविश्वास का होना जरूरी है। बहुत से विद्यार्थी बहुत कुछ याद करके जाते हैं। परन्तु जब परीक्षा कक्ष में बैठते हैं तो नकारात्मक सोच के कारण भूल जाते हैं। याद होने पर भी हमेशा भय रहता है कि यह सही है या नहीं है। इस कारण गलती कर बैठते हैं। इसलिए विद्यार्थियों के अन्दर सकारात्मक दृष्टिकोण एवं आत्मविश्वास का खजाना होना अतिआवश्यक है।

10.2.0 आत्म–विश्वास

लगभग अप्रेल 1980 की बात है जब मैं घोर निराशा और आत्महीनता का शिकार हो गया था। आत्म-विश्वास इतना कमजोर हो गया था कि मैं जब दूकान पर रुपयों की एक गड्डी को तीन बार गिनता तब भी मुझे यह विश्वास नहीं होता कि इस गड्डी में पूरे सौ नोट ही हैं। मैं भाग्यशाली रहा। मुझे उस समय मुनिश्री सुमेरमलजी (लाडनूं) का शुभ संयोग मिला। उनसे प्रेरणा और संकल्प प्राप्त कर मैंने नमस्कार महामंत्र का ध्यान दर्शन केन्द्र पर प्रारम्भ किया। कुछ ही महिनों बाद मेरी निराशा आशा में बदल गई। आत्म–हीनता, आत्म–विश्वास में परिणत हो गई। जीवन में आमूल–चूल परिवर्तन हो गया।

10.2.1 सकारात्मक दृष्टिकोण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास के लिए आत्म–विश्वास की सुदृढ़ता नितान्त आवश्यक है। आत्म–विश्वास का स्रोत हमारी स्वयं की दृष्टि है। कहा भी जाता है, जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। हम प्रायः अपने दृष्टिकोण से ही स्वयं एवं दूसरों के व्यवहार, आचार और विचार का निर्णय करते हैं। सामान्यतया जीवन में व्यक्ति उसको ही मूल्य देता है जिसको वह स्वयं महत्त्वपूर्ण मानता है, अच्छा मानता है अथवा जिस क्षेत्र में उसकी योग्यता अच्छी होती है। वस्तुतः ***जीवन में घटने वाली किसी भी घटना या परिस्थिति का अपना स्वतन्त्र मूल्य नहीं होता है। व्यक्ति उसे जिस दृष्टिकोण से ग्रहण करता है वह ही उसका मूल्य हो जाता है।*** एक व्यक्ति के लिए टिकट की लम्बी कतार में खड़ा होना परेशानी का कारण बन सकता है। वहीं दूसरी तरफ़ दूसरे व्यक्ति के लिए यह एक सामान्य दैनिक घटना भी हो सकती है। अतः हमारा दृष्टिकोण ही हमारे जीवन को अर्थ प्रदान करता है। हम अपने आपको कैसे देखते हैं ? स्वयं की क्या व्याख्या करते हैं ? उसका हमारे जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति पर बहुत गहरा असर पड़ता है। ***जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण से हमारा आत्म–विश्वास सुदृढ़ बनता है।*** स्वयं को सकारात्मक दृष्टि से देखने से स्वयं का ज्ञान पुष्ट होता है। स्व–ज्ञान से स्वयं पर विश्वास पुष्ट होता है। इससे आत्म–शक्ति (मनोबल) का जागरण होता है। शक्ति से व्यक्ति सदाचार की दिशा में प्रस्थान करता है। जैनाचार्य उमास्वाति ने भी मोक्ष मार्ग (शान्ति मार्ग) के सूत्र को प्रस्तुत करते हुए बताया –''सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः'' सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र से मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है।

अध्यात्म के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने भी सम्पूर्ण प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए बताया कि –

प्रेक्षा श्रद्धां यायात् –प्रेक्षा (तटस्थ भाव से देखना) श्रद्धा की कोटि में पहुंचे।
श्रद्धा वीर्यं यायात् –श्रद्धा (विश्वास) वीर्य (मनोबल,पराक्रम) की कोटि में पहुंचे।
वीर्यं चरणं यायात् –वीर्य (पराक्रम) आचरण (सदाचार) की कोटि में पहुंचे।

10.2.2 आत्म–विश्वास : अर्थ एवं स्वरूप

आत्म–विश्वास का प्रभाव हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ता है। अपनी सफलता या असफलता और आपसी सम्बन्धों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। ***एक सुदृढ़ आत्म–विश्वास से सम्पन्न व्यक्ति के जीवन में प्रसन्नता, संतुष्टि और सार्थक उद्देश्य सहज ही दिखाई देते हैं।*** आत्म–विश्वास क्या है ? यहां दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं – आत्म और विश्वास। आत्मा का तात्पर्य यहां पर दार्शनिक शब्द 'आत्मा' से नहीं है। यहां इसका अर्थ है –स्वयं, अपना, या खुद से है। हम जैसा भी वर्तमान में स्वयं को अनुभव करते हैं, उससे है। विश्वास का अर्थ है – निष्ठा, आस्था, प्रतीति आदि। आत्म–विश्वास का शाब्दिक अर्थ हुआ – स्वयं में आस्था और स्वयं के विभिन्न विश्वास।

आत्म–विश्वास अपने आप पर विश्वास का एक स्तर है। यह स्वयं की स्वीकृति है कि हम अपने आपको कितना स्वीकार करते हैं। अपने भीतर अच्छाई एवं बुराई दोनों का अस्तित्व है। उसको जैसा है, वैसा स्वीकार करते हैं या नहीं। मानसिक रूप से स्वयं को कितना अच्छा और स्वस्थ अनुभव करते हैं ? अतः आत्म–विश्वास का तात्पर्य हुआ –

1. हम अपने आपके प्रति जो विश्वास करते हैं,
2. हम अपने आपके बारे में जैसा अनुभव करते हैं,
3. हमारा अपने आपके प्रति जो दृष्टिकोण है और
4. हमारी विभिन्न धारणाएं और विश्वास जो जीवन और जगत् के प्रति हैं।

कार्य के प्रति अपने विश्वास से ही व्यक्ति उस कार्य से पूर्ण रूपेण जुड़ पाता है। अथवा किसी भी सार्थक उद्देश्य की प्राप्ति में वह सर्वात्मना समर्पित हो जाता है। जब व्यक्ति में स्वयं के प्रति यह विश्वास नहीं होता कि मैं अमुक कार्य कर सकता हूं तब तक वह कार्य के प्रति सर्वात्मना प्रयत्न भी नहीं कर पाता है। आत्म–विश्वास का आत्म–छवि, स्वाभिमान, आत्म–गौरव, आत्म–सम्मान, सम्यक् दृष्टिकोण जैसे शब्दों के साथ बहुत निकटता का सम्बन्ध है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्वयं के विश्वास – आत्म–विश्वास अर्थात् स्वयं पर विश्वास या स्वयं के विश्वास। स्वयं के विश्वास नई सूचनाओं को ग्रहण करने के लिए छलनी का काम करते हैं। जो सूचना हमारे विश्वासों के साथ मेल नहीं खाती उसे छांट दिया जाता है। उसे ग्रहण नहीं किया जाता है। उसे महत्त्व नहीं दिया जाता है। दूसरी और जो सूचनाएं स्वयं के विश्वासों से मेल खाती हैं उसे आसानी से स्वीकार कर लिया जाता है।

इस प्रकार ***स्वयं के विश्वास नई सूचनाओं (ज्ञान) को ग्रहण करने में साधक या बाधक बनते हैं।*** वैसे ही नये कार्यों को करने, सम्बन्धों के निर्वाह करने या किसी भी समस्या का समाधान करने में भी स्वयं के विश्वास साधक या बाधक बनते हैं। अतः स्वयं पर विश्वास को कैसे पुष्ट करें ? स्वयं के विश्वासों को सकारात्मक कैसे बनायें रखें ? प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में सफल होने के लिए इसका बोध आवश्यक है।

उतार–चढ़ाव – आत्म–विश्वास वस्तुतः स्वयं की उपयोगिता, स्वयं की मूल्यवत्ता, स्वयं के अस्तित्व की यथार्थता का स्वयं द्वारा मूल्यांकन है। यह स्वयं द्वारा मूल्यांकन हमेशा हर कार्य में, हर परिस्थिति में एक जैसा स्थिर नहीं रहता। यह बदलता रहता है। हम अपने आपको सामने वाले व्यक्ति, घटना, कार्य या परिस्थिति की तुलना में स्वयं को कैसे देखते हैं। उसी के अनुरूप हमारे आत्म–विश्वास पर न्यूनाधिक असर पड़ता है। वह भिन्न–भिन्न स्थिति में भिन्न–भिन्न हो जाता है।

10.2.3 आत्म–विश्वास और आत्म–हीनता

जीवन में संतोष, शांति व तृप्ति का रहस्य स्वयं को समझने में है। स्वयं की अन्तः भावनाओं को समझकर साहस के साथ समाज व समय के अनुरूप अपनी राह या पथ को खोजने में है। इसी से व्यक्ति में संतुष्टि और आत्म–विश्वास बढ़ता है। जीवन में अनेक बार भावनाओं में भी परिवर्तन और उतार–चढ़ाव आता है। उस समय आत्म–विश्वास भी स्थिर नहीं रहता। वस्तुतः यह हमारे जीवन का अंग है। यह इस बात का संकेत भी है कि भावना और परिस्थितियों के बीच संतुलन का स्वतःप्रयास हो रहा है। हम जागरूक होकर सलक्ष्य उन परिस्थितियों में परिवर्तन भी कर सकते है जो हमारे आत्म–विश्वास को कमजोर करते हैं।

अनेक बार व्यक्ति अपने आपको गौण कर अपनी भावना व क्षमता को पहचाने बिना केवल दूसरों की नकल करने लगता है। परिस्थितियों का गुलाम बन जाता है। स्वयं को समझने का प्रयास भी छोड़ देता है। इससे व्यक्ति की अपनी भावनाएं, इच्छाएं, कामनाएं, रुचियां दब जाती है। वह व्यक्ति को खालीपन का अहसास कराती है। इससे अशान्त होकर व्यक्ति उदासीन होने लगता है। दूसरों से भी कटने लगता है। यह स्थिति व्यक्ति के लिए अत्यन्त पीड़ादायक होती है। इससे व्यक्ति का आत्म–विश्वास कमजोर होता है। ***व्यक्ति का आत्मविश्वास जितना कमजोर होता है उतना ही वह स्वयं के प्रति भी लापरवाह होता चला जाता है। कुछ नया करने का उत्साह समाप्त हो जाता है।*** नवीनता को स्वीकारने की क्षमता क्षीण हो जाती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अन्तःप्रेरणा व स्वयं की क्षमता के प्रति जागरूक रह कर उसके अनुरूप समायानुकूल व समाजोपयोगी लक्ष्य बनाना चाहिए।

इस प्रकार स्वयं के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण मानसिक रूप से स्वयं को निष्क्रिय बना सकता है। दूसरी ओर स्वयं के बारे में सकारात्मक दृष्टिकोण, सोच और धारणाएं व्यक्ति को सक्रिय और मिलनसार बनाने में सहायक होती हैं। परिस्थिति, तथ्य और मूल्य को सही दृष्टि से आकलन करने से ही आत्म–विश्वास को स्थिर व सुदृढ़ बनाया जा सकता है। ***आत्म–विश्वास केवल इस बात पर आधारित नहीं है कि व्यक्ति वर्तमान में कितना अच्छा है बल्कि उससे भी आगे वह इस बात पर निर्भर है कि उसमें अपनी अच्छाइयों को विकसित करने एवं बुराइयों से लड़ने की भावना कितनी मजबूत है।*** वह कितना अच्छा बनना चाहता है।

जिन व्यक्तियों का आत्म–विश्वास सुदृढ़ बना रहता है उनके जीवन में संभावनाओं के द्वार खुले रहते हैं। इसी प्रकार उन व्यक्तियों के जीवन में विकास की संभावनाएं सीमित हो जाती है या अवरुद्ध हो जाती है जिनका आत्म–विश्वास कमजोर पड़ जाता है। वे हीनभावना से ग्रस्त हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के किसी न किसी क्षेत्र में कमजोरी का अनुभव

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

करता है एवं कुछ क्षेत्रों में अपने आपको सबल एवं सक्षम पाता है। **हम अपने जीवन के सक्षम क्षेत्रों, अवसरों, परिस्थितियों, गुणों एवं मूल्यों के सम्यक् आकलन करने से अपने आत्म–विश्वास को स्थिर व सुदृढ़ बना सकते हैं।**

10.2.4 आत्म–हीनता के दुष्परिणाम

संक्षेप में जो व्यक्ति स्वयं के गुण–दोषों का सकारात्मक मूल्यांकन नहीं करते, स्वयं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं रखते, सही धारणाएं नहीं बनाते हैं, उनके लिए –

1. दूसरों से सम्पर्क बनाना कठिन होगा।
2. सही निर्णय लेने और उसे क्रियान्वित करने में अनावश्यक समय और शक्ति बहुत लगेगी।
3. अपने आस–पास का वातावरण असुरक्षित और भयावह लगेगा।
4. दूसरों के द्वारा स्वयं की प्रशंसा को भी सही ढंग से लेने में कठिनाई होगी।
5. अधिकांश समय इस चिन्ता में ही गुजर जायेगा कि दूसरे व्यक्ति मेरे बारे में क्या सोचते हैं ?

10.2.5 आत्म विश्वास के सुपरिणाम

यदि हम स्वयं के गुणों का सकारात्मक मूल्यांकन करते हैं, दोषों को दूर करने के लिए स्वयं प्रयत्नशील हैं, स्वयं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण व सोच रखते हैं, तब –

1. स्वयं में जीवंतता, शक्ति, उत्साह और सामर्थ्य का अहसास होगा।
2. स्वयं की क्षमता में विश्वास होगा।
3. स्वयं में विश्वास रहेगा कि मैं समस्या आने पर उसका समाधान कर सकूंगा। अपने से जितना होगा उसमें कोई कसर नहीं रखूंगा।
4. हमारे पास दूसरों को देने के लिए बहुत कुछ होगा। अपनी प्रशंसा और प्रोत्साहन से अप्रभावित रह सकेंगे। अपना संतुलन बनाये रख सकेंगे।
5. हम दूसरों के सुझावों और प्रतिक्रियाओं को सुनने के लिए खुले रह सकेंगे एवं आलोचनाओं को भी सही ढंग से स्वीकार कर सकेंगे।

बोध प्रश्न :

1. सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास कब संभव है?
2. आत्महीनता दुष्परिणाम कौन–कौन से हैं?

10.3.0 सुदृढ़ आत्म–विश्वास

अच्छा और सुदृढ़ आत्म–विश्वास होने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम पूर्ण हो गये हैं या विकास और परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं है। इस स्थिति में भी त्रुटि हो सकती है, दूसरों की आलोचनाओं को सुनना पड़ सकता है किन्तु ऐसे अवसरों पर वह निराश और हताश नहीं होता। इससे भी वह कुछ न कुछ सीखता है, आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है।

सुदृढ़ आत्म–विश्वासी और कमजोर आत्म–विश्वासी की तुलनात्मक दृष्टि से विशेषताएं–

क्र.सं.	सुदृढ़ आत्म–विश्वासी	कमजोर आत्म–विश्वासी
1.	विनम्रता, अनुशासन और मर्यादाओं का आदर करना।	अहंकारी, उद्दण्ड और मर्यादाओं की अवहेलना करना, आग्रही होना।
2.	चरित्र की सुरक्षा करना।	झूठी इज्जत की चिन्ता करना।
3.	सुदृढ़ निर्णय।	भ्रम, असमंजसता व अनिर्णायकता ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.	दायित्वशील, जिम्मेदारी को स्वीकारना।	दूसरों को दोष देना।
5.	सबके हित की बात करना।	केवल अपने स्वार्थ की बात करना।
6.	आशावादी होना।	भाग्यवादी होना।
7.	दूसरों को समझने की कोशिश करना।	स्वयं के लिए दूसरों की परवाह न करना।
8.	सीखने की मनोवृत्ति।	'मैं जानता हूं' की मनोवृत्ति।
9.	संवेदनशील, दूसरों की पीड़ा को समझना।	भावुकता, छोटी–छोटी बातों में अस्थिर और असंतुलित हो जाना।
10.	एकान्तप्रिय होना।	अकेलेपन का बोझ ढोना।
11.	वार्ता और संवाद स्थापित करना।	बहस और तर्क वितर्क करना।
12.	आत्मगुण अर्थात् स्वयं की योग्यता और क्षमताओं में विश्वास करना।	भौतिक साधन, धन आदि पर विश्वास करना।
13.	अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होना।	बाह्य कारकों से प्रेरित।

उपरोक्त तालिका का उद्देश्य स्वयं को समझना है न कि स्वयं को दोषी मानना या अपराध बोध से ग्रस्त होना। यह जरूरी नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति में सभी लक्षण मिलते हों। *व्यक्ति अपनी विशेषताओं को समझकर, अच्छाइयों को विकसित करने का संकल्प ले कर और कमियों को सुधार कर आत्म–विश्वास को सुदृढ़ बना सकता है।*

10.3.1 अभिवृद्धि – उपाय : आत्म–दर्शन

अपनी विशेषताओं और कमियों को जानने के लिए स्वयं को जानना आवश्यक है। अतः आत्म–विश्वास बढ़ाने का पहला चरण है – आत्मदर्शन। स्वयं को बार–बार देखना, अवलोकन करना अर्थात् प्रेक्षा करना। इससे आत्म–विश्वास बढ़ता है। आत्म–विश्वास की सुदृढ़ता स्वयं की अच्छाइयों को समझने एवं उसके विकास की मानसिकता से पैदा होती है। इसके लिए अपने 'स्व' को जैसा है वैसा स्वीकार करना पहली आवश्यकता है। अर्थात् अपनी अच्छाइयों व कमजोरियों को स्वीकार करना। ***स्वयं को स्वीकार करने से जो अच्छाइयां हैं उनको विकसित करने का संकल्प एवं जो कमियां हैं उनको दूर करने का साहस पैदा होता है।*** हम दूसरों के साथ भी ईमानदारी के साथ स्वयं को प्रस्तुत करने का साहस जुटा लेते हैं। इससे हमें अपने बारे में अधिक से अधिक जानने में सहयोग मिलता है।

अपने आपको जानना वास्तव में इतना आसान नहीं है जितना हम सोचते हैं। हम समाज के साथ अन्तःक्रिया में झूठी अवधारणाएं पाल लेते हैं। दूसरों की अपेक्षानुसार अपनी कमजोरियों को छिपाकर 'जो नहीं है' उसको भी प्रदर्शित करना शुरू कर देते हैं। प्रदर्शन और यथार्थ में दूरी बढ़ती चली जाती है। केवल दूसरों के मानदण्ड पर खरा उतरने के प्रयास से भीतर एक खालीपन महसूस होता है। अनुभव होता रहता है कि मैं जिसे चाहता हूं, वह नहीं कर पा रहा हूं। यह स्थिति अत्यन्त पीड़ादायक व असंतोष को उत्पन्न करने वाली होती है किन्तु इस स्तर को स्वयं की तटस्थ प्रेक्षा के अभ्यास द्वारा तोड़ा जा सकता है।

10.3.2 जीवन का समग्र दर्शन

जीवन के अनेक क्षेत्रों या पक्षों की प्रेक्षा, दर्शन या अवलोकन से भी आत्म–विश्वास विकसित होता है। जैसे–जैसे हमारा आत्म–विश्वास सुदृढ़ होता जाता है वैसे वैसे हम हमारे पास जो भी उपलब्ध है, आन्तरिक या बाह्य उन सभी का सही आकलन कर पाने मे समर्थ होते जाते हैं। हम किसी एक क्षेत्र पर निर्भर नहीं रहते हैं। हम समग्रता से स्वयं को देखने, समझने व सही मूल्यांकन करने की कोशिश करते हैं। जैसे हमारे –

1. स्वयं के श्वास, शरीर, शक्ति के स्रोत, चैतन्य केन्द्र, आन्तरिक रंग (लेश्या), आदि।
2. आन्तरिक मूल्य, सिद्धान्त, विश्वास, धारणाएं, भावनाएं आदि।
3. उपलब्धियां, मानसिक क्षमताएं, आर्थिक सम्पदा, भौतिक संसाधन आदि।
4. स्वयं एवं दूसरों की अपेक्षाओं की पूर्ति का सामर्थ्य, प्राप्त अवसर, संभावनाएं, कार्यक्षमता आदि।
5. सामाजिक सम्बन्ध, सहयोग, स्नेह, प्रोत्साहन, पुरस्कार आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10.3.3 परिपूर्णता के प्रयास

आत्म–विश्वास की सुदृढ़ता में अभिवृद्धि के साथ व्यक्ति निम्नलिखित गुणों में परिपूर्ण बनने का सतत प्रयास करता हैं–

1. आत्म–ज्ञान (Self-Knowledge) – अपने आपको जानने का प्रयत्न करता है।
2. आत्म–विश्वास (Self-confidence) – अपनी क्षमता, योग्यता, सबलताओं पर विश्वास करता है।
3. आत्म–स्वीकृति (Self-acceptance) – ***अपनी अच्छाइयों को स्वीकार करता है। इससे हीनभावना दूर होती है तथा अपनी बुराइयों को भी साहस के साथ स्वीकार करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।***
4. आत्म–सम्मान (Self-respect) – अपनी अच्छाइयों का सम्मान करता है एवं उन्हें विकसित करने का प्रयत्न करता है। उनमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति एवं समय के नियोजन का प्रयत्न करता है।
5. आत्म–महत्त्व (Self-worth) – अपनी क्षमता, योग्यता व अच्छाइयों को महत्त्व देता है। उनकी उपयोगिता और सार्थकता को समझता है।
6. आत्म–अनुशासन (Self-descipline) –अपनी दुर्बलताओं और कमजोरियों को जीतने के लिए संघर्ष करता है। उनमें शक्ति व समय न लगे, इसके लिए विशेष अनुशासन करता है। योजनाबद्ध आगे बढ़ता है। उनमें सुधार का निरन्तर प्रयत्न करता है।
6. आत्म–संतुष्टि (Self-satisfaction) – स्वयं में संतुष्ट व प्रसन्न रहता है। अपने सामाजिक दायित्व एवं कर्तव्य के प्रति जागरुक रहता है।

बोध प्रश्न :

1. कमजोर आत्म–विश्वासी के क्या–क्या लक्षण हैं?
2. सुदृढ़ आत्म–विश्वासी परिपूर्णता के लिए क्या–क्या प्रयास करते हैं?

10.4.0 आत्म–विश्वास और अन्तर्दृष्टि

स्वयं में सुदृढ़ आत्म–विश्वास स्वयं की उपयोगिता और सार्थकता को समझने से पैदा होता है। जब तक हम स्वयं की उपयोगिता स्वयं नहीं समझेंगे तब तक आत्म–विश्वास गहरा और सुदृढ़ नहीं हो सकता। साथ ही अच्छे आत्म–विश्वास के लिए 'आन्तरिक प्रेरणा' का होना एवं उसे समझकर आगे बढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। अपने आपको जानने, अन्तःप्रेरणा एवं भावनाओं को समझने के लिए अन्तर्दृष्टि का विकास अपेक्षित होता है। अन्तर्दृष्टि के विकास के बिना व्यक्ति दूसरों को ही देखता है स्वयं को देखना नहीं जानता है।

किसी भी ज्ञानेन्द्रिय से परे की विषय वस्तु के बारे में सीधा ज्ञान या अन्तर्बोध को प्राप्त कर लेना अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान कहलाता है। इससे व्यक्ति अपने पूर्व अनुभव, वर्तमान ज्ञान, भावी कल्पना तथा बाह्य वातावरण सबको समग्रता से देखता है। जिससे उसे विषय वस्तु के बारे में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है। ***सामान्यतया अन्तर्ज्ञान इच्छानुसार नियन्त्रित की जाने वाली क्रिया नहीं है। यह शान्त, तटस्थ व एकाग्र चैतसिक अवस्था की परिणति है।*** समस्याओं का समाधान करने में इस क्षमता का बड़ा महत्त्व है। परिस्थितियों के सम्यक् आकलन व सम्भावनाओं के अनन्त द्वारों को उद्घाटित करने व समझने में अन्तर्दृष्टि बहुत उपयोगी होती है। अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति मुख्यतः सृजन धर्मा, अन्वेषक, भविष्यद्रष्टा, कलाकार और आविष्कारक होते हैं। वे स्वतन्त्र चेतना के धनी होते हैं। वे अपनी अन्तःप्रेरणाओं के निकट सम्पर्क में रहते हैं और शीघ्र ही निष्कर्षों पर पहुंच जाते हैं। ऐसे व्यक्ति समस्या का समाधान करने, नई विधियों को सीखने में कुशल होते हैं। वे अपनी ऊर्जा का उपयोग उत्साहपूर्वक और सही ढंग से सही कार्य के लिए करते हैं। अन्तर्दृष्टि के उद्घाटन से व्यक्ति के दृष्टिकोण में आमूल–चूल सकारात्मक बदलाव आता है।

10.4.1 अन्तर्दृष्टि और प्रेक्षाध्यान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अन्तर्दृष्टि का व्यक्ति के चेतना स्तर एवं मनःस्थिति से बहुत गहरा सम्बन्ध है। चेतना जितनी विशुद्ध होगी और मन जितना एकाग्र होगा अन्तर्दृष्टि का स्तर उतना ही विकसित होगा। पानी के तल को निर्मल और स्थिर पानी में ही देखा जा सकता है। मैले और हिलते पानी में पानी का तल नहीं देखा जा सकता है। ठीक इसी तरह कषाय/संवेगों से मलिन और मन की चंचलता से अस्थिर चेतना में अन्तर्दृष्टि का विकास नहीं होता। प्रेक्षाध्यान के नियमित अभ्यास द्वारा अन्तर्दृष्टि का विकास सहज एवं सरलता से हो सकता है। प्रेक्षाध्यान में विशेषकर चैतन्य केन्द्र की प्रेक्षा से व्यक्ति अपने संवेग/कषायों को परिष्कृत कर व मन को एकाग्र कर चेतना की अतीन्द्रिय क्षमताओं को जगा सकता है।

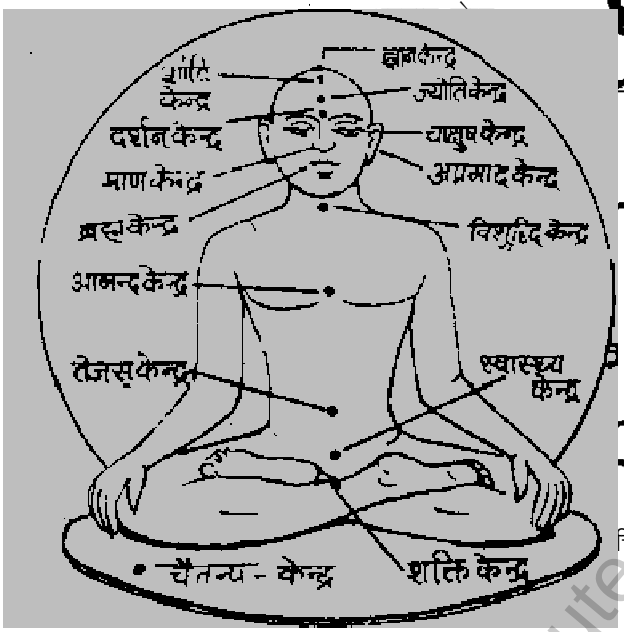

चित्र 10.1 चैतन्य केन्द्रों की स्थिति

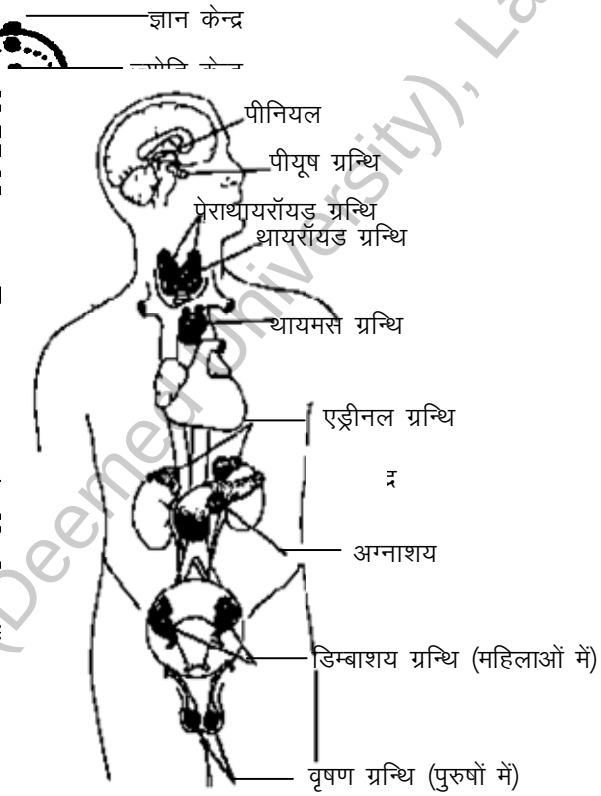

चित्र 10.2 चैतन्य केन्द्र और ग्रन्थि तंत्र

चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा में हम शरीर में अवस्थित तेरह प्रमुख केन्द्रों पर (देखें चित्र 10.1) अपने चित्त को केन्द्रित करते हैं। वहां के सम्पूर्ण क्षेत्र पर चित्त को फैलाते हैं तथा वहां होने वाले कम्पन, प्रकम्पन, संवेदन आदि को राग–द्वेष रहित होकर तटस्थ भाव से देखते हैं। **यह नियम है कि जहां चित्त को केन्द्रित कर ध्यान किया जाता है वह स्थान सक्रिय, जागृत और सन्तुलित होने लगता है।** अतः इस प्रक्रिया से हमारा चित्त भी निर्मल होता है। एकाग्रता भी पुष्ट होती है। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा से भावों में निर्मलता कैसे आती है ? इसको वैज्ञानिक दृष्टि से सरलता से समझा जा सकता है।

10.4.2 चैतन्य केन्द्र और आधुनिक विज्ञान

चैतन्य केन्द्र शरीर के महत्त्वपूर्ण स्थानो में स्थित है। उन महत्त्वपूर्ण स्थानों का सम्बन्ध आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से हमारे शरीर के स्नायु तंत्र और ग्रन्थि तन्त्र से है। ये दोनों ही तन्त्र प्रमुख रूप से शरीर के समस्त क्रिया–कलापों का नियमन व समन्वय करते हैं। इसी से हमारा शरीर एकरूप होकर कार्य करता है। दोनों तन्त्रों में प्रगाढ़ सम्बन्ध है। स्नायु तन्त्र विद्युत प्रवाह एवं रासायनिक स्रावों के माध्यम से पूरे शरीर को नियन्त्रित करता है। दूसरी और ग्रन्थि तन्त्र की ग्रन्थियां द्वीपों की तरह अलग–अलग बिखरी हुई हैं। (देखें चित्र 10.2) इनका स्राव सीधे रक्त में मिलकर शरीर के विकास, चयापचय,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रजनन आदि अनेक महत्त्वपूर्ण गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही ये स्राव मानसिक व भावनात्मक निर्मलता और मलिनता को भी बहुत गहरे तक प्रभावित करते हैं।

10.4.3 अनिष्ट भाव एवं गोनाड्स ग्रन्थि

व्यक्ति में फूहड़ विचार, आक्रामक भाव और समाज विरोधी रुझान एक विशेष अन्तःस्रावी ग्रन्थि के स्राव (Harmone) द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। यह सुविदित तथ्य है कि क्रूर अपराधियों में गोनाड्स ग्रन्थि से टेस्टोस्टीरोन स्राव अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है। अधुनातन अध्ययन से यह भी पता चला है कि अपराधियों की ओर से वकालात करने वाले पुरुष वकीलों में भी इस स्राव का उत्पादन सामान्य से अधिक मात्रा में पाया गया।

जैम्स् डेब्स, जार्जिया स्टेट्स युनिवर्सिटी के मनोवैज्ञानिक ने साठ वादी वकीलों (Trial Lawyer's) के लार में टेस्टोस्टीरोन स्राव की मात्रा का मापन किया। उन्होंने वादी वकीलों (Trial Lawyer's) में भी सामान्य वकीलों अपेक्षा से इस स्राव की मात्रा को अधिक पाया। विभिन्न व्यवसाय के पुरुषों में टेस्टोस्टीरोन स्राव की मात्रा की तुलना करने पर वकील एवं अभिनेता वर्ग के पुरुषों में यह मात्रा अधिक पाई गई। पादरियों में इसकी मात्रा सबसे कम रही। डेब्स के अनुसार अधिक स्राव का लक्षण प्रवंचना व प्रदर्शन से संबंधित व्यवसाय के कारण हो सकते हैं। अतः इसकी अधिक मात्रा उस व्यवसाय से संबंधित सदस्यों में प्रदर्शित हो रही हैं। उग्र आपराधिक महिलाओं में भी इस स्राव का स्तर सामान्य महिलाओं से अधिक पाया गया।[1]

इस प्रकार भीतरी आवेग, आवेश, वृत्ति, वासना, आक्रामकता, क्रूरता, घृणा, भय आदि मलिन भाव और संवेग ग्रन्थियों के स्रावों के माध्यम से शरीर में प्रकट होते हैं। ***ये स्राव न केवल मलिन भावों को उत्पन्न करते हैं अपितु उनकी पूर्ति के अनुरूप प्रवृत्ति या व्यवहार (सदाचार या अनाचार) के लिए भी बाध्य करते हैं।*** प्रवृत्ति से पुनः वृत्ति अर्थात् संवेग पुष्ट होते हैं। यह एक विषाक्त चक्र बन जाता है – वृत्ति से प्रवृत्ति, प्रवृत्ति से वृत्ति का पोषण और पुनः पुनः आवृत्तियां।

बाह्य प्रतिकूल या अनुकूल घटनाएं आन्तरिक भावों या संवेगों को जगा देती हैं या आन्तरिक संस्कारों के कारण भी संवेग या भाव जाग जाते हैं। इनके अत्यधिक दबाव से अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव असंतुलित हो जाते हैं। इससे व्यक्ति का दृष्टिकोण और विचार भी नकारात्मक हो जाता है। वृत्ति–प्रवृत्ति और पुनरावृत्ति के विषाक्त चक्र के परिणामस्वरूप व्यक्ति में अपने जीवन के उज्ज्वल पक्षों को देख पाने की क्षमता प्रभावित होती है। हीनभावना व निराशा के भाव बढ़ते हैं। आचरण और व्यवहार में कुसमायोजन की संभावना बढ़ती है। अंततः व्यक्तित्व विखण्डित हो जाता है।

10.4.4 विवेक चेतना और अन्तर्दृष्टि

वृत्ति–प्रवृति और पुनरावृत्ति के विषाक्त चक्र को तोड़ना सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास, समायोजित व्यवहार और सदाचार से परिपूर्ण नैतिक जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य विलक्षण और अद्वितीय प्राणी है। उसके पास विवेक चेतना है। युक्ति संगत विचार चेतना है। इससे वह इस विषाक्त चक्र को तोड़ सकता है। इन वृत्तियों को सृजनात्मक दिशा में मोड़ सकता है। वह उच्चतर मापदण्ड और मूल्यों का सृजन कर सकता है। व्यक्ति अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के संतुलन द्वारा अपनी उस सुप्त विवेक चेतना और अन्तर्दृष्टि को जागृत कर सकता हैं जो अन्ततः सकारात्मक दृष्टिकोण और आत्म–विश्वास को विकसित कर सुदृढ़ बना सकते हैं।

बोध प्रश्न :

1. आधुनिक विज्ञान द्वारा खोजी गई ग्रन्थियों की सूची बनाइये।
2. तेरह प्रमुख चैतन्य केन्द्रों की तालिका बनाइये।

10.5.0 अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का संतुलन व दर्शन केन्द्र प्रेक्षा

[1] Science Today, June 1991 "Event Horizon" Testing Time

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दर्शन केन्द्र अन्तर्दृष्टि के जागरण का विशिष्ट केन्द्र है। इसका क्षेत्र दोनों भृकुटियों के बीच मस्तिष्क के भीतरी तरफ आगे से पीछे तक फैला हुआ है। प्रेक्षाध्यान में इसका संवादी महत्त्वपूर्ण स्थान पिट्युटरी ग्रन्थि को माना गया है। पिच्युटरी ग्रन्थि के महत्त्व को इस बात से समझ सकते हैं कि यह अन्य सभी ग्रन्थियों को, जो मस्तिष्क के नीचे, शरीर के अन्यान्य भागों में अवस्थित हैं, उनको नियन्त्रित करती है। नीचे की ग्रन्थियों में प्रमुख रूप से एड्रीनल और गोनाड्स की अति सक्रियता से अनिष्ट व मलिन भावनाओं का दबाव बढ़ता है और अनिष्ट भावना से पुनः ग्रन्थियों को अपने कार्य के लिए अर्थात् स्राव छोड़ने के लिए (देखें चित्र 10.3) ऊपर की ग्रन्थि पिट्युटरी (पियुषग्रन्थि) का आदेश प्राप्त करना होता है। इस आदेश के अनुरूप स्राव होने पर उसकी सूचना पिट्युटरी ग्रंथि तक पुनः पहुंचती है। इसे फीड बैक सिस्टम (पुनः पोषण पद्धति) कहते हैं। इसी पद्धति के द्वारा नीचे की ग्रन्थियां अपने कार्यों के अनुरूप स्राव छोड़ने के लिए ऊपर की ग्रन्थियों पर निर्भर रहती है। ऊपर की ग्रंथि यदि शक्तिशाली है तो नीचे की ग्रन्थियों की अनावश्यक मांगों को अस्वीकार कर ग्रन्थि तंत्रीय असंतुलन से व्यक्ति को बचा सकती है। दर्शन केन्द्र की प्रेक्षा द्वारा ऊपर की ग्रन्थि पिट्युटरी को शक्तिशाली बनाया जा सकता है। इससे नीचे की ग्रन्थियों पर मलिन भावनाओं का अनावश्यक भार नहीं पड़ता। ग्रन्थि तन्त्र का संतुलन स्थापित होता है। अन्तर्दृष्टि का जागरण होता है। सकारात्मक भाव और सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होते हैं। आत्म–विश्वास सुदृढ़ बनता है।

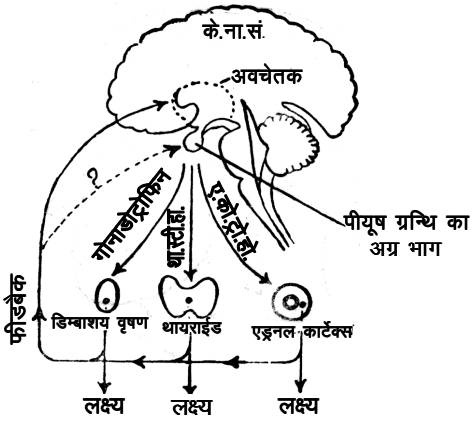

चित्र : 10.3 फीडबैक

10.5.1 प्रयोग–प्रविधि

ध्यान की मुद्रा। महाप्राण ध्वनि। कायोत्सर्ग। अब चित्त को दर्शन केन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां पर होने वाले कम्पन, प्रकम्पन, संवेदन, दबाव आदि का अनुभव करें। केवल देखें। ज्ञाता–द्रष्टा भाव बनाये रखें। चित्त को आगे से पीछे तक फैलाएं। पूरे भाग का अनुभव करें। अनुभव करें – आत्म–विश्वास बढ़ रहा है। (प्रतिदिन यह अभ्यास प्रातः और सांयकाल पांच मिनट अवश्य करें) तीन बार महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग सम्पन्न करें।

बोध प्रश्न :

1. दर्शन केन्द्र पर ध्यान करने से क्या क्या लाभ होते हैं ?
2. दर्शन केन्द्र पर प्रेक्षाध्यान की प्रविधि लिखिये।

10.6.0 सारांश

- सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास के लिए आत्म–विश्वास की सुदृढ़ता नितान्त आवश्यक है। आत्म–विश्वास का स्रोत हमारी स्वयं की दृष्टि है। कहा भी जाता है, जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। अर्थात् व्यक्ति जो चीज जिस दृष्टि से ग्रहण करता है वह उसको वैसी ही लगती है। अतः व्यक्ति का दृष्टिकोण हमेशा सकारात्मक होना चाहिए।
- आत्मविश्वास का प्रभाव हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ता है। एक सुदृढ़ आत्म–विश्वास से सम्पन्न व्यक्ति के जीवन में प्रसन्नता, संतुष्टि और सार्थक उद्देश्य सहज ही दिखाई देते हैं। ***आत्म–विश्वास*** अपने आप पर विश्वास का एक स्तर है। यह स्वयं की स्वीकृति है कि हम अपनी अच्छाई एवं कमियों को कितना स्वीकार करते हैं ? अपने भीतर अच्छाई एवं बुराई दोनों का अस्तित्व है। उसको जैसा है वैसा स्वीकार करते हैं या नहीं।
- आत्म–विश्वास वस्तुतः स्वयं की उपयोगिता, स्वयं की मूल्यवत्ता, स्वयं के अस्तित्व की यथार्थता का स्वयं द्वारा मूल्यांकन है। हम अपने आपको सामने वाले व्यक्ति, घटना, कार्य या परिस्थिति की तुलना में स्वयं को कैसे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

देखते हैं उसी के अनुरूप हमारा आत्म–विश्वास न्यूनाधिक भी होता रहता है। आत्म–विश्वास का आधार है अपनी अच्छाइयों को विकसित करने और बुराइयों से लड़ने की मजबूत भावना।

- आत्म–विश्वास में अभिवृद्धि का पहला चरण है – आत्म–दर्शन। आत्म–दर्शन से अच्छाइयों को विकसित करने का संकल्प व कमियों का साहस पैदा होता है। इससे आत्म–विश्वास सुदृढ़ होता जाता है। आत्म–दर्शन के अन्तर्गत व्यक्ति अपने जीवन के किसी एक क्षेत्र पर निर्भर नहीं रहता है। वह जीवन के सभी पक्षों को समग्रता से देखने, समझने व सही मूल्यांकन करने की कोशिश करता है। आत्म–विश्वास की अभिवृद्धि के साथ–साथ व्यक्ति में आत्म–ज्ञान, आत्म–स्वीकृति, आत्म–सम्मान, आत्मानुशासन व आत्मसंतुष्टि में भी वृद्धि होती जाती है।
- जो व्यक्ति आत्महीन होगा वह आसानी से दूसरों से सम्पर्क नहीं बना पाएगा और समय आने पर सही निर्णय भी नहीं ले पायेगा जिससे उसे अपने आस–पास का वातावरण भयावह और असुरक्षित लगने लगेगा परन्तु व्यक्ति यदि आत्म–विश्वास के साथ चलेगा तो वह स्वयं में जीवंतता, शक्ति, उत्साह और सामर्थ्य की अनुभूति करेगा, वह हर समस्या का समय रहते निदान खोज लेगा और अपने जीवन में संतुलन बना पायेगा।
- इन्द्रियों के द्वारा हम बाह्य जगत् को जानते हैं। उससे स्वयं को नहीं जाना जा सकता है। स्वयं को जानने के लिए अन्तर्दृष्टि आवश्यक है। अन्तर्दृष्टि आवश्यक निर्मल व एकाग्र चैतसिक अवस्था की परिणति है। प्रेक्षाध्यान पद्धति के अन्तर्गत चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का अभ्यास कर हम चित्त को पवित्र व मन को एकाग्र कर सकते हैं।
- भावों की निर्मलता व मलिनता का संबंध हमारी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों से हैं। नीचे की अन्तःस्रावी ग्रन्थियां गोनाड्स व एड्रीनल की अत्यधिक सक्रियता हमारे भीतर वासना और अशुभ वृत्तियों को प्रकट करती हैं। इससे व्यक्ति का दृष्टिकोण, विचार और व्यवहार भी नकारात्मक हो जाता है। इससे पुनः नीचे की अन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर दबाव पड़ता है। यह एक विषाक्त चक्र बन जाता है। इसको तोड़ने का उपाय है ऊपर की ग्रन्थियों को सक्रिय करना। पिच्युटरी ग्रन्थि को दर्शन केन्द्र प्रेक्षा से सक्रिय किया जा सकता है। इससे हमारी अन्तर्दृष्टि जागृत होती है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में संतुलन पैदा होता है। सकारात्मक दृष्टिकोण व आत्म–विश्वास में वृद्धि होती है।

10.7.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. आत्म–विश्वास बढ़ाने का पहला चरण क्या है ?
2. आत्म–स्वीकृति से आपका क्या तात्पर्य है ?
3. व्यक्ति को अपनी अतीन्द्रिय क्षमताओं को जगाने को लिए कौनसे केन्द्र पर ध्यान करना चाहिए ?
4. हमारे (मनुष्य) शरीर में कितने मुख्य केन्द्र अवस्थित हैं ?
5. तैजस् केन्द्र हमारे शरीर में कहाँ होता है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. सुदृढ़ आत्म–विश्वासी एवं कमजोर आत्म–विश्वासी में कोई चार अन्तर बताएं।
2. आत्म–विश्वास के विकास में प्रेक्षाध्यान किस प्रकार सहायक बनता है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. सुदृढ़ आत्म–विश्वासी की विशेषताओं को लिखते हुए, आत्म विश्वास में वृद्धि के उपाय भी लिखें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 3 सफल व्यक्तित्व का विकास

पाठ – 11 समय प्रबन्धन

रूपरेखा

11.0.0 उद्देश्य
11.1.0 भूमिका
11.2.0 समय प्रबन्धन : महत्त्व
11.2.1 सुसंगठित व सार्थक व्यक्तित्व
11.2.2 सफल जीवन
11.3.0 समय प्रबन्धन के सूत्र
11.3.1 लक्ष्य निर्माण
11.3.2 प्राथमिकताओं का निर्धारण
11.3.3 समय विश्लेषण
11.3.4 कार्य विभाजन और निरीक्षण
11.4.0 आत्म विकास
11.4.1 स्वयं के लिए समय
11.4.2 समता का अभ्यास
11.5.0 समय प्रबन्धन का प्रयोग
11.6.0 सारांश
11.7.0 अभ्यास प्रश्न

11.0.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों !

पिछले अध्यायों में हमने व्यक्तित्व विकास से संबंधित अनेक बातों को जाना। सब कुछ जानते हुए भी यदि हम उसके लिए समय नहीं निकालेंगे, समय का प्रबन्धन नहीं सीखेंगे तो जीवन में इनका प्रयोग नहीं हो पाएगा और हम लाभान्वित होने से वंचित रह जाएंगे। अतः समय प्रबन्धन का सैद्धान्तिक और प्रायोगिक पक्ष का विधिवत् अध्ययन इस पाठ के अन्तर्गत करेंगे। इसके अध्ययन से आप जान पाएंगे –

1. समय प्रबन्धन का महत्त्व
2. समय प्रबन्धन के सूत्र
3. समय प्रबन्धन का प्रायोगिक अभ्यास

11.1.0 भूमिका

समय बहुत मूल्यवान है। बीता हुआ समय कभी वापस नहीं आता यह सभी जानते हैं फिर भी सही समय पर सही कार्य करने का कौशल बहुत कम व्यक्तियों के पास होता है। हर व्यक्ति को यह याद रखना चाहिए कि अपने जीवन के समय का बैंक डिपॉजिट खत्म हो रहा है। इसके समाप्त होते ही हमको यहां से जाना पड़ेगा। समय के साथ चलें नहीं तो वह आगे निकल जायेगा। हम स्वयं से एवं समय से पिछड़ जायेंगे। हम समय को बचा तो नहीं सकते किन्तु सार्थक उपयोग कर सकते हैं। अतः प्रतिदिन समय की योजना बनाकर ठीक समय पर निर्धारित काम करने की आदत बना सकते हैं। काम भले ही थोड़ा हो पर उत्कृष्ट हो। इस प्रकार यदि यदि समय प्रबन्धन की कला में हम सिद्धहस्त हो जाएं, फिर समय अपने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आप मिलने लगता है और व्यक्ति सफल व्यक्ति बन जाता है। अंग्रेजी कहावत है – ''टाइम एण्ड टाइड वेट फोन नन'' अर्थात् समय और ज्वार किसी की प्रतीक्षा नहीं करते। अतः हम समय प्रबन्धन के कौशल को जानकर, अभ्यास कर अपने व्यक्तित्व का स्वयं निर्माण करें।

11.2.0 समय प्रबन्धन का महत्त्व

- क्या आप कार्य का अत्यधिक दबाव अनुभव करते हैं ?
- क्या आपके पास कार्य ज्यादा व समय कम है ?
- क्या आप इससे झुंझलाहट व तनाव का अनुभव करते हैं ?
- क्या आप कार्य को भूल जाते हैं ?
- क्या आपको निर्णय लेने में कठिनाई होती है ?

यदि हां ! तो समय प्रबन्धन इन समस्याओं के समाधान में सहयोगी सिद्ध हो सकता है।

वस्तुतः देश के प्रधानमंत्री से लेकर गांव के सरपंच तक, सामान्य दुकानदार से लेकर बड़े उद्योगपति तक, प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक से लेकर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तक सभी को एक दिन में 24 घण्टे का ही समय मिलता है। तब क्यों कुछ व्यक्ति अपने पास बहुत दायित्व और कार्य होने पर भी समय की कमी का अनुभव नहीं करते हैं? दूसरी ओर कुछ व्यक्ति अपने पास कार्य की अधिकता न होने पर भी समय की कमी का अनुभव क्यों करते हैं ? यथार्थ में यह समस्या समय की कमी की नहीं, समय के प्रबन्धन की कमी को दर्शाता है।

प्रत्येक व्यक्ति के प्रतिदिन बैंक एकाउन्ट में 86,400 सैकण्ड होते हैं। केवल प्रश्न यह है कि उनको कौन कैसे खर्च करता है ? सफलता के लिए तीन बातें जरूरी हैं जिसे निम्न सूत्र से समझा जा सकता है –

सफलता = समय + प्रयास + संसाधन

प्रयास और संसाधन कम ज्यादा हो सकते हैं किन्तु समय कम ज्यादा नहीं हो सकता है। वह तो जितना है उतना ही रहेगा। जाने के बाद वापस भी नहीं आयेगा।

11.2.1 सुसंगठित व सार्थक व्यक्तित्व

समय प्रबन्धन व्यक्तित्व विकास का वह सूत्र है जिसके होने पर शेष सारे उपाय कारगर होते हैं अन्यथा कोई उपाय काम नहीं करता। कचरा निकालने की बुहारी अनेक तिनकों से बनी होती है। उसके ऊपर जब तक रस्सी का बंधन होता है तब तक वह मिट्टी, धूल, कचरे की सफाई में सहयोगी बनती है। यदि रस्सी खुल जाये तो सारे तिनके बिखर जाते हैं। कचरा निकालने वाली बुहारी स्वयं कचरा बन जाती है। समय प्रबन्धन भी उस रस्सी के समान है जो तिनकों की तरह बिखरे हुए व्यक्तित्व के अनेक गुणों को बांध कर उसे सार्थक व सुसंगठित व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करती है। ***समय प्रबंधन वस्तुतः दूसरों के द्वारा नहीं अपितु स्वयं द्वारा स्वयं का बन्धन है। यह आत्मसंयम का सूत्र है। निज पर शासन है।*** अतः ये पंक्तियां बहुत सार्थक है कि –

समय की धार में सब बह जाया करते हैं।
समय को पहचानने वाले ही इतिहास बनाया करते हैं।।

भगवान महावीर ने कहा – ***खणं जाणाहि पंडिए।*** पंडित वही है जो समय की, अवसर की कीमत जानता है। जो समय की कद्र नहीं करता, उसकी समय भी कद्र नहीं करता। जो अतीत से व्यथित और भविष्य से चिन्तित रहते हैं वे वर्तमान में आए हुए अवसरों का लाभ नहीं उठा पाते हैं। वास्तव में देखा जाए तो वर्तमान ही अपना है। जिसमें हम सब कुछ कर सकते हैं। क्योंकि अतीत सपना है और भविष्य केवल कल्पना है। करने के लिए केवल वर्तमान ही अपना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बोध प्रश्न :

1. जीवन में समय प्रबन्धन का महत्व क्या है ?
2. आत्म संयम का सूत्र क्या है ?

11.2.2 सफल जीवन

व्यक्ति का जीवन बहुआयामी होता है। उसे पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, वैयक्तिक व धार्मिक सभी स्तरों पर अपनी जिम्मेदारियों को कुशलतापूर्वक निर्वहन करना होता है तभी उसे जीवन में सफलता व संतोष का अनुभव होता है। ***जीवन में सफलता व संतोष के लिए सभी क्षेत्रों में परस्पर समन्वय व संतुलन बनाने की आवश्यकता होती है।*** इस दृष्टि से सभी क्षेत्रों में समय का सही नियोजन नितान्त आवश्यक है, अन्यथा सभी क्षेत्रों से समय–समय पर आने वाली अपेक्षाएं, आवश्यकताएं, जिम्मेदारियां सही समय पर पूरी नहीं हो सकती। जो अन्ततः असंतोष, अशान्ति और असफलता का कारण बनती है। इस बहु आयामी जीवन में आनन्द से सारे कार्यों को निपटाने के लिए समय प्रबंधन बहुत उपयोगी बनता है।

11.3.0 समय प्रबन्धन के सूत्र

कुछ लोग ऊंचे से ऊंचे पद पर पहुंच जाने पर भी बड़े से बड़े दायित्व का निर्वाह करते हुए भी कभी भी समय की कमी का अनुभव नहीं करते। ऐसा क्यों होता है ? इसका रहस्य खोजा जाये तो पायेंगे कि ऐसे व्यक्तियों के जीवन में समय प्रबन्धन के सूत्रों का विशेष अभ्यास होता है। समय–प्रबन्धन के पाँच सूत्रों की यहाँ चर्चा करेंगे –

1. लक्ष्य–निर्माण
2. प्राथमिकताओं का निर्धारण
3. समय–विश्लेषण
4. कार्य–विभाजन और निरीक्षण
5. आत्म–विकास

11.3.1 लक्ष्य निर्माण

समय प्रबंधन का रहस्यमय व प्रथम सूत्र है – अपने जीवन में एक बड़े लक्ष्य का निर्माण करना। ***जिसने अपने जीवन में एक बड़ा, महान, पवित्र, परोपकारी व कल्याणकारी लक्ष्य बना लिया उसका समय प्रबंधन सहज रूप से स्वतः होता चला जाता है। उसकी अन्तःप्रेरणा जागृत होती है।*** वह अन्तःप्रेरणा उसे अनावश्यक अथवा लक्ष्य से विपरीत अथवा कम महत्त्वपूर्ण कार्यों में खर्च होने वाले समय से स्वतः बचा लेती है। जिसे अपने जीवन को सार्थक बनाना है, अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है, एक–एक क्षण को उपयोगी बनाना है। वह अपने जीवन में एक ऊंचा लक्ष्य बनाये। इससे उसके भीतर से शक्ति का स्रोत खुल जायेगा। समय की कोई कमी नहीं रहेगी। विपरीत परिस्थितियों से जूझने की क्षमता आ जायेगी, सफलता को पाने की ललक पैदा हो जायेगी। धैर्य भी आ जायेगा।

11.3.2 प्राथमिकताओं का निर्धारण

क्या लक्ष्य निर्माण बिना समय प्रबंधन नहीं हो सकता ? हो सकता है किन्तु उनको विशेष लाभ मिलता है जिनका लक्ष्य स्पष्ट एवं तीव्र होता है। उनके जीवन में प्राथमिकताएं भी स्वतः सहज रूप से निर्धारित होती चली जाती हैं। अनावश्यक कार्य छूटते चले जाते हैं। यद्यपि अनेक लोगों के जीवन में बहुत बड़ा लक्ष्य नहीं होता है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के सामने अनेक कार्य अवश्य होते हैं। उनकी अपनी आकांक्षाएं और इच्छाएं होती हैं। उनके ऊपर अनेक प्रकार की जिम्मेदारियां होती हैं। उनको भी पूरा करने के लिए व्यवस्थित जीवन जीने के आवश्यकता होती है अन्यथा कर्तव्य व दायित्व भार लगने

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लगते हैं। यह आनन्द दायक जीवन उस भार के तले दुःखदायक बन जाता है। निरन्तर दबाव व तनाव का अनुभव होता है। व्यवस्थित जीवन के लिए आवश्यक है– समय प्रबंधन। इसका दूसरा सूत्र है– प्राथमिकताओं का निर्धारण करना। इसके लिए आप शान्ति से बैठकर अपने वर्तमान जीवन के सभी कार्यों का अवलोकन करें। अपेक्षाओं, दायित्वों और आकांक्षाओं को एक डायरी में नोट कर लें फिर उन्हें, अत्यावश्यक, आवश्यक, विचारणीय तीन श्रेणियों में चिन्हित कर विभाजित कर लें। उनमें भी जो अत्यावश्यक है, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, उन्हें प्राथमिकता देते हुए उनकी सूची तैयार कर लें। इसका प्रतिदिन अवलोकन करें। आवश्यकतानुसार पुनर्निर्धारण भी करते रहें। ***इससे आपको कार्य की सार्थकता व स्पष्टता दिखने लगेगी। समय का अच्छा उपयोग कर पायेंगे। जीवन में आनन्द व प्रसन्नता का अनुभव करेंगे, हल्केपन का अनुभव करेंगे।***

आवश्यक कार्य को आज ही कर लें जिससे वह कल अत्यावश्यक न बन जाये। मानलो 31 तारीख तक बिजली का बिल भरना है। आप सोचते हैं अभी एक महिना पड़ा है। भर लेंगे। 29 तारीख आ जाती है। चिन्ता होने लग जाती है। भागते–भागते जाते हैं। आगे देखते हैं कि आप जैसे वहां सौ व्यक्ति पंक्ति में खड़े हैं। जो काम एक घण्टे में होना था अब उस काम को पांच गुणा समय अधिक लगेगा। अतः यह कहावत चल पड़ी कि Stich in time saves nine सही समय पर फटा हुआ कपड़ा सील दिया जाये तो नौ गुणा समय की बचत होती है। एक प्रसिद्ध दोहे में कहा भी गया है कि 'काल करे सो आज कर आज करे सो अब पल में प्रलय होगी बहुरि करोगे कब ?

11.3.3 समय विश्लेषण

समय प्रबंधन का तीसरा सूत्र है– समय का विश्लेषण करना। अर्थात् अपने पास उपलब्ध समय की जांच–पड़ताल करना। किस कार्य में कितना समय लग रहा है, समय का कितना सदुपयोग हो रहा है ? जब आपकी प्राथमिकताएं स्पष्ट हो गई तो समय का नियोजन करना भी आसान हो जायेगा। किस कार्य में समय को अधिक लगाना है या कम करना है यह आपके लिए सरल हो जायेगा। इससे अनावश्यक कार्यों में होने वाले समय के अपव्यय में स्वतः कमी होती चली जायेगी। यह सब एक दिन में नहीं हो जायेगा। इसका भी धैर्य से अभ्यास करते रहना है। स्वयं के प्रति जागरुक रहकर स्वयं का निरीक्षण करने व नियंत्रण करते रहने से समय प्रबंधन में दक्षता भी बढ़ती चली जायेगी। आप अपनी भावनाओं कल्पनाओं और योजनाओं को भी मूर्त्त रूप देने हेतु सक्षम होते चले जायेंगे।

11.3.4 कार्य विभाजन और निरीक्षण

हम सबमें एक चमत्कारिक शक्ति है। जिसका हम संभवतः उपयोग नहीं कर पाते हैं अपने सहयोगियों, संबंधियों व पारिवारिक जनों की श्रेष्ठ योग्यताओं, गुप्त शक्तियों और सुप्त क्षमताओं को प्रोत्साहित करना। कार्य विभाजन कर उन्हें अवसर देना। उनका मार्गदर्शन करना, उनका निरीक्षण करना। ऐसा करके न केवल हम अपने आपको हल्का रखेंगे बल्कि साथियों को भी अपनी क्षमताओं का बोध करा पायेंगे। उनके जीवन में भी आनन्द व उल्लास जगा पायेंगे। हमारे पास समय की भी कोई कमी नहीं रहेगी। यदि सभी कार्यों को स्वयं ही करने का आग्रह रखेंगे तो आप पर कार्यभार तो बढ़ेगा ही साथ ही नये विकास के लिए समय नहीं बच पायेगा। अतः इस जादुई चिराग का उपयोग करें, दूसरों की क्षमताओं को परखें, उनकी प्रशंसा करें, उन्हें प्रोत्साहित करें, मार्गदर्शन करें, कार्य का दायित्व सौंपें। निरीक्षण करना न भूलें, जब तक आश्वस्त न हो जायें तब तक निरीक्षण व मार्गदर्शन करते रहें।

बोध प्रश्न :

---

1. क्या कार्य विभाजन जादूई चिराग है ? कैसे ?
2. समय प्रबन्धन और लक्ष्य निर्माण का क्या सम्बन्ध है?

11.4.0 आत्म–विकास

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

समय प्रबंधन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहलू है – ***आत्म–विकास अर्थात् स्वयं के विकास पर ध्यान देना।*** समय प्रबंधन के लिए लक्ष्य बनाना, प्राथमिकताओं को निर्धारित करना, समय का विश्लेषण करना जितना आवश्यक है उससे भी अधिक इन सबको क्रियान्वित करने वाला जो कर्ता है, आप स्वयं हैं उसके विकास पर ध्यान देना। हमने अपने स्वास्थ्य पर समय का नियोजन किया या नहीं ? आन्तरिक क्षमताओं के विकास पर शक्ति लगाई या नहीं? इन बातों पर विचार करना भी आवश्यक है।

एक गृहिणी प्रतिदिन चाकू से काम लेती है। वह जानती है कि जब तक चाकू की धार तेज है तब तक ही इससे आसानी से काम लिया जा सकता है। चाकू के भोंथरा होने पर उससे काम लेना कष्टदायक और समय का अपव्यय है। इसी प्रकार ***शरीर, वाणी और मन ये हमारे सभी कार्यों को सम्पादित करने वाले उपकरण हैं। इनकी धार को तेज करने के लिए समय का नियोजन करना समय–प्रबंधन व जीवन में सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।***

अनेक बार व्यक्ति सफलता के शिखरों को चूमता चला जाता है। स्वयं के शरीर और मन पर ध्यान ही नहीं देता है। एक बहुत सफल प्रबंधक एक दिन डॉक्टर के पास चेक–अप कराने पहुंचा। डाक्टर ने गंभीरता से निरीक्षण किया तो पाया कि उसको रक्त कैंसर है। उस व्यक्ति ने जब यह सुना तों उसे तीव्र मानसिक आघात लगा। उसको अपना भविष्य अंधकारमय दिखने लगा, मौत दिखने लगी। डॉक्टर से वार्ता के दौरान पता चला कि शरीर और मन को विश्राम व उचित पोषण नहीं मिला। कार्य का दबाव व मानसिक तनाव झेलते–झेलते उसके पास स्वयं के शरीर की देखभाल करने, उचित समय पर खान–पान, नींद और विश्राम के लिए भी समय नहीं था। परिणामस्वरूप वह भयंकर आत्मघाती व्याधि से ग्रसित हो गया।

11.4.1 स्वयं के लिए समय

एक कहावत प्रचलित है– अट्ठावन घड़ी काम की, दो घड़ी राम की। अर्थात् दिन भर में दो घड़ी (48 मिनट) एक मुहूर्त्त राम के लिए, अपनी आत्मा के लिए, स्वयं के विकास के लिए सुरक्षित रखें। भगवान महावीर ने अच्छे जीवन के लिए, स्वयं के विकास के लिए दिन भर में कम से कम एक मुहूर्त्त (48 मिनट), का समय लगाकर प्रयोग करने की बात कही। जीवन में समता (सामायिक) और संतुलन के अभ्यास की बात कही। स्वयं पर स्वयं के नियन्त्रण के प्रयोग की बात कही। जिस व्यक्ति के पास अपने स्वास्थ्य की देखभाल के लिए समय नहीं है, अपनी शक्तियों के विकास के लिए समय नहीं है, ऐसे व्यक्तियों के जीवन में एक समय ऐसा आता है, पानी बांध के ऊपर से निकलने लगता है फिर बहुत चाह कर भी वे कुछ नहीं कर पाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि व्यक्ति स्वयं के विकास, आत्म–विकास के लिए भी दो घड़ी (48 मिनट) का समय निकालें।

मनोबल, एकाग्रता, आत्म–विश्वास, मानसिक शान्ति, अन्तर्दृष्टि के जागरण आदि के लिए लगने वाला समय बहुत उपयोगी है। यह परलोक सुधार के लिए ही नहीं किन्तु वर्तमान जीवन को आनन्ददायक व सफल बनाने के लिए है। शक्तियों के विकास से कार्यक्षमता बढ़ेगी। एकाग्रता के अभाव में जो कार्य पहले 10 घण्टे में होता था, वही कार्य एकाग्रता के कारण 5 घण्टे से कम समय में ही पूरा हो जायेगा। निर्णय लेने में जहां अनेक दिन व महीने भी बीत जाते हैं वहीं अन्तर्दृष्टि के विकास से चन्द मिनटों में सही निर्णय सम्पन्न हो जाते हैं। अतः आप अपनी आन्तरिक क्षमता को गौण नहीं करें। अपने भीतर के वैभव को पहचानें। जीवन में सफलता एवं सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिए उसका पूरा उपयोग करें। यदि आप अपने भीतर की सम्पदा को, शक्ति को गौण करेंगे तो उसका अर्थ होगा कि आप ईंधन की परवाह किये बिना वाहन चलाना चाहते हैं। आखिर गाड़ी कितने दिन चलेगी ?

11.4.2 समता का अभ्यास

आत्म विकास के लिए एकान्त स्थान में, मौन व शान्त बैठकर समता (सामायिक) का अभ्यास करें। हमारे जीवन में निरन्तर काम आने वाले उपकरण शरीर, मन व भावों का निरीक्षण करें। निरीक्षण से उनको शक्ति मिलती है। अनावश्यक तत्त्व दूर होते हैं। जीवन को प्रभावित करने वाले श्वास, प्राण व कर्म (प्रवृत्ति) का निरीक्षण करें। चैतन्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्वरूप आत्मा का निरीक्षण करें। स्वयं के शुद्ध स्वरूप का चिन्तन करें। इसके लिए प्रतिदिन 48 मिनट प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करें।

शुद्ध चैतन्य, आत्मा का मौलिक गुण है – देखना, अवलोकन करना, निरीक्षण करना। आत्म निरीक्षण से हमारे भीतर ऐसा संतुलन पैदा होता है कि हम विपरीत परिस्थिति में भी अप्रभावित रह सकते हैं। हमारा संकल्प अटूट बन जाता है। हमारी दृष्टि विचलित नहीं होती। हमारा ज्ञान अवरुद्ध नहीं होता है। विवेक और प्रज्ञा का जागरण हो जाता है। आत्म–नियंत्रण आ जाता है। हमारे ऊपर दूसरे के नियंत्रण की कोई जरूरत नहीं रहती। हमारा स्वतंत्रता की दिशा में तीव्र विकास होता है। यह समता का प्रयोग भीतर के प्रकाश को पैदा करने के लिए है जिससे सम्पूर्ण जीवन का यात्रा–पथ आलोकित हो जाये।

बोध प्रश्न :

1. आत्म निरीक्षण से क्या तात्पर्य है ?
2. समता का अभ्यास क्यों और कैसे करना चाहिए ?

11.5.0 समय प्रबन्धन : प्रायोगिक अभ्यास

समय प्रबंधन के सिद्धान्त व सूत्रों के ज्ञान के साथ–साथ उसके प्रायोगिक अभ्यास की आदत बनायें। समय–प्रबन्धन का न्यूनतम प्रायोगिक अभ्यास है – आत्म–निरीक्षण। स्वयं द्वारा स्वयं की दैनिक चर्या का प्रतिदिन अवलोकन। इस अवलोकन से सहज पता लगेगा कि –''मैंने क्या किया है ? क्या अवशिष्ट रह गया है ? क्या कर सकता था किन्तु नहीं कर पाया ? दिन भर में मेरे से कौन–कौन सी गलतियां हुई हैं ? वे कौनसी गलतियां हैं जिसे मैं चाह कर भी नहीं छोड़ पा रहा हूं ? आदि–आदि। इनके बोध से आपका जीवन व्यवस्थित होने लगेगा। आपकी अच्छाइयों को पोषण मिलेगा। उनका विकास होगा। आपकी स्मरण शक्ति तीव्र हो जायेगी। **आपके अपने अन्तर्मन (अवचेतन मन) से, अपने भीतर के गुरु से सम्पर्क हो जायेगा। आपको स्वतः भीतर से मार्ग दर्शन मिलने लगेगा कि क्या करना है ? क्या नहीं करना है ?** आदि। आपको सही समय पर सही कार्य याद आने लगेगा। आपको अपने कार्यों व समय के समुचित समन्वय में अद्‌भुत सफलता मिलेगी। आपके विकास की गति तीव्र हो जायेगी। इससे हमारे व्यक्तित्व की सभी बिखरी हुई शक्तियां संगठित होकर निखर जायेगी।

11.5.3 आत्म निरीक्षण

इसका प्रयोग प्रतिदिन दिन में दो बार पांच–पांच मिनट के लिए करें। रात को सोते समय एवं प्रातः उठते समय। सोते समय करने से हमने क्या किया है और क्या करना शेष है – इसके प्रति जागरुकता बढ़ती है। प्रातः इसलिए करें कि जो करना शेष रह गया है, उसके प्रति हमारी पूरी मानसिक तैयारी हो जाए।

प्रयोग प्रविधि : सोने से पूर्व प्रयोग को एकान्त और शान्त स्थान में प्रारम्भ करें। घड़ी में समय देख लें। सुविधाजनक आसन में बैठें। आंखें कोमलता से बन्द करें। अपने इष्ट और गुरु का स्मरण करें। अनुभव करें कि एक घण्टा पूर्व मैं क्या कर रहा था ? इसी प्रकार क्रमशः प्रातः उठने तक एक–एक घण्टा पीछे चले जाएं। पुनः प्रातः से प्रारम्भ कर वर्तमान समय तक आ जायें। पुनः अपने ईष्ट व गुरु का स्मरण करते हुए प्रयोग सम्पन्न करें।

11.6.0 सारांश

- समय प्रबन्धन व्यक्तित्व विकास का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है जो व्यक्तित्व के अनेक बिखरे हुए गुणों को बांध कर उसे सुसंठित रूप देता है। यह आत्म–संयम का सूत्र है। समय प्रबन्धन सफल जीवन जीने का एक विशिष्ट उपाय है। इसके द्वारा व्यक्ति अपनी जिम्मेदारियों का कुशलता पूर्वक निर्वहन करते हुए सफल जीवन जीता है एवं संतोष का अनुभव करता है।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- समय प्रबन्धन के कुछ सूत्र हैं – लक्ष्य निर्माण, प्राथमिकताओं का निर्धारण, समय विश्लेषण और कार्य विभाजन। आत्म विकास भी समय प्रबन्धन का महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी साधन है। यह स्वयं के विकास के लिए समय का नियोजन है। इससे आन्तरिक क्षमताओं का विकास होता है। इससे हम अमूल्य समय को बचाकर अन्य कार्यों में लगा सकते हैं।

- समय प्रबन्धन का प्रायोगिक अभ्यास आत्म–निरीक्षण है। इससे हमारा सम्पर्क स्वयं से हो जाता है। यह अन्तश्चेतना को जगाता है। स्मरण शक्ति बढ़ती है। इससे व्यक्तित्व की शक्तियाँ संगठित होने लगती है। इसे प्रतिदिन प्रातः एवं सायं पांच–पांच मिनट के लिए करना चाहिए।

11.7.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जीवन में सफलता और संतोष के लिए किसकी आवश्यकता होती है?
2. समय प्रबन्धन का प्रथम सूत्र क्या है ?
3. व्यवस्थित जीवन जीने का सूत्र क्या है ?
4. भगवान महावीर ने अच्छे जीवन के लिए किसके अभ्यास की बात कही ?
5. आत्मा का मौलिक गुण क्या है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. समय प्रबन्धन और प्राथमिकताओं के निर्धारण से आप क्या समझते हैं ?
2. आत्म निरीक्षण क्या है तथा इसके क्या लाभ है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. समय प्रबन्धन पर संक्षित लेख (निबंध) लिखें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 3 सफल व्यक्तित्व का विकास

पाठ – 12 लेखन क्षमता का विकास

रूपरेखा

12.0.0 उद्देश्य
12.1.0 भूमिका
12.2.0 लेखन का प्रयोजन
12.2.1 स्व–पर विकास
12.3.0 स्व–प्रबन्धन
12.3.1 अपने प्रति जागरुकता
12.3.2 अवचेतन मन से सम्पर्क
12.3.3 संस्कारों का विवेचन
12.3.4 मार्ग–दर्शन
12.3.5 जीवन–विकास का साधन
12.3.6 जीवन में सन्तुलन
12.4.0 सम्प्रेषण की शक्ति का विकास
12.4.1 अध्ययन की गहनता
12.4.2 समस्याओं का समाधान
12.5.0 लेखन की प्रक्रिया
12.5.1 प्रथम चरण
12.5.2 दूसरा चरण
12.5.3 डायरी लेखन
12.6.0 सारांश
12.7.0 अभ्यास प्रश्न

12.0.0 उद्देश्य

ज्ञानार्थी भाई बहनों ! अब तक 11 पाठों में आपने विभिन्न विषयों पर अपनी जिज्ञासाओं का समाधान अवश्य किया होगा। यह अध्याय इस उद्देश्य से लिखा गया है कि ज्ञानार्थी लेखन का उपयोग अपने सफल व्यक्तित्व को विकसित करने में करें। साथ ही अपनी अभिव्यक्ति लेखन के सशक्त माध्यम से भी सफलतापूर्वक करें। लेखन क्यों ? इस प्रश्न के उत्तर में महिने भर लिखे गये लेखन के मंथन से जो मक्खन उपलब्ध हुआ है उसे ज्ञानार्थियों की लेखन क्षमता के लिए बांटा जा रहा है। इस पाठ के स्वाध्याय से आप जान पाएंगे –

1. लेखन का प्रयोजन
2. स्व–प्रबन्धन में लेखन क्षमता का महत्व

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. सम्प्रेषण की शक्ति का विकास

4. लेखन की प्रक्रिया

आशा है ज्ञानार्थी अभिव्यक्ति की इस कला में भी निपुण बनेंगे।

12.1.0 भूमिका

कहावत है सौ बार कही बात और एक बार लिखी हुई बात समान प्रभाव छोड़ती है। आज इतने इलेक्ट्रोनिक मीडिया के बावजूद मुद्रित दैनिक, साप्ताहिक आदि समाचार पत्र–पत्रिकाएं अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं।

प्रेमचंद ''आदर्शोन्मुख आदर्श'' को आदर्श मानकर लिखते थे। तुलसीदास ने ''स्वांत सुखाय'' साहित्य की रचना की। सूरदास का वात्सल्यमय साहित्य अवचेतन मन से उबलते दूध की तरह उफनता हुआ निकला। कबीर का आध्यात्मिक साहित्य भी अमर हो गया।

गणाधिपति गुरुदेव तुलसी का हिन्दी एवं राजस्थानी में लिखा साहित्य भारत की सीमाएं लांघ कर बाहर लोकप्रिय बन रहा है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का दर्शन साहित्य न केवल हिन्दी साहित्य का बहुमूल्य खजाना है जो भारत की क्षेत्रीय एवं अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में भी अनुवादित होकर विश्व साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान बना रहा है।

लेखन विचारों को स्थायित्व प्रदान करता है। लेखन इन्द्रधनुषी रंग लिये हुए होता है जैसे– साहित्य लेखन, आध्यात्मिक लेखन, पत्रकारिता, डायरी लेखन, संपादकीय लेखन, समीक्षात्मक लेखन आदि। अटलबिहारी वाजपेयी के शब्दों में – ''इलेक्ट्रोनिक मीडिया के बावजूद मुद्रित शब्दों का महत्व सदा सर्वदा बना रहेगा।'' अतः लेखन का महत्व स्वयं सिद्ध है। इंसानियत के भावों की एकता का एक उदाहरण प्रस्तुत है। मुनिश्री सागरमलजी श्रमण अपनी एक कविता में लिखते हैं – ''हास्य से भी मधुरतर है आंसुओं का खार''। पश्चिम के लोकप्रिय कवि पर्सी ब्राइस शैली लिखते हैं –'' अवर स्वीटेस्ट सोंग्स आर दोज देट टेल आफ सेडेस्ट थोट्स'' अर्थात् हमारे मधुरतम गीत वे हैं जो सबसे दुःखभरे भाव व्यक्त करते हैं। लेखन की गहराई मानवीय एकता स्थापित करती है।

इस प्रकार लेखन कला अभिव्यक्ति का एक शक्तिशाली साधन है, माध्यम है। इससे लेखक अपनी बात कहता है और दूसरों के दिलों में उतार देता है। यह एक ऐसी सम्प्रेषण शक्ति है जिससे वह दूर बैठे लाखों लोगों से अपनी बात कह सकता है। लेखन कला के विकास के लिए यह आवश्यक है कि लेखक उसके उद्देश्य के प्रति अधिक से अधिक स्पष्ट बने। लेखन के उद्देश्य की स्पष्टता लेखन के प्रति समर्पण व विकास में अभूतपूर्व योगदान देती है। उद्देश्य जितना अधिक स्पष्ट, महान व अपरिहार्य होगा, लिखने की प्रेरणा भी उतनी ही शक्तिशाली होगी। इससे व्यक्ति लाभान्वित होगा एवं समाज को भी लाभ मिलेगा।

12.2.0 लेखन का प्रयोजन

उद्देश्य में स्पष्टता आये यह आवश्यक तो है लेकिन है कठिन। हमारा गलत दृष्टिकोण अनेक बार बाधक बनता है। हमें लिखने से रोकता भी है। ऐसी ही एक बाधा है– नाम, ख्याति, प्रशंसा एवं कीर्ति की आकांक्षा।

नाम, ख्याति, कीर्ति की आकांक्षा मनुष्य की एक मौलिक वृत्ति है। इसकी संतुष्टि के लिए व्यक्ति अनेक बार जोखिम भरे कार्य भी कर लेता है। इसकी प्रेरणा से लेखन का प्रारम्भ भी हो सकता है किन्तु वह दीर्घकालिक नहीं बन पायेगा। प्रारम्भ होना कोई बुरी बात नहीं है किन्तु यहीं तक सीमित रहना अच्छा नहीं है। स्वयं के परिपूर्ण विकास की दृष्टि से वृत्तियों का तुष्टिकरण कभी भी वांछित नहीं होता है। करणीय वही है जो आन्तरिक दोषों से व्यक्ति को मुक्त करा सके। अपने से परिचित करा सके। अध्यात्म की दृष्टि से ''लेखन'' के लिए ऐसे प्रयोजन की खोज करनी होगी जो 'स्व' और 'पर' दोनों के विकास में सक्षम हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लेखन कला से लेखक को कालांतर में ख्याति एवं प्रसिद्धि प्रासंगिक रूप में मिल सकती है। यह गौण बात है। यह तथ्य तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र एवं कार्य से जुड़ा हुआ है। इसको नकारा नहीं जा सकता किन्तु यहीं पर अटक जाना, रुक जाना, अध्यात्म की दृष्टि से, स्वयं के विकास की दृष्टि से बहुत बड़ी बाधा है।

12.2.1 स्व–पर विकास

अपने व दूसरों के विकास की दृष्टि से लेखन कला के प्रयोजन क्या–क्या हो सकते हैं ? वे व्यक्तित्व विकास में किस प्रकार सहयोगी होते हैं, इन प्रश्नों पर चिन्तन–मनन करना है। उपरोक्त दृष्टि से लेखन–कला के निम्नलिखित मुख्य प्रयोजन बनते हैं :–

1. स्व–प्रबन्धन के लिए
2. सम्प्रेषण के लिए
3. अध्ययन को पैना एवं सूक्ष्म बनाने के लिए
4. समस्या समाधान के लिए

12.3.0 स्व–प्रबन्धन

लेखन कला स्व–विकास का भी एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इससे व्यक्ति अपने आप से सम्पर्क स्थापित कर सकता है। अपने अचेतन मन से सम्पर्क साध सकता है। इससे संस्कारों का विरेचन होता है। जीवन–विकास में सहयोग मिलता है।

12.3.1 अपने प्रति जागरूकता

लेखन सम्पर्क का महत्त्वपूर्ण साधन है। इससे हमें जहां दूसरों से सम्पर्क साधने में सफलता मिलती है वहीं इसके माध्यम से हम अपने आप से भी सम्पर्क साध सकते हैं। ***लेखन आत्म–निरीक्षण का महत्त्वपूर्ण माध्यम बनता है। हम अपने बारे में जब दैनिक गतिविधियों को तटस्थ होकर लिखना शुरु करते हैं तब इससे अपने आप के प्रति जागरूकता बढ़ती है।*** यह जागरूकता हमारे आध्यात्मिक विकास की महत्त्वपूर्ण सीढ़ी बनती है।

12.3.2 अचेतन मन से सम्पर्क

तटस्थ होकर स्वयं के बारे में लिखने से अनेक अज्ञात तथ्यों का, जो हमारे भीतर हैं, पता चलता है। ***उस सामग्री से सम्पर्क होता है जो हमारे चेतन मन के सीधे सम्पर्क में नहीं हैं किन्तु गहरे में, अचेतन मन में छिपी पड़ी है।*** इस अवबोध से लेखन द्वारा अतिरिक्त आह्लाद की अनुभूति होती है। परिणाम स्वरूप अनेक बार ऐसा लगता है कि क्या ऐसा मैं लिख सकता हूं ? क्या यह मैंने लिखा है ? आदि। यह आनन्द कहीं बाहर से नहीं किन्तु भीतर के स्रोत उद्घाटित होने से प्रवाहित होता है।

12.3.3 सस्कारों का विरेचन

स्वयं के बारे में तटस्थ होकर लिखने से हमारी बुरी भावना, बुरे संस्कार एवं अनेक बुराइयों को बाहर निकालने का अवसर मिलता है। उनका विरेचन होता है। धीरे–धीरे उनके प्रभाव कमजोर पड़ने लगते हैं। हमारी आन्तरिक शुद्धि होती है। लिखने के बाद हल्केपन का अनुभव इस बात का प्रमाण है।

12.3.4 मार्ग–दर्शन

स्व–लेखन एक ऐसा मित्र और मार्गदर्शक है जो सदैव हमारे साथ रहता है। उसके पास हम निस्संकोच अपना हृदय खोल सकते हैं। ***कठिन से कठिन घड़ियों में यह अतीत को हमारे सामने अनावृत्त कर मार्ग–दर्शन करता है। दिशा–बोध देता है।*** अतीत से वर्तमान को संवारने की प्रेरणा प्रदान करता है। भविष्य का दर्पण बनता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

12.3.5 जीवन–विकास का साधन

जीवन के अनेक क्षेत्र है। उन सबकी अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर व्यक्ति का जीवन जितना व्यवस्थित एवं योजनाबद्ध होता है उतनी ही सफलता की संभावना बढ़ जाती है। इससे जीवन में निश्चिंतता भी रहती है। अपने बारे में नियमित लेखा–जोखा जीवन–विकास का महत्त्वपूर्ण साधन है। यह अपने अनुभवों से सीख लेने का महत्त्वपूर्ण उपाय है।

बोध प्रश्न :

1. लेखन कला क्या है?
2. लेखन कला स्व–विकास का साधन कैसे है?

12.3.6 जीवन में संतुलन

तटस्थ लेखन से हमारी अच्छाइयां एवं खामियां दोनों उभर कर सामने आती हैं। अच्छाइयों से हमें प्रोत्साहन मिलता है। कमियों से अहं पर प्रहार होता है। कमियों को दूर करने की आन्तरिक इच्छा जागती है। इससे जहां अहं विचलित होता है, वहीं अच्छाइयों के बोध से हीन भावना भी दूर होती है। स्वयं के बारे में सही अवधारणा बनती है। आत्म–विश्वास बढ़ता है। अपनी अच्छाइयों एवं बुराइयों से परिचय होता है। अपनी क्षमताओं के सही बोध में सहायता मिलती है। जीवन में संतुलन को साधने में अभूतपूर्व सहयोग मिलता है।

12.4.0 सम्प्रेषण की शक्ति का विकास

अध्यात्म जीवन का अभिन्न अंग है। इससे जीवन में शान्ति व समाधि की अनुभूति होती है। इससे ही जीवन में गहराई व जीवन की सार्थकता का बोध होता है। अध्यात्म के महत्त्व को जन–जन तक पहुंचाने के लिए सम्प्रेषण कौशल या अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास अत्यन्त अपेक्षित है।

अनेक महापुरुष अपनी अभिव्यक्ति की क्षमता व कौशल से ही अपने महत्त्वपूर्ण विचारों को जन–जन तक पहुंचाने में सफल हुए हैं। गणधरों की रचनाधर्मिता का ही सुफल है कि सदियों के बाद भी तीर्थंकरों की वाणी से मुमुक्षु जन लाभान्वित हो रहे हैं। आचार्य भिक्षु ने अपने रचना कौशल व अभिव्यक्ति की क्षमता से ही भगवान महावीर के सिद्धान्तों को लोगों तक लोक भाषा में पहुंचाया। गणाधिपति गुरुदेव तुलसी एवं आचार्य महाप्रज्ञ ने अपनी ओजस्वी अभिव्यक्ति व रचनाधर्मिता से लाखों लोगों तक अध्यात्म का संदेश पहुंचाया है।

सामान्यतया वक्तृत्व कला से जहां आमने–सामने लोगों को ही लाभ पहुंचता है वहीं लेखन–कला से दूर–दूर तक बैठे लोगों से परोक्ष सम्पर्क होता है। हजारों किलोमीटर की दूरियां भी लेखन के सम्प्रेषण में बाधक नहीं बन पाती है। लेखन कला से निष्पन्न साहित्य से व्यक्ति अपने समय की अनुकूलतानुसार लाभ उठा सकता है जबकि वक्तृत्व कला में या भाषण सुनने के लिए जहां सशरीर उपस्थिति सामान्यतया अवश्यंभावी हो जाती है। ***ज्ञान के संरक्षण व सम्प्रेषण में लेखन कला का अद्वितीय स्थान रहा है।*** अतः अध्यात्म को यदि अधिक से अधिक जनग्राही बनाना है तो इसे आज की भाषा में, शब्दावली में अभिव्यक्ति के हर कोणों से अभिव्यक्त करना जरूरी है। यह अपेक्षा हर काल में बनी रहेगी जिसकी आपूर्ति अध्यात्म का जीवन जीने वाले लोगों से ही संभव हो सकेंगी।

12.4.1 अध्ययन की गहनता

ज्ञान के विकास के लिए तत्संबंधी साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। अध्यात्म अभ्यास की वस्तु है – अध्ययन की कम किन्तु अध्यात्म की सूक्ष्मताओं को समझने के लिए अध्ययन अनेक बार आवश्यक हो जाता है। अनुभवी साधकों के अनुभव प्रेरक बनते हैं, गति देते हैं। यदि अध्यात्म को दूसरों तक पहुंचाना है तो अध्यात्म के अध्ययन की आवश्यकता अधिक तीव्र हो जाती है।

अध्ययन को प्रभावशाली, पैना, गहन एवं सूक्ष्म बनाने के लिए लेखन अत्यन्त सहायक होता है। लिखने के लिए बहुत अधिक सूक्ष्मता से पढ़ना होता है। अनेक पहलुओं, दृष्टिकोणों से विषयवस्तु को ग्रहण करना, समझना होता है। इससे अध्ययन तो गहरा बनता ही है साथ–साथ सृजनात्मक भी बनता है, व्यवस्थित बनता है। यही कारण है कि पाश्चात्य देशों के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनेक विश्वविद्यालयों में परीक्षा की मूल्यांकन विधि को ''विषयानुबंधी लेख लेखन'' (Assignment System) में बदला गया है। इससे व्यक्ति की प्रस्तुतीकरण की क्षमता में विकास होता है। परिश्रम संरचनात्मक (Constructive) तथा सृजनात्मक (Creative) बनता है।

12.4.2 समस्याओं का समाधान

समस्याएं व्यक्ति को असमाधिस्थ बनाती हैं। ***समस्या चित्त की व्याकुलता एवं बैचेनी में निमित्त कारण बनती हैं। समाधान चित्त–समाधि में सहायक कारण बनता है।*** अध्यात्म साधना का अर्थ है – चित्त को समाधिस्थ रखना, समाहित रखना। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी–अपनी समस्याएं होती है। विशेषज्ञ अपनी अभिव्यक्ति क्षमता द्वारा ही लोगों तक उसका समाधान पहुंचाने में सफल होते हैं। समस्याओं का समाधान करते हैं। लेखन का उपयोग स्वयं की जिज्ञासा या समस्या के समाधान में भी कर सकते हैं।

समस्या समाधान के लिए भी लेखन महत्त्वपूर्ण साधन है। कई महिनों से एक समस्या बार–बार सामने आ जाती थी कि क्यों लिखें ? एक दिन पुस्तक पढ़ते–पढ़ते समाधान मिला कि ''लेखन क्यों ?'' इस पर प्रतिदिन एक पृष्ठ लिखा जाये। यह क्रम महीनों तक चला। इससे अनेक तथ्य सामने आये। वे मेरे लिए नये थे जिसको मैं स्वयं नहीं जानता था। बाद में उसे व्यवस्थित किया। प्रस्तुत लेख उसी लेखन का परिणाम है। समस्या का समाधान है।

बोध प्रश्न :

1. लेखन समस्याओं का समाधान कैसे दे सकता है ?
2. लेखन से सम्प्रेषण की शक्ति का विकास कैसे होता है ? उदाहरण द्वारा समझाइये।

12.5.0 लेखन की प्रक्रिया

अपने भावों को अभिव्यक्ति देना एक कला है। प्रत्येक कला के विकास के लिए अभ्यास आवश्यक है। यह तथ्य लेखन कला के लिए भी उतना ही सत्य है, आवश्यक है जितना कि अन्य कलाओं के लिए। ***लेखन कला के दो रूप हैं – सोद्देश्य लेखन एवं स्वान्तःसुखाय लेखन।*** अच्छे लेखक विभिन्न प्रयोजनों से विभिन्न अवसरों पर प्रभावशाली ढंग से लेखन करते हैं। अपने भावों को पाठकों तक पहुंचाते रहते हैं। यह कौशल श्रम साध्य है। इसमें समय लगता है। यह सौद्देश्य लेखन का क्रम है।

दूसरा प्रकार है – स्वान्तःसुखाय। इसमें व्यक्ति अपने लिए कुछ न कुछ लिखता रहता है। अपने भावों को अभिव्यक्ति देता है। यह एक सोपान है, पूर्व चरण है – सोद्देश्य लेखन का। इसके माध्यम से एक दिन सोद्देश्य लेखन में भी पटु व दक्ष बना जा सकता है। लेखन कला के अभ्यास के लिए एक सरल क्रम है, विधि है जिसका अभ्यास कर व्यक्ति लाभान्वित हो सकता है।

अच्छे लेखन के लिए दो महत्त्वपूर्ण शक्तियों की आवश्यकता होती है – सृजनशीलता एवं सम्पादन कौशल। सम्पादन कौशल से लेखक अपने लेख को पाठकों के लिए सुपाठ्य बनाता है। लेखन को अच्छा प्रारूप प्रदान करता है, व्यवस्थित बनाता है। तर्क पूर्ण एवं श्रृंखला बद्ध रूप देता है। सृजनशीलता से नई–नई बातों को लेखन में लाता है। नये–नये सम्बन्धों को उजागर करता है। मौलिकता को प्रस्तुत करता है। प्रायः अच्छे लेखकों में इन दोनों ही शक्तियों की उपस्थिति देखी जाती है।

इन दोनों योग्यताओं के विकास के लिए एक सरल प्रक्रिया है, प्रविधि है जिसको जानकर हम लाभान्वित हो सकते हैं। सम्पादन के लिए समीक्षात्मक शक्ति की आवश्यकता होती है, वहीं सृजनात्मकता के लिए अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता होती है। अन्तर्दृष्टि एवं समीक्षादृष्टि का अस्तित्व सभी में होता है। इसको जगाने की आवश्यकता है। इसकी प्रक्रिया को समझना आवश्यक है।

लेखन के अभ्यास को दो चरणों में बांट दिया जाए। प्रथम चरण में केवल लेखन है। दूसरे चरण में समीक्षा एवं काट–छांट।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

12.5.1 प्रथम चरण

प्रथम चरण में आप लिखना शुरू करें। स्वान्तः सुखाय लिखें। जो भी लिख सकें तेजी से लिखें। बिना रुके, बिना सोचे जो भी भीतर से आ रहा है उसे कागज पर उतार दें। जैसा भी आ रहा है उसकी चिन्ता न करें। अपने चेतन मन को हस्तक्षेप नहीं करने दें। जो भी अवचेतन से आ रहा है उसे आने दें, रोके नहीं। इस चरण में आप केवल लिखें। अपने भावों की अभिव्यक्ति कागज पर करने की योग्यता प्राप्त करें। इस अभ्यास से नई बातें आपके दिमाग में उभरेगी। नई–नई बातें आप लिख सकेंगे जो आपके लिए प्रसन्नता देने वाली होगी। ***इससे आपकी अन्तर्दृष्टि को विकसित होने एवं प्रकट होने का अवसर मिलेगा। आपके लेखन में मौलिकता आयेगी। आपकी सृजनात्मक शक्ति का विकास होगा।*** इसमें बहुत कमियां भी होंगी जिन्हें दूसरे चरण में पूरा करना होगा।

इस लेखन में आपको क्रमबद्धता और व्यवस्था की कमी नजर आयेगी। लेख उतना आकर्षक नहीं होगा। लेखन को क्रमबद्ध व व्यवस्थित बनाने के लिए आलोचनात्मक समीक्षा की जरूरत होती है। इसके लिए दूसरे चरण का प्रयोग करते हैं। पाठक तक पहुंचने के लिए दूसरी योग्यता की अत्यधिक अपेक्षा होती है।

12.5.2 दूसरा चरण

द्वितीय चरण में आप अपने लेखन की समीक्षा करें। कांट–छांट करें। शीर्षक एवं अन्तःशीर्षक बनाएं। पूरे आलेख की रूपरेखा तैयार करें। रूपरेखा के अनुरूप पुनः लेख को व्यवस्थित करें। प्रारम्भ में आपको इसमें इतना आनन्द नहीं आयेगा। इसकी क्रियाविधि को समझने में कुछ समय लगेगा। धीरे–धीरे अपने आप आपमें समीक्षा की शक्ति भी विकसित हो जायेगी। इससे लेखन में क्रमबद्धता व सौन्दर्य आयेगा। लेखन पाठकों के पढ़ने योग्य बनेगा। ***प्रारम्भ में सृजनात्मक कौशल व समीक्षात्मक कौशल का अभ्यास अलग–अलग किया जाता है। इससे दोनों को विकसित होने का पूरा–पूरा अवसर मिलता है।*** प्रारम्भ में एक साथ करने से खतरा अधिक है। कालान्तर में अच्छे अभ्यास के बाद दोनों ही शक्तियों का उपयोग साथ–साथ होने लगता है। लेखन में मौलिकता एवं नवीनता के साथ–साथ क्रमबद्धता भी सहज रूप में प्रकट होने लगती है। लेखन स्वयं के लिए आह्लादकारी व उत्साहवर्द्धक होने के साथ–साथ दूसरों के लिए भी पठनीय एवं आनन्ददायक बनता है।

12.5.3 दैनिक डायरी

अपने लक्ष्य से संबंधित विचार, सुझाव, कल्पनाएं, हमारे अवचेतन मन से चेतन मन की ओर प्रवाहित होते रहते हैं। इनको तुरन्त दैनिक डायरी में लिखने का अभ्यास बनाएं। यह आपके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

स्वप्न विश्लेषण – स्वप्न अपने जीवन की घटनाओं का महत्वपूर्ण संकेत देते हैं। प्रातः उठने पर स्वप्न को भी लिखने की आदत डालें। उसका विश्लेषण तुरन्त न करें। सायंकालीन आत्म–निरीक्षण तक प्रतीक्षा करें। इससे आपको पता चलेगा कि स्वप्न किस घटना की ओर संकेत कर रहा है।

स्वप्न का वर्णन	
स्वप्न का फल से संबंध	स्वप्न का आज से संबंध
स्वप्न का जीवन की किसी अन्य घटना से संबंध	

वैचारिक मंथन –प्रातः कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व लक्ष्य–प्राप्ति हेतु बीस उपाय/विचार लिखने का अपने आपको अवसर दें। इससे आपके अवचेतन मन को अमूर्त्त से मूर्त्त रूप में, लेखनी में आपके सामने उभरने का अवसर मिलेगा। प्रारम्भ में हो सकता है कुछ भी विचार न आये। कुछ दिन बार स्वतः विचारों का ज्वार एक के बाद एक उमड़ पड़ेंगे। जिससे आप स्वयं आश्चर्य चकित रह जायेंगे। ये विचार आपके लिए बहुत ही मूल्यवान सिद्ध होंगे।

बोध प्रश्न

1. लेखन के प्रथम चरण में हमें क्या करना चाहिए ?
2. लेखन के द्वितीय चरण में हमें कैसे लेखन को सजाना संवारना चाहिए ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

12.6.0 सारांश

- लेखन कला अभिव्यक्ति का एक साधन है, माध्यम है। यह एक ऐसी सम्प्रेषण शक्ति है जिससे लेखक दूर बैठे लाखों लोगों से अपनी बात कह सकता है। इसके लिए लेखक के मन में लेखन का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए। लेखन के उद्देश्य की सफलता लेखन के प्रति समर्पण व विकास में अभूतपूर्व योगदान देती है।

- लेखन का मुख्य प्रयोजन है –''स्व–पर विकास''। लेखन सम्पर्क का महत्त्वपूर्ण साधन बनता है। यह हमारे मन का अचेतन मन से सम्पर्क करा सकता है। हमारे संस्कारों का विरेचन करता है। हमारा मार्गदर्शन करता है और हमारे जीवन में संतुलन लाता है।

- लेखन एक ऐसी कला है जो हर इंसान में नहीं होती है परन्तु जिसमें होती है वह इंसान अपने आप को दूसरों की अपेक्षा ज्यादा पहचानता है। लेखन से हमारी अच्छाइयां एवं खामियां दोनों उभर कर सामने आती है, अच्छाइयों से हमें प्रोत्साहन मिलता है, कमियों से अहं पर प्रहार होता है। इससे कमियों को दूर करने की इच्छा जागती है, परिणाम स्वरूप जहां अहं विचलित होता है, वहीं अच्छाइयों के बोध से हीन भावना दूर हो जाती है।

- लेखन कला से हमारे अध्ययन में भी ***गहनता*** आती है। अध्ययन को प्रभावशाली, पैना, गहन एवं सूक्ष्म बनाने के लिए लेखन अत्यन्त आवश्यक होता है। लिखने के लिए ***अध्ययन को सूक्ष्मता*** से करना होता है। इसमें अनेक पहलुओं व दृष्टिकोणों से विषयवस्तु को ग्रहण करना होता है। इससे अध्ययन गहन तो बनता ही है साथ–साथ सृजनात्मक भी बनता है।

- लेखन कला के दो रूप हैं – **1. सौद्देश्य लेखन –** अच्छे लेखक विभिन्न प्रयोजनों से विभिन्न अवसरों पर प्रभावशाली ढंग से लेखन करते हैं और अपने भावों को पाठकों तक पहुंचाते हैं। यह कौशल श्रम साध्य है और इसमें समय लगता है। यह सौद्देश्य लेखन क्रम है। **2. स्वांतःसुखाय** – इसमें व्यक्ति कुछ न कुछ लिखता रहता है। अपने भावों को अभिव्यक्ति देता रहता है। यह एक सोपान है, पूर्व चरण है – सौद्देश्य लेखन का।

- लेखन के दो चरण हैं – 1. लेखन, 2. समीक्षा।

- अच्छे लेखन के लिए दो महत्वपूर्ण शक्तियों की आवश्यकता होती है – सृजनशीलता एवं संपादन कौशल। संपादन कौशल में लेखक अपने लेख को सुपाठ्य बनाता है व लेख को सुव्यवस्थित रूप प्रदान करता है। इससे पाठक आसानी से लेख को समझ पाता है।

- ज्ञान के संरक्षण व सम्प्रेषण में लेखन कला का अद्वितीय स्थान रहा है। अतः अध्यात्म को यदि अधिक से अधिक जनग्राही बनाना है तो इसे आज की भाषा में शब्दावली में अभिव्यक्ति के हर कोणों से अभिव्यक्त करना जरूरी है। यह अपेक्षा हर काल में बनी रहेगी जिसकी आपूर्ति अध्यात्म का जीवन जीने वाले लोगों से ही संभव होगी।

12.7.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. लेखन कला के मुख्य प्रयोजन क्या हैं ?
2. संस्कारों के विरेचन से आपका क्या तात्पर्य है ?
3. सौद्देश्य लेखन से आप क्या समझते हैं ?
4. अच्छे लेखन के लिए किन दो महत्त्पूर्ण शक्तियों की आवश्यकता होती है।
5. लेखन के कितने चरण हैं ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. लेखन क्रिया से हमारे मन का अचेतन मन से सम्पर्क किस प्रकार होता है ?
2. लेखन से हमारे जीवन में संतुलन किस प्रकार आता है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. लेखन का क्या प्रयोजन है ? स्व प्रबन्धन की रूपरेखा क्या है ? विस्तार से समझाइये ?
2. लेखन की प्रक्रिया क्या है ? इसके प्रथम एवं द्वितीय दोनों चरण लिखें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 4 स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास
पाठ – 13 स्वास्थ्य प्रबंधन

रूपरेखा

13.0.0 उद्देश्य
13.1.0 भूमिका
13.2.0 स्वास्थ्य
13.2.1 शरीर की संरचना
13.3.0 स्वास्थ्य की व्यवस्था
13.3.1 व्यवस्था में अव्यवस्था
13.3.2 दर्द रूपी घन्टी
13.3.3 दर्द सहने की क्षमता
13.3.4 दर्द की अनुभूति
13.3.4.1 उद्दीपन
13.3.4.2 संकेत सम्प्रेषण
13.3.4.3 प्रतिक्रिया
13.3.4.4 वियोजन
13.4.0 स्वास्थ्य प्रबंधन और प्रेक्षाध्यान
13.4.1 प्रेक्षाध्यान : शरीर प्रेक्षा
13.4.2 शरीर प्रेक्षा के परिणाम
13.4.3 स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा
13.5.0 सारांश
13.6.0 अभ्यास प्रश्न

13.0.0 उद्देश्य

पीछे की ईकाइयों में व्यक्तित्व परिचय, उन्नत व्यक्तित्व एवं सफल व्यक्तित्व की जानकारी प्राप्त की। इस इकाई में हम स्वस्थ व्यक्तित्व के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। पूर्णतया स्वस्थ होने के लिए शरीर, मन व भावों से स्वस्थ होना आवश्यक है। इसमें भी सबसे पहले शरीर का रोगमुक्त होना, स्वस्थ होना जरूरी है। कहा भी गया है – पहला सुख निरोगी काया। शरीर का स्वस्थ होना प्रथम सुख है। स्वस्थ शरीर होने पर ही हम सफलतापूर्वक सभी काम कर सकते हैं। इसलिए स्वास्थ्य का प्रबन्धन अति आवश्यक है। इस पाठ से हम जान पाएंगे –

1. शरीर की संरचना का ज्ञान
2. स्वास्थ्य की व्यवस्था का आधार
3. प्रेक्षाध्यान द्वारा स्वास्थ्य प्रबन्धन के उपाय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

13.1.0 भूमिका

इस संसार से लौकिक या परलौकिक कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है परन्तु यह तभी संभव है जब हम स्वस्थ रहें। कहा भी गया है – 'बड़े भाग्य मानुस तन पावा। सुर दुर्लभ सद् ग्रन्थन गावा।। (रामचरितमानस)।

शरीर तो हमें आत्मा के वाहन के रूप में प्राप्त है परन्तु यदि वाहन (गाड़ी) खराब हो जाये तो फिर यात्रा में अवरोध आ जाता है। उचित समय पर गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुंच पाते। इसलिये प्रकृति द्वारा प्राप्त इस अनमोल निधि से परिचित होना और उसका सही प्रबन्धन करना अति आवश्यक है। आप और हम कोई भी गाड़ी लेते हैं तो दुकानदार से उसका मैनुअल मांगते हैं। उसे चलाना सीखते हैं। लेकिन क्या आपने कभी शरीर रूपी वाहन की जानकारी प्राप्त की जिसमें आत्मा रूपी आप सवारी कर रहे हैं। क्या आपको नहीं लगता कि उस गाड़ी से भी यह गाड़ी महत्वपूर्ण है। यदि हाँ तो स्वास्थ्य क्या है ? और इसका प्रबन्धन कैसे करें ? इसका अध्ययन जरूर करें। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वास्थ्य प्रबन्धन पाठ प्रस्तुत है।

13.2.0 स्वास्थ्य

एक व्यक्ति आया। उसने कहा – ''मुझे बीमारी हुई। डॉक्टरों को दिखाया। दवाई ली। पर अब भी मन में उत्साह नहीं है, उमंग नहीं है, बुझा–बुझा सा रहता हूं। शान्ति नहीं है।''

अशान्ति जीवन में अभिशाप है। शान्ति एवं समाधि जीवन में अमृत है। इस अमृत की खोज सदियों से हो रही है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने प्रेक्षाध्यान में समाधि का सूत्र प्रस्तुत किया है। जीवन को उपाधि (भावात्मक रोग), आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग) से मुक्त करना समाधि है। प्रेक्षाध्यान इस समाधि तक पहुंचने का मार्ग है। स्वास्थ्य का अर्थ भी यही है स्वस्थ अवस्था। स्वस्थ अर्थात् स्व में स्थित रहना। जो व्यक्ति उपाधि ग्रस्त है। आधि से पीड़ित है। व्याधि से आक्रांत है वह स्व में नहीं रह सकता। ***स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए समग्र एवं सर्वांगीण दृष्टिकोण को अपनाना जरूरी है।*** केवल शरीर या केवल मन या केवल भावों की शुद्धि की बात करना एकांगी रास्ता होगा। वर्तमान में यह एकांगी दृष्टि बहुत चल रही है। अतः समस्या का समाधान करना आसान नहीं रह गया है। व्यक्ति अनेक दवाइयां खाने के बाद भी बहुधा स्वयं को स्वस्थ अनुभव नहीं करता।

13.2.1 शरीर की संरचना

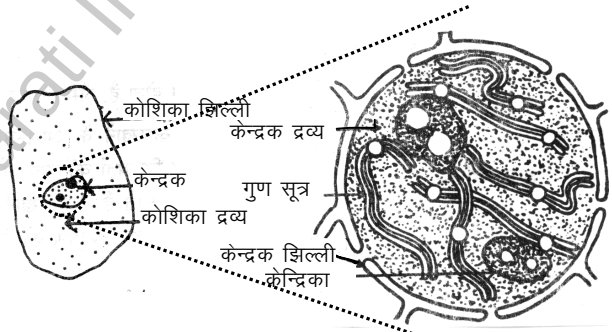

चित्र 13.1 कोशिका का केन्द्रक और गुण सूत्र

हमारा शरीर एकांगी व्यवस्था को स्वीकार नहीं कर सकता। इस शरीर का निर्माण जो एक कोशिका के विभाजन से प्रारम्भ होता है, वह लगभग 600 खरब कोशिकाओं से परिपूर्ण होता है। प्रथम कोशिका के केन्द्र में गुण सूत्र (Cromosome) होते हैं। 23 गुण सूत्र माता से तथा 23 पिता से प्राप्त होते हैं। प्रत्येक गुणसूत्र में संस्कार सूत्र (Genes) होते हैं। ये डी.एन.ए. से बने होते हैं। ये डी.एन.ए. हमारे शरीर निर्माण में इंजीनियर का काम करते हैं। इनके पास पूरे शरीर का नक्शा होता है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जिसमें छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी जानकारियां होती हैं। इसी के अनुसार कोशिका का विभाजन होता है। कोशिका से उत्तक एवं उत्तकों से अवयव बनते हैं। इन अवयवों से शरीर में संस्थान बनते हैं। हमारे शरीर में मुख्यतः दस संस्थान होते हैं। संक्षेप में उनके मुख्य कार्य इस प्रकार हैं–

1. कंकाल तन्त्र – ढांचा	2. मांसपेशी तन्त्र – गति
3. नाड़ी तन्त्र – नियंत्रण	4. रक्त परिसंचरण तन्त्र – वाहक
5. श्वसन तन्त्र–ऑक्सीजन आपूर्ति	6. पाचन तन्त्र – पाचन
7. ग्रन्थि तन्त्र– नियंत्रण	8. प्रजनन तन्त्र – प्रजनन
9. प्रतिरक्षा तन्त्र – सुरक्षा	10. उत्सर्जन तन्त्र – विजातीय तत्वों का निष्कासन।

ये संस्थान एकांगी कार्य नहीं करते। सब मिलकर शरीर का संचालन करते हैं। शरीर को स्वस्थ रखते हैं। ***एक अकेला अवयव शरीर को स्वस्थ नहीं रख सकता। आज अंग का उपचार होता है, अंगी का नहीं। खण्ड का उपचार होता है, अखण्ड का नहीं।***

बोध प्रश्न

1. स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए दृष्टिकोण कैसा हो ?
2. पूरे शरीर का नक्शा कहाँ होता है ?
3. जीवन में अमृत क्या है ?

13.3.0 स्वास्थ्य की व्यवस्था

शरीर में स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए दो तरह की व्यवस्था होती है – 1. कोशिका स्तर पर, 2. संस्थान स्तर पर। संस्थान स्तर पर एक रोग–प्रतिरोधी तंत्र होता है जिसमें रोग का प्रतिरोध करने के लिए श्वेत रक्त कणिकाओं के रूप में एक बड़ी फौज होती है। वह फौज किसी भी बाह्य आक्रान्ता से निपटने के लिए पूरे शरीर में गश्त लगाती रहती है। वह प्रत्येक बाह्य आक्रमण से निपटने में सक्षम होती है। इसी के बलबूते शरीर भी स्वस्थ बना रहता है। इसके अतिरिक्त भी शरीर में हजारों रसायन बनते हैं। ऐसा कोई भी रसायन नहीं है, ऐसी कोई दवाई नहीं है, जो बाहर बनती हो, और शरीर नही बना सकता हो। कोशिका स्तर पर शरीर में स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए शरीर की सामान्य प्रक्रिया यह है कि जब भी कोई घाव या टूट–फुट होती है, तो स्वतः उसे कोशिका के भीतरी नक्शे के अनुसार कुछ ही समय में ठीक कर लिया जाता है। पर जब भीतरी नक्शा ही त्रुटिपूर्ण बना लिया जाता है तो स्वस्थ रहना आसान नहीं होता।

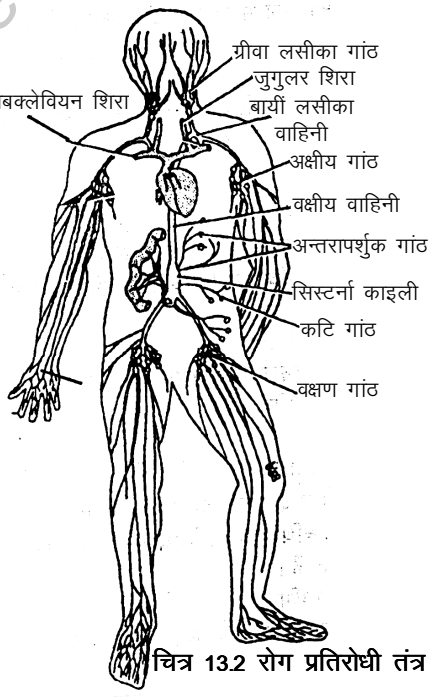

चित्र 13.2 रोग प्रतिरोधी तंत्र

13.3.1 व्यवस्था में अव्यवस्था

हम अज्ञानतावश भीतर के नक्शे को दूषित कर लेते हैं। गलत सूचनाओं को नक्शे में स्थान दे देते हैं। नक्शे के रिकॉर्ड्स बदल जाते हैं। यह परिवर्तन होता है–हमारे क्रूर व्यवहार, दूषित आचरण, गलत विचार और नकारात्मक भावों के कारण। प्राकृतिक नियमों के उल्लंघन, असात्विक खान–पान, दुर्व्यसनों का आसेवन, असंयत रहन–सहन, प्रदूषित वातावरण भी आग में घी का काम करते हैं। इससे एक ओर भीतर के नक्शे में परिवर्तन होता है, शरीर की साम्यावस्था विषम बनती है, रोग–प्रतिरोधात्मक शक्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कमजोर पड़ती है। इसके अतिरिक्त शरीर के दुर्बल अवयवों पर अत्यधिक दबाव पड़ता है। वे श्लथ होकर अस्वस्थ हो जाते हैं। इन्द्रियां असमय में क्षीण होने लगती हैं। यौवन ढल जाता है, व्यक्ति असमय में ही वृद्ध दिखने लगता है।

13.3.2 दर्द रूपी घन्टी

चेतना हमारे अस्तित्व का केन्द्रीय तत्व है। ***जब भी शरीर में अव्यवस्था होती है उस समय दर्द रूपी घण्टी बजती है।*** व्यवस्था की पुकार होती है। चेतना का बरबस ही ध्यान उस ओर खींचा चला जाता है। पर सामान्यतया उसको देखा–अनदेखा कर लिया जाता है मूल कारण की गहराई से खोज किये बिना ही उसको दबाने की कोशिश की जाती है। दवाइयों के आड़ में उस पर पर्दा डाल देते हैं। वाकई में लगता है कि कुछ हुआ ही नहीं। पर कुछ दिनों बाद वही खतरे की घण्टी किसी दूसरे किनारे से और तेजी से बजने लगती है। अपेक्षा यह है कि इन संकेतों को समझना सीखें। कारण की गहराई में जाएं। आत्मविश्लेषण करें। अपने आचार, व्यवहार और चिन्तन में अपेक्षित परिवर्तन करें। स्वास्थ्य के मूल कारण स्वस्थ जीवनशैली को अपना कर पुनः व्यवस्था को स्थापित करें।

13.3.3 दर्द सहने की क्षमता

दर्द सहने की क्षमता प्रत्येक व्यक्ति में अलग–अलग होती है। निरन्तर दर्द सहते–सहते दर्द को सहन करने की क्षमता भी बढ़ जाती है। ***आधुनिक अनुसंधानों के अनुसार हंसने, खेलने और प्रसन्नचित्त रहने से शरीर में एण्डोरफिन्स् नामक कणों की मात्रा बढ़ जाती है। वह शरीर को सहज रूप से दर्द को सहन करने योग्य बनाता है।*** क्रोनिक पेन (Chronic Pain) के रोगियों को चाहिए कि वे अपनी दिनचर्या और जीवनशैली में आवश्यक सुधार लाएं। तनावमुक्त जीवन जीने के अतिरिक्त योग और ध्यान की क्रियाओं में लीन रह कर एण्डोरफिन्स् कणों की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। कुछ लोगों का पूरा जीवन दर्द के साथ गुजरता है। कमर दर्द, गठिया, केन्सर और माइग्रेन जैसी बहुत सी ऐसी बीमारियां हैं जिनका दर्द उम्र भर भुगतना पड़ता है लेकिन यदि दर्द से मित्रता कर ली जाए तो पीड़ा दुःखदायी नहीं रहती।[1]

13.3.4 दर्द की अनुभूति

दर्द एक ऐसा अनुभव है जो लगभग हर रोग के साथ अपनी उपस्थिति दर्शाता है। वास्तव में ***दर्द एक जटिल मनोकायिक अनुभव है जो नाड़ी तन्तु व सम्पूर्ण तन्त्रिका तन्त्र का प्रयोग कर पहले शारीरिक वेदना द्वारा और उसके बाद रोगी की भावनात्मक प्रतिक्रिया के रूप में दोहरी पीड़ा उत्पन्न करता है।*** उदाहरणार्थ केन्सर जैसे मामलों में रोगी के मन में गहराया हुआ निराशा भाव और लगातार निकट आती मृत्यु का भय उसकी समूची पीड़ा में और भी बढ़ोतरी कर देते हैं। शारीरिक दर्द के अनेक कारण होते हैं। जब उन कारणों द्वारा शरीर को संवेदना मिलती है तब शरीर प्रकाश के वेग की गति से हरकत करता है। (देखें चित्र 13.3)

1 उद्दीपन – शरीर के हर भाग में तन्त्रिकाएं होती हैं। चोट लगते ही तन्त्रिकाएं हरकत में आती है और विद्युत–रासायनिक (जैव–विद्युत) संकेतों के माध्यम से संवेदनाएं आगे बढ़ने लगती हैं।

2 संकेत सम्प्रेषण – दर्द की संवेदनाएं विद्युत–रासायनिक संकेतों के माध्यम से स्पाइनल कोर्ड (सुषुम्ना) के माध्यम से एक तंत्रिका कोशिका से दूसरी तन्त्रिका कोशिका से होते हुए मस्तिष्क के एक निश्चित भाग थेलेमस तक पहुंचती है। जब तक व्यक्ति का चित्त उस सूचना से नहीं जुड़ता तब तक उसका बोध भी नहीं होता है। दर्द से जब व्यक्ति की जागरूकता उस तरफ बरबस खींची जाती है, चित्त जुड़ता है तब उसका बोध होता है।

3.प्रतिक्रिया – जब मस्तिष्क दर्द की संवेदना प्राप्त करता है तो सबसे पहले वह उसकी तीव्रता का आकलन करता है फिर चोटग्रस्त हिस्से को खोजता हुआ मस्तिष्क को उसे शान्त करने का उपाय करने को निर्देशित करता है। यह क्रिया प्रकाश की गति से भी तीव्र गति से संचालित की जाती है।

[1] राजस्थान पत्रिका, 18 मई, 2003, जोधपुर पृष्ठ–9

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Lalitpur

4 वियोजन – दर्द के प्रति संवेद भेजने के बाद मस्तिष्क से निकलने वाले रासायनिक संकेत संवेदना संप्रेषण की प्रक्रिया को अवरूद्ध कर देते हैं।

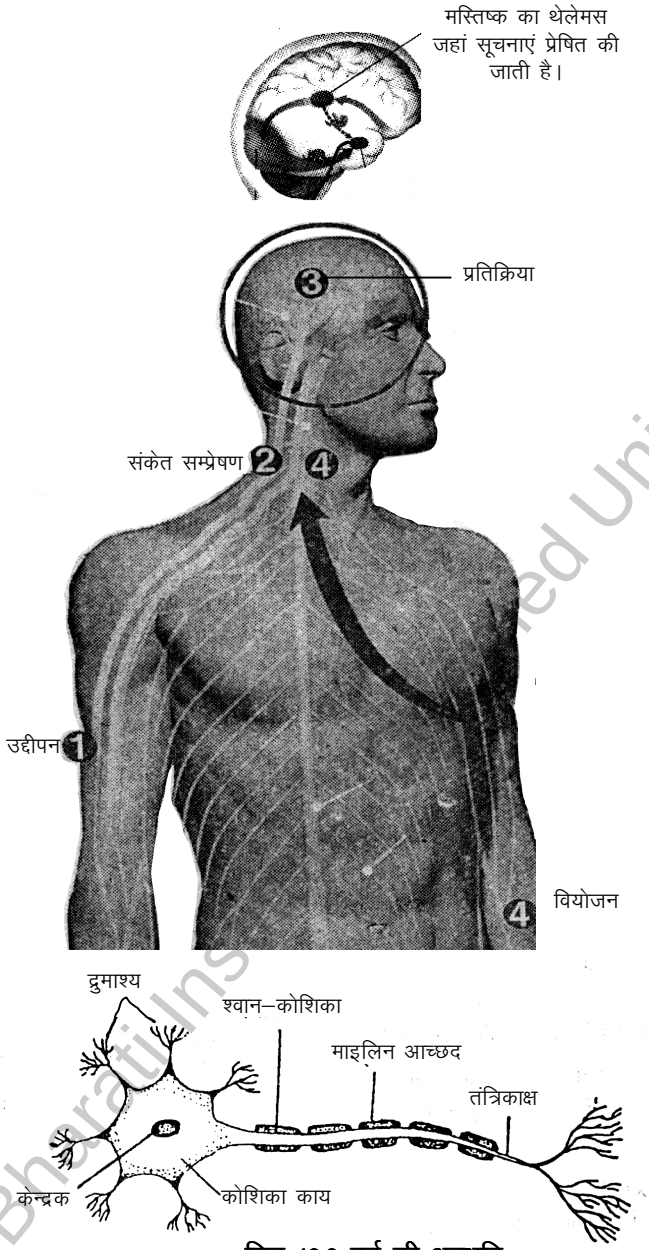

चित्र 13.3 दर्द की अनुभूति

दर्द की शारीरिक प्रतिक्रिया के साथ–साथ भावात्मक प्रतिक्रिया भी प्रारम्भ हो जाती है। व्यक्ति की भावात्मक प्रतिक्रिया से वियोजन क्रिया में बाधा पहुंचती है। इससे दर्द की संवेदना पहुंचाने वाले रसायन न्यूरोट्रांसमीटरों का स्राव बढ़ जाता है। इससे व्यक्ति को दर्द की अनुभूति तीव्र से तीव्रतर होती जाती है। **भावात्मक प्रतिक्रिया से मुक्त होकर इन संवेदनों को देखने से मस्तिष्क को संवेदना सम्प्रेषण प्रक्रिया को अवरुद्ध करने में सहयता मिलती है।** इससे दर्द शामक न्यूरोट्रांसमीटर ''एण्डोरफिन्स'' नामक रसायन का स्राव होता है। वह दर्द की संवेदना सम्प्रेषण प्रक्रिया को रोक देता है। तब वैसे ही व्यक्ति को दर्द की अनुभूति नहीं होती है। जैसा कि बाहर से दर्द शामक औषधियों को लेने से व्यक्ति अनुभव करता है।

Jan Vishva Bharati (Uns... Deemed University), Ladnun

दीर्घकाल तक दर्द के स्थान की प्रेक्षा (प्रतिक्रिया मुक्त देखना) से दर्द के अन्य आन्तरिक कारणों को दूर करने में भी मदद मिलती है। उस स्थान की कोशिकाओं के अन्दर और बाहर दबाव कम होता है। वहां अतिरिक्त रक्त पोषक तत्त्व और रोग प्रतिरोधी कोशिकाएं तेजी से पहुंचने लगती है। लम्बे अभ्यास से रोग एवं उसके कारण होने वाला दर्द दोनों समाप्त हो जाते हैं। रुग्ण कोशिकाओं के स्थान पर नई कोशिकाओं के सृजन द्वारा शरीर अपने आपको स्वस्थ कर लेता है।

बोध प्रश्न :

1. भावात्मक प्रतिक्रिया से दर्द पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
2. दर्द की अनुभूति कैसे होती है?

3. 13.4.0 स्वास्थ्य प्रबन्धन और प्रेक्षाध्यान

स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए प्रेक्षाध्यान में अनेक प्रयोग हैं। इनमें मुख्य रूप से यौगिक क्रियाएं, योगासन, मेरुदण्ड की क्रियाएं, प्राणायाम, कायोत्सर्ग, शरीर प्रेक्षा और अनुप्रेक्षा स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक जीवनशैली में अनेक दैनिक क्रियाकलाप हमारे स्वास्थ्य को आघात पहुंचाते हैं। उन आघातों से बचने के लिए **स्वास्थ्य संवर्द्धक यौगिक क्रियाएं**[1] अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई हैं। आरोग्य प्राप्ति के लिए आधुनिक उपचार पद्धतियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है किन्तु "Prevention is better than cure" उपचार से सावधानी को श्रेष्ठ माना जाता है। अतः हितकर यही है कि रोग आने से पूर्व ही जीवनशैली को स्वस्थ बनाने पर पर्याप्त ध्यान दिया जाए। नियमित रूप से दस मिनट का समय यौगिक क्रियाओं के लिए दिया जाए तो अनेक शारीरिक समस्याओं से बचाव सम्भव है।

तालिका 13.1 आधुनिक जीवनशैली में स्वास्थ्य पर आघात एवं प्रेक्षाध्यान से बचाव

क्र.सं.	रुग्णता	आधुनिक जीवन शैलीगत कारण	प्रेक्षा प्रयोग
1.	आँख	अधिक टी.वी. देखना, निरन्तर कम्प्युटर पर कार्य करना, लेटकर पढ़ना आदि।	आंख की यौगिक क्रिया
2.	कान	ध्वनि प्रदूषण, तेज संगीत, स्वच्छता का अभाव आदि	कान की यौगिक क्रिया
3.	दांत	अधिक शीतल पेय, गर्म–ठण्डा एक साथ, अत्यधिक चाकलेट व मिठाई आदि।	दांत की यौगिक क्रिया
4.	अंगुलियां	लम्बे समय तक निरन्तर कम्प्युटर 'की बोर्ड' चलाना	अंगुलियों व हाथ की यौगिक क्रियाएं
5.	पैर	लम्बे समय तक एक स्थान पर बैठे रहना, बहुत कम पैदल चलने का काम पड़ना, अत्यधिक चलना।	पैरों की यौगिक क्रियाएं
6.	कमर	बैठने, उठने, सोने व वजन उठाने के गलत तरीके अत्यधिक मैथुन सेवन आदि।	मेरुदण्ड की यौगिक क्रियाएं व जागरूकता।
7.	पाचनतंत्र, कब्ज, वायु विकार आदि	व्यसन, अनावश्यक खाद्य, जंक फूड, फास्ट फूड, गरिष्ठ भोजन, अतिभोजन, विपरीत भोजन, अस्वास्थ्य कर पदार्थ आदि।	पेट और श्वास की दस क्रियाएं, खाद्य विवेक, मिताहार।
8.	मधुमेह	लम्बे समय तक एक स्थान पर बैठकर कार्य करना, अत्यधिक महत्त्वाकांक्षाएं, शारीरिक श्रम का अभाव।	सम्पूर्ण यौगिक क्रियाएं, मेरुदण्ड की क्रियाएं, योगासन।
9.	तनाव	प्रतिस्पर्धा या असुरक्षा का भाव, एकल परिवार, देर से सोना व देर से उठना आदि।	कायोत्सर्ग व स्वस्थ जीवनशैली का अभ्यास।

[1] देखें– प्रेक्षाध्यान यौगिक क्रियाएं, मुनि किशनलाल, जैन विश्व भारती, लाडनूं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

13.4.1 प्रेक्षाध्यान : शरीर प्रेक्षा

प्रेक्षाध्यान के अभ्यास शिविर वस्तुतः स्वस्थ जीवन शैली के प्रशिक्षण शिविर भी हैं। इन शिविरों में अनेक प्रकार के हर उम्र के लोग आते हैं। उनमें से कुछ लोगों को शारीरिक रुग्णता भी होती है। शिविर समापन पर वैसे लोगों को आध्यात्मिक अनुभव के साथ–साथ पर्याप्त शारीरिक लाभ भी मिलता है। शिविरों में शरीर प्रेक्षा के प्रयोग भी करवाये जाते हैं। इस प्रयोग में शरीर के प्रत्येक अवयव को भावात्मक प्रतिक्रिया से मुक्त होकर अनुभव करने का अभ्यास कराया जाता है। इसमें शिविरार्थी गण तटस्थ रहते हुए अवयव के उन पीड़ादायक उद्दीपनों एवं उनके परिणाम स्वरूप होने वाले कोशिकीय वातावरणगत परिवर्तनों पर भी चित्त को केन्द्रित करते हैं। ***लम्बे समय तक और बार–बार की जाने वाली तटस्थ प्रेक्षा से नकारात्मक और प्रतिकूल परिवर्तनों (प्रतिक्रियाओं) को विराम मिलता है।*** पीड़ादायक उद्दीपनों का अनुभव होना भी कम होता चला जाता है। इस प्रयोग में शरीर के प्रत्येक अवयव पर चित्त का सम्पर्क होता है अतः जहां–जहां चित्त की यात्रा होती है, वहां–वहां पर प्राण की भी यात्रा होती है। इससे पूरे शरीर में प्राण का संतुलन बढ़ता है। परिणामतः शरीर स्वस्थ होने लगता है। इसमें एक ओर अखण्ड शरीर पर ध्यान दिया जाता है तो दूसरी ओर शरीर के उस खण्ड या रुग्ण भाग पर भी चित्त को केन्द्रित कर उसे प्राणवान और शक्तिशाली बनाया जाता है।

13.4.2 शरीर प्रेक्षा के परिणाम

शरीर प्रेक्षा की प्रक्रिया से सर्वोत्कृष्ट लाभ हमारे शरीर की समस्थिति (Homeostasis) अवस्था में आशातीत सुधार के रूप में मिलता है। शरीर प्रेक्षा से रक्त परिसंचरण को नियमित बनाये रखने एवं इनसे संबंधित अवयवों को ऊर्जा उपलब्ध कराने में मदद मिलती है। हृदय की पेशियां सशक्त बनती हैं। हृदय द्वारा रक्त को पम्प करने की दर नियमित होती है। धमनी में पाये जाने वाले अवरोध दूर होते हैं। रक्तचाप भी सम बना रहता है।

शरीर प्रेक्षा के अन्तर्गत जब चित्त को रक्त–परिसंचरण तन्त्र के विभिन्न अवयवों पर केन्द्रित करते हैं तब लाल रक्त कोशिकाओं में हीमोग्लोबीन के द्वारा ऑक्सीजन को अवशोषित करने की क्षमता बढ़ती है। फलतः शरीर को अधिक ऑक्सीजन उपलब्ध होती है जो कार्यक्षमता में अभिवृद्धि करती है। श्वेत रक्त कणिकाओं के द्वारा विजातीय पदार्थों, जिन्हें एण्टीजन (Antigen) कहते हैं, को नष्ट करने के लिए एण्टीबॉडीज (Antibodies) नामक पदार्थों के उत्पादन क्षमता में आशातीत वृद्धि होती है। इसके परिणाम स्वरूप रोग प्रतिरोधी क्षमता में स्वाभाविक गुणात्मक सुधार होता है। शरीर प्रेक्षा के द्वारा लाल और श्वेत रक्त कणिकाओं की कार्य–उम्र (working -age) में भी वृद्धि होती है। रक्तस्राव के समय रक्त का थक्का जमने की प्रक्रिया के लिए भी कई आवश्यक तत्त्वों का उत्पादन भी रक्त के द्वारा होता है। शरीर प्रेक्षा द्वारा इन तत्त्वों का उत्पादन भी बढ़ने लगता है। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि ***शरीर प्रेक्षा के नियमित अभ्यास से रोग प्रतिरोधात्मक क्षमता बढ़ती है एवं शरीर के सम्पूर्ण स्वास्थ्य में वृद्धि होती है।***

13.4.3 स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा

शरीर को स्वस्थ करने के लिए प्रेक्षाध्यान में एक और महत्त्वपूर्ण प्रयोग है– स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा। इसमें शरीर के निरीक्षण के पश्चात् उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की जाती है। अपनी भूलों के लिए क्षमायाचना व भविष्य में जागरूकता का संकल्प लिया जाता है। अन्त में स्वस्थता का सुझाव दिया जाता है।

प्रयोग विधि

पूरे शरीर को शिथिल करें। तनाव मुक्त करें। शरीर को छः भागों में बांट दें – 1. दायां पैर, 2. बायां पैर, 3. कमर से गर्दन तक, 4. दायां हाथ, 5. बायां हाथ, 6. गर्दन से सिर तक।

(क) दायें पैर पर चित्त को ले जाएं। अंगूठा, अंगुली, पंजा, तलवा, एड़ी, टखना, पिण्डली, घुटना, साथल, नितम्ब – क्रमशः प्रत्येक अवयव पर चित्त को ले जाएं। शिथिलता का सुझाव दें एवं शिथिलता का अनुभव करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ख) पूरे अवयव के साथ सम्पर्क स्थापित करें। उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करें –''तुमने आज तक मेरा बहुत सहयोग किया है। मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं। साधुवाद देता हूं। मैं चाहता हूं तुम स्वस्थ रहो, सशक्त बनो। तुम्हारा सहयोग निरन्तर मिलता रहे।''

(ग) शरीर के साथ क्षमायाचना करें –''मेरे कारण, मेरी जीवन शैली के कारण यदि तुम्हें कष्ट पहुंचा हो, असुविधा हुई हो तो मैं क्षमायाचना करता हूं।''

(घ) संकल्प करें, शरीर को आश्वासन दें –''मैं अपनी जीवन शैली को बदलने का पूरा प्रयत्न करूंगा।'' तीन बार दोहराएं।

(ड़) अनुभव करें – प्रत्येक मांसपेशी और कोशिका स्वस्थ हो रही है..... स्वस्थ हो रही है..... स्वस्थ हो रही है।

इसी क्रम से शरीर के अन्य पांच भागों पर भी प्रयोग को दोहराएं। इसके पश्चात् शरीर के रुग्ण अवयव पर भी इसी भावना को दोहराएं।

बोध प्रश्न

1. शरीर प्रेक्षा की विधि लिखिये।
2. शरीर प्रेक्षा से क्या – क्या परिणाम प्राप्त होते हैं ?

13.5 सारांश

- अशान्ति जीवन में अभिशाप है। **शान्ति एवं समाधि** जीवन में अमृत हैं। जीवन को उपाधि (भावानात्मक रोग), आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग) से मुक्त करना **समाधि** है। स्वस्थ होना बहुत जरूरी है जिसका मार्ग **प्रेक्षाध्यान** है। स्वास्थ्य का अर्थ है स्वस्थ अवस्था। स्वस्थ अर्थात् स्व में उपस्थित रहना। जो व्यक्ति व्याधि से ग्रस्त, आधि से पीड़ित एवं उपाधि से आक्रांत हैं वह कभी स्वस्थ नहीं हो सकता।

- हमारा शरीर अनेक छोटी–छोटी कोशिकाओं व अंगों से मिलकर बना है जो हमारे शरीर का सुचारू रूप से संचालन करते हैं। इन सबको हमें स्वस्थ रखना चाहिए ताकि हमारी शरीर रूपी मशीन अबाध रूप से चलती रहे।

- हमारे शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता होती है जो हमें हर बीमारी का सामना करने लायक बनाती है लेकिन हमारे क्रूर व्यवहार, दूषित आचरण, गलत विचार एवं नकारात्मक भावों के कारण हमारी ये शक्ति कमजोर पड़ जाती है एवं इसके अतिरिक्त शरीर के दुर्बल अवयवों पर इसका अत्यधिक दबाव पड़ता है, वे श्लथ होकर अस्वस्थ हो जाते हैं और हमारा शरीर बीमार।

- चेतना हमारे अस्तित्व का केन्द्रीय तत्त्व है। जब भी हमारे शरीर में कोई अव्यवस्था होती है तो उसकी सूचना हमारे मस्तिष्क तक पहुंच जाती है परन्तु कई बार हम इसे गहराई से न लेकर अनदेखा कर देते हैं जिससे वह आगे जाकर हमारे लिये एक बड़ी बीमारी बन जाती है। अतः हमें हर पल हमारे शरीर में होने वाले परिवर्तन के प्रति जागरुक रहना चाहिए और समय पर स्वास्थ्य की जांच एवं चिकित्सा करवानी चाहिए।

- यौगिक क्रियाएं, योगासन, मेरुदण्ड की क्रियाएं, प्राणायाम, कायोत्सर्ग, शरीर प्रेक्षा और अनुप्रेक्षा आदि सभी स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए प्रेक्षाध्यान के प्रयोग हैं। ये प्रयोग हमारे शरीर को होने वाले आघातों से बचाने में बहुत उपयोगी साबित हुए हैं। एक पंक्ति है ''Prevention is better then cure'' उपचार से सावधानी श्रेष्ठ है। अतः हितकर यही है कि रोग आने से पहले ही जीवनशैली को स्वस्थ बनाने पर पर्याप्त ध्यान दिया जाये। इसके लिए उपरोक्त यौगिक क्रियाओं का प्रतिदिन कुछ समय तक अभ्यास करना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

13.6.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. समाधि से आपका क्या आशय है ?
2. हमारा शरीर कितनी कोशिकाओं से मिलकर बना हुआ होता है ?
3. शरीर को दर्द की संवेदनाएं पहुंचाने वाले रसायन कौन से हैं ?
4. आँखों की रुग्णता के कारण लिखो।
5. दर्द रूपी घण्टी कब बजती है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. हमारे शरीर में कौन से संस्थान हैं एवं उनके क्या कार्य हैं ?
2. हमारे शरीर में एण्डोरफिन्स कणों की मात्रा कैसे बढ़ती है एवं इनकी उपयोगिता संक्षिप्त में लिखें।

निबंधात्मक प्रश्न

1. शरीर प्रेक्षा एवं स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा से आप क्या समझते हैं ? शरीर प्रेक्षा के परिणाम लिखते हुए स्वास्थ्य–अनुप्रेक्षा की प्रयोग विधि बताएं।
2. स्वास्थ्य की व्यवस्था को विस्तृत रूप से समझायें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 4 स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास

पाठ – 14 आहार प्रबन्धन और स्वास्थ्य – रक्षा

रूपरेखा

14.0.0 उद्देश्य
14.1.0 भूमिका
14.2.0 आहार क्यों ?
14.2.1 आहार का महत्त्व
14.2.2 आहार का प्रयोजन
14.3.0 आहार के प्रकार
14.3.1 सात्विक आहार
14.3.2 राजसिक आहार
14.3.3 तामसिक आहार
14.4.0 संतुलित आहार
14.4.1 ऊर्जा उत्पादक तत्त्व
14.4.2 वृद्धिकारक तत्त्व
14.4.3 रक्षात्मक एवं नियंत्रक तत्त्व
14.5.0 हमारा पाचन तंत्र व आहार की अच्छी आदतें
14.5.1 भाव क्रिया और प्रसन्नता से खाना
14.5.2 भोजन को खूब चबाकर खाना
14.5.3 गर्म–ठण्डा साथ न खाना
14.5.4 खाते समय मौन रहना
14.5.5 भोजन के साथ पानी नहीं पीना
14.5.6 बार–बार न खाना
14.5.7 भूख से आधा खाना
14.5.8 तली वस्तुओं से परहेज
14.5.9 भोजन के बाद मानसिक श्रम से बचना
14.5.10 उचित श्रम करना
14.5.11 नियमित समय पर भोजन करना
14.5.12 मैदे से बनी वस्तुओं का सेवन न करना
14.5.13 अधिक उम्र में अन्न की मात्रा को कम करना
14.5.14 रेशेदार पदार्थों का समावेश करना
14.5.15 मल को न रोकना
14.6.0 सारांश
14.7.0 अभ्यास प्रश्न

14.0.0 उद्देश्य

तपस्वियों को भी तपस्या पूरी होने के बाद आहार स्वीकार करना ही पड़ता है। अतः आहार विवेक प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। आहार कब करें ? कितना करें ? किस आयु के व्यक्ति का पाचन तंत्र कितना सशक्त या कमजोर होता है ? किन भावों के साथ आहार करने से क्या लाभ–हानियां होती है ? ज्ञानियों ने मानव भोजन को कितने भागों में विभक्त किया है ? इस सब जिज्ञासाओं के समाधान के उद्देश्य से यह अध्याय ज्ञानार्थियों के लाभ के लिए जोड़ा गया है। यह अध्याय सिद्धान्त एवं प्रयोग दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस अध्याय से आप जान पाएंगे –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. आहार के उद्देश्य एवं प्रयोजन
2. आहार के प्रकार
3. आहार के संतुलन का तात्पर्य
4. स्वस्थ शरीर व स्वस्थ जीवन के लिए आहार की अच्छी आदतें

14.1.0 भूमिका

व्यक्तित्व विकास में आहार की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए संतुलित आहार की जरूरत होती है। मित भोजन एवं सात्विक भोजन लेने से कई बीमारियाँ व्यक्ति से दूर ही रहती है। इलाज करने से बेहतर है कि बीमारी को ही रोक लिया जाए। अंग्रेजी में कहावत है – 'प्रिवेंसन इज बेटर देन क्योर'। स्वस्थ शरीर से ही आसन, प्राणायाम, प्रेक्षाध्यान, कायोत्सर्ग आदि साधनाएं संभव है।

14.2.0 आहार क्यों ?

आहार एक प्रकार से औषधि रूप है। जैसे कम औषधि लेने से रोगी को पूरा लाभ नहीं मिलता और मात्रा से अधिक लेने पर हानि होती है। इसी प्रकार शरीर की आवश्यकता से कम खाने से शरीर क्षीण होने लगता है और आवश्यकता से अधिक खाने पर अजीर्ण रोग का शिकार हो जाता है। अजीर्ण रोग सब रोगों का मूल कारण बताया गया है। **विश्व स्वास्थ्य संघठन (W.H.O.)** की वर्ष 1971 की एक रिपोर्ट में बताया गया है कि ***चिकित्सालयों में प्रवेश पाने वाले रोगियों में से 87 प्रतिशत रोगियों के रोग निदान में मूल कारण अजीर्ण ही पाया गया है।***

14.2.1 आहार का महत्त्व

उपनिषदों में आहार के बारे में यहां तक कहा गया है कि आहार की शुद्धि से व्यक्ति सब ग्रन्थियों से मुक्त हो जाता है –

आहारशुद्धो सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धो ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृति लम्भे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।

आहार की शुद्धि से सत्त्व की शुद्धि होती है। सत्त्व की शुद्धि से शाश्वत तत्त्व, आत्मा की स्मृति बनी रहती है। शाश्वत तत्त्व (आत्मा) की स्मृति से व्यक्ति सब ग्रन्थियों से मुक्त हो जाता है।

सामान्य जीवन में हम देखते हैं कि अधिकांश व्यक्ति अपनी जीभ की संतुष्टि के लिए खाते हैं। उनका खाना स्वाद पर निर्भर हो जाता है। वे एक प्रकार से जीने के लिए नहीं खाते अपितु खाने के लिए जीते हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि वे अनेक बीमारियों से ग्रसित हो जाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि खाने के बारे में व्यक्ति की विवेक चेतना जागृत हो। क्यों खाना?, क्या खाना?, कब खाना?, कैसे खाना?, कितना खाना? इत्यादि प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए अपने आहार के क्रम को व्यवस्थित करें। इससे सम्यक् आहार प्रबन्धन हो सकेगा और स्वास्थ्य की सुरक्षा भी हो सकेगी।

आहार करने वाले को किन–किन बातों को जानना आवश्यक है? इसका उत्तर भगवान महावीर की वाणी में इस प्रकार मिलता है –

"से भिक्खु कालण्णे बलण्णे मायण्णे खेयण्णे खणयण्णे विणयण्णे
समयण्णे भावण्णे, परिग्गहं अममायमाणे, कालेणुट्ठाई, अपडिण्णे।" –आचारांग सूत्र–2/5/110

वह भिक्षु कालज्ञ, बलज्ञ, मात्रज्ञ, क्षेत्रज्ञ, क्षणज्ञ, विनयज्ञ, समयज्ञ, भावज्ञ, परिग्रह पर ममत्व नहीं करने वाला, काल में उत्थान करने वाला और अप्रतिज्ञ होता है, अर्थात् समग्र दृष्टि से विचार करें तो ***सम्यक् आहार–प्रबन्धन के लिए एक व्यक्ति***

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

को इन बातों को जानना आवश्यक है – काल, स्वयं का बल, आहार की मात्रा, स्थान या क्षेत्र, अवसर, आचार–परम्परा, आहार के सिद्धान्त, भाव (स्वयं की अवस्था) आदि।

14.2.2 आहार का प्रयोजन

आचार्य श्री तुलसी ने अपनी कृति ''आचार–बोध'' में आहार करने के छह कारणों का उल्लेख किया है –

क्षुधा, वैयावृत्त्य, ईर्या और संयम आचरे ।
प्राण–धारण, धर्म–चिन्तन हेतु मुनि भोजन करे ।। 55।।

मुनि क्षुधा (भूख) निवृत्ति, सेवाकार्य, पदयात्रा, संयम का आचरण, प्राण–धारण और धर्म चिन्तन के लिए भोजन करे।

शरीर हमारी सब प्रवृत्तियों का मूल आधार है। शरीर स्वस्थ रहता है तो सभी प्रवृत्तियों में सहयोग मिलता है। अतः यहां तक कह दिया गया है – **''शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्''** अर्थात् शरीर धर्म का पहला साधन है। शरीर धर्म का ही नहीं अपितु सभी कार्यों का पहला साधन बन जाता है।

संयम का आचरण या साधना की दृष्टि से विचार करें तो शरीर का ***पोषण इस प्रकार से हो कि वह साधना में हमारा सहयोगी बना रहे।*** हम इतना अधिक न खायें कि ध्यान करने बैठते ही नींद सताने लगे। दूसरी ओर इतना कम भी न खायें कि ध्यान में खाना ही याद आये। भोजन में इतने मिर्च–मसालों का प्रयोग न हो कि आपके आवेग–आवेश उत्तेजित हो जाये। इसी प्रकार भोजन इतना गरिष्ठ भी न हो कि ध्यान करते समय सारा ध्यान पेट पर चला जाए। पेट भारी रहे। अतः साधना की दृष्टि से भोजन कैसा हो ? यह भी एक आवश्यक और विचारणीय प्रश्न है।

घेरण्ड संहिता में कहा गया है कि साधना करने वाला व्यक्ति यदि मिताहार नहीं करता है तो वह अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाता है और उसकी साधना सफल नहीं हो सकती।

मिताहारं विना यस्तु योगारम्भं तु कारयेत् ।
नाना रोगो भवेत्तस्य, किंचित् योगा न सिद्धयति ।।

इसी प्रकार दैनंदिन ***जीवन में अपने–अपने सेवा–कार्य की प्रकृति के अनुसार भी व्यक्ति को अपने आहार पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।*** अधिक मानसिक श्रम करने वाले का भोजन एवं अधिक शारीरिक श्रम करने वाले का भोजन एक जैसा नहीं हो सकता। विद्यार्थी का भोजन एवं एक ध्यान साधक का भोजन एक जैसा नहीं हो सकता। दिनभर ऑफिस या गद्दी पर बैठकर काम करने वाला यदि गरिष्ठ और अधिक कैलोरी का भोजन प्रयोग करेगा तो निश्चित ही मोटापे एवं अन्य रोगों से ग्रस्त हो जायेगा। इसी प्रकार यदि अधिक शारीरिक श्रम करने वाले मजदूर को पर्याप्त और भरपेट भोजन नहीं मिलेगा तो वह अधिक दिनों तक स्वस्थ नहीं रह पायेगा।

बोध प्रश्न :

1. आहार करने वाले को किन–किन बातों को जानना आवश्यक है ?
2. साधना की दृष्टि से हमारा आहार कैसा हो?

14.3.0 आहार के प्रकार

प्राचीन काल में मुख्य रूप से आहार के तीन प्रकार बताये गये – सात्त्विक आहार, राजसिक आहार और तामसिक आहार।

14.3.1 सात्त्विक आहार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्यक्ति का आहार सात्त्विक होना चाहिए। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार –***''जो भोजन चित्तवृत्तियों में विकृति पैदा न करे वह सात्त्विक भोजन है।***[1] सात्त्विक भोजन वह है जो खाने में हल्का हो, सुपाच्य हो, जिसमें अधिक मिर्च–मसाले न हो, जिसमें गरिष्ठता की मात्रा अधिक न हो और जो सात्त्विक व पवित्र भावना से बनाया गया हो। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जो भोजन सत्त्व गुणों को विकसित करने वाला है, वह सात्त्विक भोजन है।

14.3.2 राजसिक आहार

जिस आहार में रजोगुण की प्रधानता हो अथवा जो आहार व्यक्ति के रजो गुण को सक्रिय कर देता है, वह राजसिक आहार होता है। ***राजसिक आहार विकारों के संस्कारों को उभार कर प्रचण्ड बना देता है।*** यह भोजन गरिष्ठ होता है। इसमें जल तत्त्व की प्रधानता होती है। अतः वह दुष्पाच्य होता है। अधिक खाने पर यह विकृतियां पैदा करता है। गरिष्ठ भोजन देखने में सुन्दर और खाने में स्वादिष्ट होता है, पर उसमें अग्नि तत्त्व पर्याप्त मात्रा में नहीं होता है। अतः वह पचता नहीं है। अर्द्धपक्व भोजन विकृति पैदा करता है। निरन्तर और अत्यधिक गरिष्ठ भोजन व्यक्ति को असमय में बुढ़ा बना देता है। जो लोग अत्यधिक मिठाई खाते हैं, दुध, दही, मक्खन आदि का अत्यधिक सेवन करते हैं, सारी चीजें गरिष्ठ ही गरिष्ठ खाते हैं। वे लोग 30–40 वर्ष के होते होते बुढ़े जैसे लगने लगते हैं। उन व्यक्तियों में हृदयरोग आदि अनेक समस्याएं पैदा हो जाती है। व्यक्ति असमय ही काल–कवलित भी हो जाता है।

14.3.3 तामसिक आहार

जिस आहार को ग्रहण करने से व्यक्ति में तामसिक वृत्तियां उभरने लगती है, वह तामसिक आहार है। मांसाहार, मद्यपान आदि तामसिक आहार की श्रेणी में गिने जाते हैं। पशुओं की वृत्तियां तामसिक होती है। उनके संस्कार तामसिक होते हैं। मनुष्य में पाशविकता, अज्ञान, प्रमाद, क्रूरता आदि बढ़ने के कारणों में बहुत बड़ा कारण है –मांसाहार और मद्यपान। जार्ज बर्नाड शा मांस नहीं खाते थे। एक व्यक्ति ने जब उनसे मांस खाने के लिए कहा तो उन्होंने कहा –''मैं अपने पेट को कब्रिस्तान नहीं बनाना चाहता।'' पेट को कब्रिस्तान कैसे बनाया जा सकता है? पशुओं को कैसे खाया जा सकता है? ***पशुओं को खाने वाले केवल उनके मांस को ही नहीं खाते, मांस के साथ उनके संस्कारों, उनके रोगों और उसके भीतर रहने वाले विष को भी उदरस्थ करते हैं।***[2] मांसाहार अप्राकृतिक उत्तेजना को पैदा करता है। सहनशीलता को कम करता है। धमनियों और शरीर के तंतुओं का लचीलापन नष्ट करके आयु को कम करता है।

आधुनिक शरीर शास्त्री और स्वास्थ्य शास्त्री भी अपनी खोजों के आधार पर शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से मांसाहार को दोषपूर्ण बताते हैं।

बोध प्रश्न

1. आचार्य महाप्रज्ञजी के अनुसार सात्त्विक भोजन कौन सा है ?
2. तामसिक आहार क्यों नहीं करना चाहिए ?

14.4.0 संतुलित आहार

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से विचार करें तो आहार संतुलित होना चाहिये। ***आहार में संतुलन का तात्पर्य है कि भोजन में प्रोटीन, वसा, लवण, रेशेदार पदार्थ और जल इन छह तत्त्वों का समावेश हो।*** आहार से होने वाले शारीरिक कार्यो को क्रमशः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है – 1. ऊर्जा प्रदान करना, 2. शरीर की वृद्धि एवं तंतुओं की मरम्मत करना और 3. रोगों से शरीर की रक्षा एवं नियंत्रण करना।

[1] आहार और अध्यात्म, पृ.40 – आचार्य महाप्रज्ञ, प्रकाशक – जैन विश्व भारती, लाडनूँ
[2] आहार और अध्यात्म, पृ.45 – आचार्य महाप्रज्ञ, प्रकाशक – जैन विश्व भारती, लाडनूँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

14.4.1 ऊर्जा उत्पादक तत्त्व

कार्बोज एवं वसा को हम ऊर्जा उत्पादक तत्त्व कह सकते हैं। शरीर के तापमान को संतुलित बनाये रखना, हृदय को गति देना, अवशिष्ट पदार्थों का निष्कासन, मांसपेशियों का संकुचन आदि के लिए ये तत्त्व आवश्यक हैं। स्टार्च, शक्कर, सेल्युलोज, अन्न आदि में कार्बोज होता है। तेल, घी, मक्खन, मेवे आदि पदार्थों में वसा अत्यधिक पाई जाती है।

14.4.2 वृद्धिकारक तत्त्व

प्रोटीन जो कि प्रत्येक कोष का मुख्य भाग है, शरीर की वृद्धि में सहायक होता है। मांसपेशियां, रक्त, बाल, विभिन्न तंतु एवं आंतरिक अंग प्रोटीन की सहायता से ही बनते हैं। मेवे, दूध, दाल आदि में प्रोटीन भरपूर है। शरीर के भरण–पोषण के लिए खनिज लवण एवं पानी का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। हड्डियों एवं दांतों, विभिन्न कोषों में खनिज लवण की अधिक मात्रा पाई जाती है। कैल्शियम, लोहा एवं आयोडीन इनमें मुख्य हैं। दूध में कैल्शियम अधिक होता है। उसके बाद हरी पत्तेदार सब्जियां आती है। तीसरे नम्बर पर तिल व रागी (दक्षिण भारत में पाया जाने वाना अनाज) है। दाल व हरी पत्तेदार सब्जियों में लोहा अधिक होता है। पानी शरीर के तरल पदार्थों के निर्माण के लिए अत्यावश्यक है, जैसे– लसिका, रक्त, लार, आन्तरिक स्राव, एन्जाइम, हॉर्मोन आदि। लवणों द्वारा पानी का संतुलन एवं रक्त के जमने का कार्य होता है। कोषों की टूट–फूट मरम्मत एवं नये कोषों का निर्माण इन वृद्धिकारक तत्त्वों से ही होता है।

14.4.3 रक्षात्मक एवं नियंत्रक तत्त्व

शरीर के कार्यों पर कार्बोज को छोड़कर अन्य सभी तत्त्व नियंत्रण करते हैं। ***आवश्यक वसीय अम्ल, प्रोटीन, खनिज लवण, विटामिन व पानी कुछ रक्षात्मक कार्य के लिए जरूरी है।*** जैसे – तरल पदार्थों का परिवहन, अम्ल–क्षार का संतुलन, रक्त का जमना, एन्जाइम को क्रियाशील करना, शरीर के तापमान को नियंत्रित करना आदि।[1]

बोध प्रश्न

1. संतुलित आहार में कौन–कौन से तत्त्व होने चाहिए ?
2. वृद्धिकारक भोजन के तत्त्वों पर एक परिच्छेद लिखिये।

14.5.0 हमारा पाचन तन्त्र व आहार की अच्छी आदतें

प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञों का मानना है कि ***रोग–मुक्ति के लिए भोजन ही सबसे अच्छी औषधि है। शरीर विज्ञान और आहार विज्ञान को अच्छी तरह समझकर दोनों का तालमेल बिठाने वाला व्यक्ति ही भोजन का दवा के रूप में अच्छा उपयोग कर सकता है।***[2] जीवन में खाने संबंधी अनेक सुझाव हमें सुनने को मिलते हैं। उनके पीछे भी वैज्ञानिक कारण हैं। शरीर विज्ञान की दृष्टि से हमारे पाचनतंत्र के मुख्य अवयव हैं – दांत, जीभ, लार ग्रन्थियां, आहार नाल, आमाशय, पक्वाशय, छोटी आँत, बड़ी आँत, मलाशय। सहायक अवयव हैं – यकृत, पित्ताशय तथा अग्नाशय। पाचन तंत्र (चित्र 14.1) के अवयवों की प्रकृति को समझना और उनके अनुरूप भोजन की अच्छी आदतों को अपनाना अपने स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

14.5.1 भाव क्रिया और प्रसन्नता से खाना

भोजन के साथ पाचन संस्थान का संबंध अत्यन्त निकट का होता है। इसी संस्थान द्वारा शरीर के उपयोग के लिए शक्ति मिलती है। पाचन संस्थान के साथ मनोवैज्ञानिक तथ्यों का भी गहरा संबंध होता है। ***अतः खाते समय हमारा पूरा ध्यान वर्तमान की क्रिया (भाव–क्रिया) खाने में ही रहना चाहिए और मन में प्रसन्नता होनी चाहिए।*** इसके विपरीत अप्रसन्न वातावरण

[1] आहार विज्ञान, प्रो. सुधा नारायणन्, प्र.रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, संस्करण 1966 पृ.5–6
[2] हमारा भोजन, ओमप्रकाश त्रिखा, ग्राम भावना प्रकाशन, पट्टी कल्याण, संस्करण 1979,पृ.66

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

में खाना, जल्दबाजी में खाना, क्रोधित, चिन्तित, भयातुर होकर खाने से भोजन के पश्चात् पाचन पर विपरीत परिणाम उत्पन्न हो जाते हैं। इससे कभी अजीर्ण हो जाता है तो कभी आमाशयिक अम्ल की मात्रा अधिक या कम हो जाती है। यदि इसी प्रकार की मनःस्थिति दीर्घकाल तक सताती है तो कई प्रकार की आमाशयिक बीमारियां जड़ जमा लेती है।[1] अनेक अध्ययनों के द्वारा यह पता चला है कि संवेगों के कारण ही अधिकांशतः पेप्टिक अल्सर हो जाते हैं। अतः उद्विग्नता, चिंता, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या आदि से सदैव बचना उचित होता है। इनकी ओर खाते समय विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

14.5.2 भोजन को खूब चबाकर करना

खाने के बारे में एक प्रसिद्ध कहावत है – ***भोजन को पीएं और पानी को खाएं। अर्थात् भोजन को इतना चबाएं कि उसमें लार मिलकर उसे तरल बना दे।*** जो भी भोजन हम ग्रहण करते हैं वह सीधे शरीर द्वारा उपयोग करने की स्थिति में नहीं होता। पाचन क्रिया का प्रारम्भ मुंह से ही हो जाता है। दांत और जीभ के द्वारा भोजन को जितना अधिक चबाया जायेगा, लार ग्रन्थियों से निकली लार उसे उतना ही तरल बनाती जायेगी और लार मे स्थित टाइलिन एन्जाइम उसके साथ क्रिया करके उसे ग्लुकोज (शक्कर) में परिवर्तित कर देगा। इसी कारण भोजन (रोटी) को अधिक चबाने पर वह मीठा लगने लगता है। इसी सन्दर्भ में आचार्य श्री महाप्रज्ञजी फरमाते हैं कि 'यदि रोटी का असली स्वाद लेना हो तो उसे अलग (बिना सब्जी) से खूब चबा–चबा कर खाएं।' मुंह में स्थित दांतों द्वारा जो कार्य (भोजन को छोटे–छोटे टुकड़ों में तोड़ना, पीसना) किया जा सकता वह आँतें नहीं कर सकती। अतः बलपूर्वक बार–बार सुनने को मिलता है कि खाते समय खूब चबा–चबा कर खाना चाहिए।

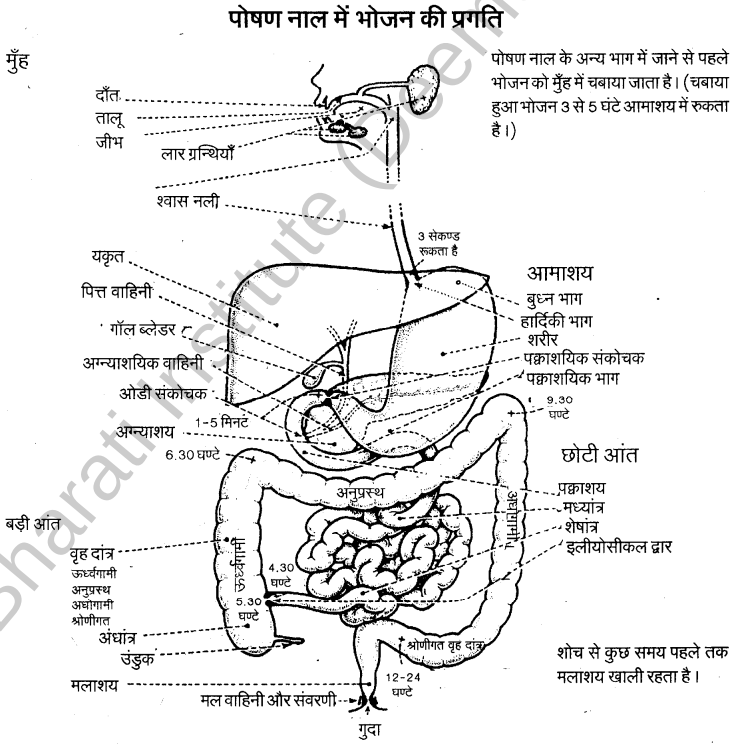

भोजन को इस पूरी यात्रा में जगह-जगह पर इसमें यांत्रिकी एवं रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं। साथ-साथ ही साथ पोषक तत्त्वों का अवशोषण एवं स्वांगीकरण भी होता रहता है।

चित्र 14.1

लार क्षारीय द्रव होता है। यह भोजन व मुख में आए हुए जीवाणुओं को भी नष्ट कर देता है।[2] अन्न (कार्बोहाइड्रेट) का पाचन मुख से ही शुरू हो जाता है। अतः यह भी सुझाव महत्त्वपूर्ण है कि ***अन्न और खटाई (अम्लीय) पदार्थ एक साथ***

[1] आहार–नियोजन, पृ. 128, प्रो. सुधा नारायणन्, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर,
[2] आहार एवं पोषण विज्ञान, पृ. 178, श्रीमती उषा मिश्रा, साहित्य प्रकाशन आगरा, प्रथम संस्करण, 1978

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नहीं खाने चाहिए क्योंकि साथ में खाने से लार की क्षारीय क्षमता नष्ट हो जाती है और कार्बोहाइड्रेट का पाचन कार्य मुख से प्रारम्भ नहीं हो पाता है।

14.5.3 गर्म–ठण्डा साथ–साथ न खाना

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दांतों के स्वास्थ्य की दृष्टि से ***गर्म पदार्थ खाकर तुरन्त ठण्डे पदार्थ के सेवन से बचना चाहिए।*** दोनों साथ–साथ लेने से मसूढ़े खराब हो जाते हैं और दांत कमजोर बनते हैं। सामान्यतया भोजन का तापमान शरीर के तापमान जितना ही होना चाहिए। अर्थात् भोज्य पदार्थ अधिक गर्म या अधिक ठण्डे नहीं होने चाहिए। भोजन शरीर के तापमान के अनुकूल होना चाहिए।

14.5.4 खाते समय मौन रहना

भोजन मुख से ग्रासनली में होता हुआ आमाशय में पहुंचता है। भोजन बिना चबाए निगलने से उसे ग्रासनली से गुजरने में परेशानी होती है। मुख के पिछे उपस्थित ग्रास नली, मुख गुहा और आमाशय को जोड़ने का कार्य करती है। ग्रासनली के पास में श्वास नली भी होती है। जब भोजन मुख से ग्रास नली में जाता है तब एक विशेष द्वार या ढक्कन (कंठच्छद epiglottis चित्र 14.2) द्वारा श्वास नली का मुंह ढक दिया जाता है। जब निवाला (ग्रास) ग्रास नली में निचे उतर जाता है तब वह ढक्कन खुल जाता है। खाते समय बातें करने से कभी–कभी ढक्कन के कार्य में अवरोध आ जाता है और भोजन का कुछ अंश श्वास नली में चला जाता है तब शरीर उसको खांसी आदि के द्वारा तुरन्त बाहर फैंकने की कोशिश करता है। यदि वह किसी कारण से श्वास नली में फंसा रह जाए तो जीवन के लिए संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः खाते समय जल्दबाजी और बातचीत से बचना चाहिए। मौन का अभ्यास करना चाहिए।

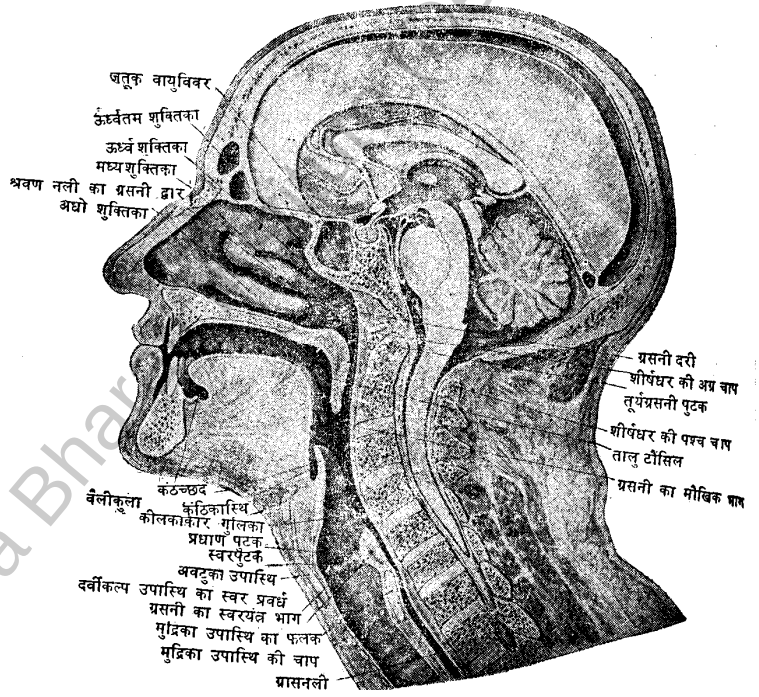

चित्र 9.2 नास, मुख, ग्रसनी तथा स्वरयंत्र का पारगामी अग्र–पश्च परिच्छेद

14.5.5 भोजन के साथ पानी नहीं पीना

Jain Vishva Bharati Deemed University), Ladnun

आमाशय की दीवारों (चित्र 14.3) में वृत्ताकार (Circular) तथा लम्बाकार (Longitudinal) मांसपेशियां उपस्थित होती है। जिनके संकुचन और विमोचन की क्रिया से भोजन का पूर्ण रूप से मंथन हो जाता है। आमाशय की आमाशयिक ग्रन्थियों से आमाशयिक रस (हाइड्रोक्लोरिक एसिड) निकलता है जो भोजन की पाचन क्रिया में सहायक होता है। ***भोजन के साथ–साथ पानी पीने से आमाशयिक रस की तीव्रता कमजोर हो जाती है। इससे पाचन में असुविधा होती है।*** अतः सामान्यतया भोजन के तुरन्त पहले या भोजन के साथ–साथ पानी नहीं पीना चाहिए। पानी पीने की आवश्यकता ही हो तो भोजन से पहले आधे घण्टे का अन्तराल होना चाहिए एवं भोजन के बाद लगभग एक घण्टे तक पानी नहीं पीना चाहिए। विशेष परिस्थिति में एक दो घूंट पानी पीया जा सकता है।

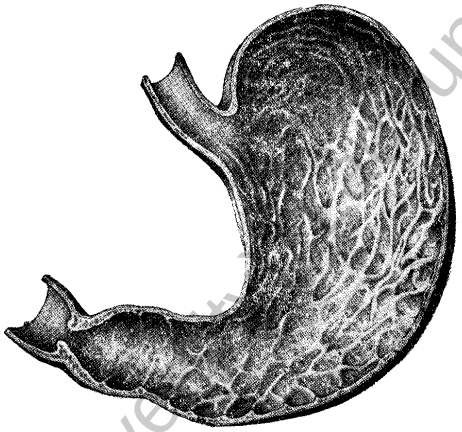

चित्र 14.3 —आमाशय का अन्दरूनी भाग।

उदाहरण के द्वारा इसे और अधिक अच्छे ढंग से समझा जा सकता है। मानलो किसी ने पूड़ी निकालने के लिए घी को कढ़ाई में गर्म किया। जब घी पूरा गर्म हो जाता है तब पूड़ी को उसमें डाला जाता है। पूड़ी उसमें पक कर के फूल जाती है। यदि कोई व्यक्ति उस गर्म घी में ठण्डा घी और मिला दे तो उससे घी की आंच मंद हो जाती है उसी में यदि पूड़ी निकालेंगे तो उस समय पकने में कठिनाई उत्पन्न होगी। जब तक घी की आंच पुनः अपने पूरे तापमान पर नहीं आ जाता तब तक पूड़ी कच्ची ही रह जायेगी। इसी प्रकार खाने के तुरन्त पहले या बीच में पानी पीने से आमाशयिक रस की आंच मंद हो जाती है। इससे भोजन के पाचन में कठिनाई होती है। अतः यह कहा गया है कि भोजन के बीच या तुरन्त पहले या बाद में पानी नहीं पीना चाहिए।

15.5.6 बार–बार न खाना

आमाशय में पाचक रस पर्याप्त मात्रा में बनने पर व्यक्ति को भूख लगती है। भोजन करने पर उस आमाशयिक रस का उपयोग हो जाता है। आमाशय में भोजन लगभग 3 से 5 घण्टे रुकता है। उसके बाद वह क्रमशः छोटी आँत व बड़ी आँत में चला जाता है। आमाशय के खाली होने पर फिर पाचक रस निकलते हैं और व्यक्ति को पुनः भूख लगती है। उससे पहले ही यदि व्यक्ति थोड़ी–थोड़ी देर बाद कुछ न कुछ खाता रहेगा तो आमाशय में उसका पाचन ठीक ढंग से नहीं हो पायेगा। इससे व्यक्ति को गैस, बदहजमी, कब्ज आदि की समस्याएं उत्पन्न हो सकती है। विशेष परिस्थिति, आमाशयिक अम्ल की रुग्णता में चिकित्सक थोड़ा–थोड़ा खाने की सलाह देते हैं जिससे आमाशयिक अम्लता का उपयोग हो सके एवं अम्लता की समस्या से बचा जा सके।

सामान्य स्वस्थ अवस्था में एक बार भोजन करने के बाद बार–बार नहीं खाना चाहिए। पूर्ण भोजन के बाद कम से कम 3 से 5 घण्टे का अन्तराल रहना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि बनती हुई खिचड़ी में थोड़ी–थोड़ी देर में चावल–दाल डालते रहें तो कुछ चावल–दाल कच्चे रह जाएंगे तो कुछ अधपक्की अवस्था में। आयुर्वेद के अनुसार बार–बार खाते हैं तो पूरा रस नहीं बन पाता एवं आँव (कच्चा मल) बन जाता है।

14.5.7 भूख से आधा खाना

कितना खाएं? जटिल प्रश्न का सरल समाधान बताते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी फरमाते हैं ***"भूख से आधा खाना चाहिए आधे का पुनः आधा पानी के लिए स्थान छोड़ना चाहिए और शेष हवा के आवागमन की जगह भी बचानी चाहिए।"*** परन्तु लोग जब खाने बैठते हैं तो भूख से भी दो कौर अधिक खाना चाहते हैं।[1] खाने के आधे घण्टे बाद कहते हैं कि पेट फट रहा है, आंते फट रही है। अब यदि खिचड़ी बनानी है और पूरा बर्तन चावल–दाल से भर कर अग्नि पर चढ़ाएंगे तो बर्तन तो फटेगा ही। एक पंडितजी यजमान के यहां भोजन करने के बाद वैद्यजी के पास गये और कहा– "वैद्यजी पेट में बड़ी तकलीफ है।" वैद्यजी ने गोली देते हुए

[1] आहार और अध्यात्म, पृ.22, आचार्य महाप्रज्ञ, प्रकाशक जैन विश्व भारती, लाडनूँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कहा–"दो गोली खा लो, तुरन्त आराम आ जायेगा।" पंडितजी कहते हैं वैद्यजी गोली खाने जितनी जगह पेट में बची होती तो क्या एक दो रसगुल्ले और नहीं खा लेता? अब जिस प्रकार खिचड़ी बनाने के लिए बर्तन को थोड़ा खाली रखना अनिवार्य है, जिससे कि पकने की अवस्था में चावल–दाल को फूलने का स्थान उपलब्ध हो सके। इसी प्रकार ***पाचनक्रिया ठीक ढंग से हो इसलिए पेट को भी थोड़ा खाली रखना अनिवार्य है। इससे खाने के बाद हल्कापन महसूस होगा,*** पेट फटेगा नहीं, आंते तकलीफ नहीं उठायेगी।

14.5.8 तली वस्तुओं से परहेज

तली हुई वस्तुओं को पचाने में शरीर को अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। हम जो खाते हैं उसमें सामान्यतया कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा होते हैं। रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा उनका अलग–अलग पाचन होता है। खाने से पहले यदि कोई वस्तु जिसमें कार्बोहाइड्रेट या प्रोटीन हो और फिर उसको तेल या घी में तल (fry) दिया जाये तो वह कंक्रीट की तरह ठोस, मजबूत होकर आपस में जुड़ जाते हैं। जैसे कचौरी, कोप्ता, पुड़ी, परांठा आदि। इनको वापस अलग–अलग करने के लिए शरीर को अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। अधिक ऊर्जा का उपयोग होता है। अतः जहां तक हो सके आमाशय व पाचन तन्त्र के स्वास्थ्य की दृष्टि से तले हुए पदार्थों के सेवन से बचना चाहिए।

14.5.9 भोजन के बाद मानसिक श्रम से बचना

आमाशय अथवा सम्पूर्ण पाचनतंत्र भोजन को अच्छे ढंग से पचा सके इसलिए भोजन करते ही तुरन्त मानसिक श्रम नहीं करना चाहिए। भोजन के तुरन्त पश्चात् मानसिक श्रम करने से पाचन क्रिया में बाधा उपस्थित हो सकती है। भोजन करने के बाद रक्त का प्रवाह अधिकतर आमाशय की ओर प्रवाहित होता है ताकि पाचन क्रिया सम्यक् हो सके। उस समय मस्तिष्क मे रक्त का प्रवाह कम हो जाता है। इससे व्यक्ति को हल्की नींद की भी अनुभूति होने लगती है। इसलिए ***खाने के बाद कुछ मिनटों के लिए बायीं करवट लेटने से भोजन के पाचन में मदद मिलती है।*** भोजन के बाद 100 कदम टहलने, वज्रासन में बैठने एवं सूर्य स्वर (बायीं नासिका को बंद कर, दायीं नासिका से श्वास लेना और छोड़ना) को चालू रखने से भी पाचन क्रिया अच्छी होती है।

14.5.10 उचित श्रम करना

भोजन मुंह द्वारा ग्रासनली से होते हुए आमाशय में पहुंचता है। आमाशय में उपस्थित हाइड्रोक्लोरिक अम्ल तथा एन्जाइम की क्रिया के कारण भोजन का रासायनिक विघटन होने लगता है। भोजन के आमाशय में रहने की अवधि उसके संघटन पर निर्भर है। पानी तथा अन्य निम्न कैलोरी युक्त पदार्थ अतिशीघ्र आमाशय से विदा हो जाते हैं। ठोस पदार्थों में कार्बोज सबसे कम समय तक आमाशय में रहता है। प्रोटीन उससे अधिक तथा वसा सबसे अधिक समय तक आमाशय में रहती है। इस बीच पाइलौरिक छिद्र के प्रत्येक बार खुलने पर थोड़ी मात्रा में भोजन पक्वाशय में जाता रहता है। पक्वाशय में भोजन पित्त रस तथा अग्नाशय के रस के साथ भलीभांति मिल जाता है जिससे पाचन क्रिया तेजी से होने लगती है। जिन लोगों को लम्बे समय तक एक जगह बैठे रहने का काम पड़ता है उनका अग्नाशय प्रभावित होता है। ***अग्नाशय से सम्बन्धित मधुमेह की बीमारी का एक कारण एक जगह पर लम्बे समय तक बैठे रहना भी है।*** उचित श्रम के अभाव में अग्नाशय अपना काम ठीक से नहीं कर पाता। अतः अग्नाशय के स्वास्थ्य की दृष्टि से यह आवश्यक है कि व्यक्ति शारीरिक श्रम को गौण न करे।

14.5.11 नियमित समय पर भोजन करना

नियमित रूप से भोजन न करने की आदत से या जब चाहे तब भोजन करने की आदत से आमाशय की आन्तरिक झिल्ली को नुकसान हो सकता है। ***भूख के समय उत्पन्न अतिरिक्त अम्ल के लिए आवश्यक प्रतिक्रिया हेतु भोजन न मिलने पर वह श्लेष्मिक झिल्लियों पर आक्रमण करता है।*** इससे आमाशय के भीतर के तन्तु गलने लगते हैं। यदि यह आदत लम्बे समय तक चलती रहे तो अन्त में आमाशयिक घाव (पेप्टिक अल्सर) का रूप ले लेते हैं। अतः भोजन का समय भी लगभग निर्धारित रहना चाहिए। उसकी नियमितता को बनाये रखना चाहिए जिससे कि आमाशय की आन्तरिक सुरक्षा बनी रहे।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.5.12 मैदे से बनी वस्तुओं का सेवन न करना

सम्पूर्ण छोटी आँत की लम्बाई लगभग 6 मीटर होती है। छोटी आँत की ग्रन्थियों में पाचक रस की उपस्थिति होती है जो भोजन की पाचन क्रिया में सहायता करते हैं। छोटी आंत की आंतरिक दिवारों में शोषणांकुर (चित्र 14.4) होते हैं जिनके द्वारा पके हुए भोजन का अवशोषण होता है। इन शोषणांकुरों में रक्त केशिकाएं (Blood Vessels) तथा लसिका केशिकाएं (Lymph Vessels) होती हैं जो पचे हुए पदार्थों को अपने अन्दर अवशोषित करके प्रतिहारिणी शिरा (Portal Vein) द्वारा यकृत में पहुंचाती है। बहुत महीन पीसा हुआ मैदा इन शोषणांकुरों के बीच में जाकर अवरूद्ध हो जाता है। यह छोटी आंत के स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा नहीं होता। अतः यह आवश्यक है कि भोजन में मैदे आदि की बनी वस्तुओं का उपयोग कम से कम किया जाये।

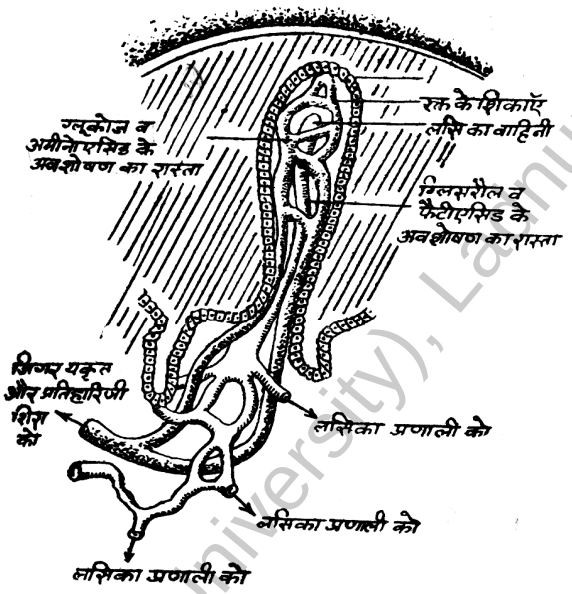

चित्र 14.4 – छोटी आँत के अनुप्रस्थ काट का एक शोषणांकुर

14.5.13 अधिक उम्र में अन्न की मात्रा को कम करना

25 वर्ष की अवस्था के बाद ऊर्जा की मात्रा हर दशक में कम होती जाती है। 40 वर्ष के बाद की अवस्था में यह कमी विशेष रूप से महसूस होती है। ऊर्जा की आवश्यकता में कमी निम्न ढ़ंग से होती है–

उम्र	ऊर्जा की आवश्यकता में कमी
40 से 50 वर्ष	3.5 प्रतिशत
50 से 60 वर्ष	3.5 प्रतिशत
60 से 70 वर्ष	7 प्रतिशत
70 से 80 वर्ष	7 प्रतिशत
80 वर्ष के बाद	7 प्रतिशत

इस तरह 80 वर्ष के व्यक्ति की ऊर्जा की आवश्यकता उसके 40 वर्ष की अवस्था की आवश्यकता से 21 प्रतिशत कम होती है।

वृद्धावस्था में ऊर्जा की आवश्यकता कम हो जाती है। अतः कार्बोहाइड्रेट[1] या अन्न व वसा युक्त भोज्य पदार्थों का चयन कम करना चाहिए। जिनके द्वारा प्रोटीन, कैल्शियम, लोहा व विटामिन की अच्छी मात्रा पहुंचती रहे ऐसे भोज्य पदार्थों का चयन करना चाहिए। कुल आवश्यक ऊर्जा के 25 प्रतिशत के हिसाब से भोजन की मात्रा कम लेनी चाहिए। वृद्धावस्था में टूट–फूट की गति बढ़ जाने के कारण कुछ अधिक मात्रा में प्रोटीन लाभदायक होता है।

14.5.14 रेशेदार पदार्थों का समावेश करना

[1] आहार एवं पोषण विज्ञान, पृ. 231, श्रीमती उषा मिश्रा, साहित्य प्रकाशन आगरा, प्रथम संस्करण, 1978

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वृद्धावस्था में व्यक्ति का पाचन भी अनेक प्रकार से प्रभावित होता है। आमाशय, छोटी आँत तथा बड़ी आँत की मांसपेशियों की संकुचनशीलता कम हो जाती है। अम्लीयता कम होने के कारण कैल्शियम व लोहे के अवशोषण की क्षमता भी कम हो जाती है। वृद्धावस्था में कब्ज भी रहने लगता है। अधिकतर बिना रेशे वाला भोजन लेने से व्यक्ति को कब्ज रहता है। व्यक्ति को बहुत अधिक रेशे रहित किया हुआ भोजन भी नहीं लेना चाहिए। ***सब्जियों, फलों, अनाज व उसके चोकर के रेशे आमाशय व आँत की गति को सामान्य बनाये रखने में सहायक होते हैं।*** इससे कब्ज आदि समस्या के समाधान में भी सहायता मिलती है।

14.5.15 मल को न रोकना

छोटी आँत का अंतिम सिरा बड़ी आँत से जुड़ जाता है। बड़ी आँत अपेक्षाकृत अधिक चौड़ी नली होती है। इसकी लम्बाई 1½ से 2 मीटर तथा व्यास 5½ से.मी. होता है। इसके आगे का भाग साधारण नलिका के रूप में रहता है। इसे मलाशय कहते हैं। भोजन का वह भाग जो छोटी आँत में अवशोषित नहीं हो पाता है, वर्ज्य पदार्थ के रूप में बड़ी आँत में आ जाता है। यहां इसका कुछ भाग फिर अवशोषित हो जाता है तथा शेष भाग मलाशय में एकत्रित होकर मल के रूप में बाहर निकल जाता है। यदि मल त्याग की क्रिया नियमित रूप से न हो तथा मल त्याग में कठिनाई हो तो यह रोग कब्ज कहलाता है। ***कब्ज का एक प्रमुख कारण है कि मल त्याग की इच्छा होते हुए भी मल त्याग के लिए समय से न जाना। इससे मलाशय में स्थित मल से तरल पदार्थ अवशोषित होकर मल कठोर हो जाता है।*** कब्ज से बचने के लिए सबसे पहले नियमित मल त्याग की आदत पर ध्यान देना चाहिए। व्यायाम व क्रियाशीलता कम रखने से भी व्यक्ति की आँतों की मांसपेशियां गतिशील नहीं हो पाती जिसके कारण से भोजन आमाशय से छोटी आँत व फिर बड़ी आँत में तेजी से खिसक नहीं पाता है। ***अनियमित आहार, बहुत कम विश्राम और हर समय बहुत जल्दी में रहना भी कब्ज के प्रमुख कारण है।*** इन सब में सुधार के लिए उचित मात्रा में व्यायाम, योगासन, नियमित समय से खाना तथा अच्छी मात्रा में दिन में जल (लगभग 6 से 8 गिलास) की पूर्ति आवश्यक है। इसके अतिरिक्त साबुत तथा मोटा पीसा अनाज, अच्छी मात्रा में रेशेयुक्त भोजन कब्ज को दूर करने में सहायक होते हैं।

आहार के प्रति सम्यक् ज्ञान व जागरुकता अनेक बीमारियों से बचाता है। ***शरीर सभी कार्यों में हमारा सहयोगी होता है अतः उसका पोषण इस प्रकार से हो कि हम शरीर से स्वस्थ, मन से प्रसन्न भावों से निर्विकार रह सकें।*** इस प्रयोजन की पूर्ति में सात्त्विक व संतुलित आहार सहयोगी होता है। सात्त्विक व संतुलित आहार के उपभोग में भी यह आवश्यक है कि हम पाचनतंत्र को अच्छी तरह समझ कर उसके अनुकूल अच्छी आदतों का विकास करें। इससे हम स्वास्थ्य की सुरक्षा तो करेंगे ही, साथ–साथ आहार का औषध के रूप में प्रयोग करके यदा–कदा होने वाले आकस्मिक रोगों में तुरन्त लाभ भी प्राप्त कर सकते हैं। इन सबके लिए यह आवश्यक होगा कि हम अपने व्यक्तिगत स्वास्थ्य एवं स्वयं की प्रकृति के प्रति भी जागरूक बनें और उसके अनुकूल व्यवहार को जीवन में प्राथमिकता दें।

बोध प्रश्न

1. भोजन करते समय ध्यान रखने योग्य सुझावों की सूची बनाइये।
2. मैदे से बनी हुई वस्तुओं का अधिक सेवन करने से क्या क्या हानियाँ हैं ?
3. 'भोजन को पीएं एवं पानी को खाएं' से क्या तात्पर्य है।

14.6.0 सारांश

- मनुष्य को अपने जीवन में उद्यम करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है और ऊर्जा की पूर्ति आहार से होती है। अतः आहार मनुष्य के लिए बहुत उपयोगी है। इसे औषधि रूप में भी बताया गया है। उपनिषदों में आहार के बारे में कहा गया है कि आहार से सत्त्व की शुद्धि होती है, सत्त्व की शुद्धि से शाश्वत तत्त्व (आत्मा) की स्मृति बनी रहती है, शाश्वत तत्त्व (आत्मा) की स्मृति से व्यक्ति सब ग्रन्थियों से मुक्त हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- आचार्यश्री तुलसी ने आहार करने के छह कारण बताए हैं – उनके अनुसार मुनि क्षुधा (भूख) निवृत्ति, सेवाकार्य, पदयात्रा, संयम का आचरण, प्राण–धारण और धर्म–चिन्तन के लिए भोजन करे। शरीर को स्वस्थ रखने का साधन है स्वस्थ एवं नियमित आहार एवं स्वस्थ शरीर ही धर्म का साधन है। इस प्रकार स्वस्थ आहार ही धर्म का साधन हो जाता है।

- प्राचीन काल से आहार के तीन प्रकार बताए गए हैं – 1. सात्त्विक आहार – जो भोजन चित्तवृत्तियों में विकृति पैदा न करे वह सात्त्विक भोजन है। 2. राजसिक आहार – जिस भोजन में रजोगुण की प्रधानता हो अथवा जो आहार व्यक्ति के रजोगुण को सक्रिय कर देता हो। 3. तामसिक आहार – जिस आहार को करने से व्यक्ति में तामसिक वृत्तियाँ उभरने लगती है, इसमें मांसाहार व मद्यपान को गिना जाता है।

- आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से संतुलित आहार ग्रहण करना उपयुक्त बताया गया है जिसमें प्रोटीन, वसा, लवण, रेशेदार पदार्थ और जल, इन छह तत्त्वों का समावेश हो। इससे शरीर को तीन लाभ होते हैं। 1. ऊर्जा प्राप्त होना, 2. शरीर की वृद्धि व तंतुओं की मरम्मत, 3. रोगों से शरीर की रक्षा।

- प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञों के अनुसार भोजन ही रोग–मुक्ति के लिए अच्छी औषधि है। शरीर विज्ञान और आहार विज्ञान को अच्छी तरह समझकर दोनों का तालमेल बिठाने वाला व्यक्ति ही भोजन का दवा के रूप में उपयोग कर सकता है।

- हमारा पाचनतंत्र हमारे स्वस्थ शरीर के लिए बहुत उपयोगी है। जिसको स्वस्थ रखने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को ध्यान में चाहिए – 1. भावक्रिया और प्रसन्नता से खाना, 2. भोजन को खूब चबाकर खाना, 3. गर्म–ठण्डा साथ न खाना, 4. खाते समय मौन रहना, 5. भोजन के साथ पानी न पीना, 6. बार–बार न खाना, 7. भूख से आधा खाना, 8. तली हुई वस्तुओं से परहेज, 8. उचित श्रम करना आदि–आदि।

14.7.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. मुख्य रूप से आहार के तीन प्रकार कौन से हैं ?
2. हमारे शरीर में ऊर्जा उत्पादक तत्त्व कौन से हैं ?
3. कार्बोज किन पदार्थों में पाया जाता है ?
4. शरीर विज्ञान की दृष्टि से हमारे पाचनतंत्र में पाए जाने वाले मुख्य अवयव कौन से हैं ?
5. लार में कौन सा एन्जाइम पाया जाता है ?
6. सम्पूर्ण छोटी आँत की लम्बाई कितनी होती है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. राजसिक आहार लेने से होने वाली हानियाँ कौनसी हैं ?
2. खाते समय मौन रहने के क्या फायदे हैं ?
3. अनियमित भोजन करने से होने वाले दुष्प्रभावों के नाम लिखें।

निबंधात्मक प्रश्न

1. मनुष्य जीवन में आहार का क्या महत्त्व है ? भोजन करने की कोई सात अच्छी आदतों का वर्णन करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 4 स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास

पाठ – 15 तनाव–प्रबंधन

रूपरेखा

15.0.0 उद्देश्य
15.1.0 भूमिका
15.2.0 तनाव : क्या और क्यों ?
15.2.1 तनाव के कारण
15.2.2 तनाव के लक्षण
15.2.2.1 शारिरीक लक्षण
15.2.2.2 मानसिक व भावनात्मक लक्षण
15.2.2.3 व्यवहारिक लक्षण
15.3.0 तनाव के प्रकार
15.3.1 शारीरिक तनाव
15.3.1.1 पेशीय संकुचन
15.3.1.2 रासायनिक घटनाएं
15.3.1.3 पेशी श्रान्ति
15.3.1.4 पेशी शिथिलन
15.3.2 मानसिक/भावनात्मक तनाव
15.3.2.1 दबाव तन्त्र
15.3.2.2 असामान्य परिवर्तन
15.4.0 तनाव के दुष्परिणाम
15.4.1 तनाव से संभावित रोग
15.5.0 तनाव का उपचार : कायोत्सर्ग
15.5.1 कायोत्सर्ग का पुनः पुनः अभ्यास
15.5.2 मांसपेशीय स्वास्थ्य
15.6.0 तनाव–प्रबंधन – प्रयोग
15.6.1 प्रयोग–प्रविधि
15.7.0 सारांश
15.8.0 अभ्यास प्रश्न

15.0.0 उद्देश्य

तनाव जहां स्वास्थ्य एवं सामाजिक समस्याओं का एक प्रमुख कारण है वहीं विद्यार्थियों की असफलता का भी एक प्रमुख कारण है। जो बालक या विद्यार्थी जितना तनाव की समस्या से मुक्त रहता है वह उतने ही अच्छे अंक प्राप्त कर हर क्षेत्र में सफल हो जाता है। अतः इस पाठ के माध्यम से आप जान पाएंगे –

1. तनाव के कारण और लक्षण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. तनाव का स्वरूप और प्रकार
3. तनाव के दुष्परिणाम
4. तनाव का उपचार
5. तनाव प्रबन्धन की विधि

15.1.0 भूमिका

स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास के लिए तनाव से निपटने की कला सीखना आवश्यक है। आज अधिकांश बीमारियों का प्रमुख कारण तनाव है। इससे वृद्ध से लेकर बच्चे तक ग्रसित हैं। जिस प्रकार चैन में खींचाव, तनाव आने से कमजोर कड़ी टूट जाती है उसी प्रकार तनाव होने से कमजोर अंग बीमार पड़ जाता है।

कार्य की सफलता के लिए जहाँ कुछ तनाव आवश्यक है वहीं अत्यधिक तनाव अनेक समस्याओं की जड़ है। वर्तमान युग में अनिद्रा, रक्तचाप, ह्रदयाघात, घुटने का दर्द, अस्थमा, डिप्रेशन, पाचनतंत्र का कमजोर होना आदि तनाव के ज्वलंत उदाहरण है। कार्य में असफलता का भी मुख्य कारण तनाव ही माना जाता है।

यदि स्वस्थ शरीर और स्वस्थ व्यक्तित्व व स्वस्थ राष्ट्र की परिकल्पना को साकार करना है तो तनाव मुक्ति की युक्ति को जानना होगा और उसका प्रयोग की एकमात्र विकल्प है।

15.2.0 तनाव : क्या और क्यों ?

विश्व में आज तनाव एक बड़ी समस्या बन गयी है। यह 21वीं शताब्दी के लिए खतरे की घंटी है। आम आदमी इसके रहते जीवन की चुनौतियो से निपटने में स्वयं को असहाय अनुभव कर रहा है। यह तनाव आज की अनेक बीमारियों का एक प्रमुख कारण बना हुआ है– अनिद्रा, उच्च–रक्तचाप, हृदयाघात, पाचनतंत्र की दुर्बलता, जोड़ों का दर्द, अस्थमा, सम्बन्धों में कटुता आदि। ***प्रतिवर्ष इस तनाव से करोड़ों कार्य–दिवसों का नुकसान राष्ट्र को होता है। यह तनाव प्रशासक, व्यवसायी, अध्यापक, विद्यार्थी, व्यवस्थापक, कर्मचारी, बेरोजगार आदि सभी आयु, लिंग के व्यक्तियों को प्रभावित करता है।***

15.2.1 तनाव के कारण

वर्तमान जीवनशैली में तनाव के अनेक कारण देखने में आते हैं –

1. अत्यधिक शारीरिक श्रम
2. अत्यधिक चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या आदि
3. सुविधावादी जीवनशैली
4. अत्यधिक महत्त्वाकांक्षाएं
5. गरिष्ठ भोजन
6. कार्य की अधिकता
7. समय का कुप्रबंधन
8. अनियमित जीवनशैली
9. एकल परिवार
10. पारिवारिक असंतोष व कड़वाहट
11. अनुकम्पी–परानुकम्पी नाड़ी तंत्र का असंतुलन
12. व्यवसायी–कर्मचारी संबंध आदि।

15.2.2 तनाव के लक्षण

तनाव की अधिकता को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक व व्यावहारिक लक्षणों से पहचाना जा सकता है।

15.2.2.1 शारीरिक लक्षण

1. तनावग्रस्त मांसपेशियां
2. अव्यवस्थित श्वास/श्वास की संख्या में वृद्धि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. मुंह सूखना
4. हथेलियों पर पसीना आना
5. हाथ–पैर ठण्डे होना
6. हाथों में कम्पन्न
7. बार–बार पेशाब आना
8. काम में मन नहीं लगना
9. पाचनतंत्र का कमजोर होना
10. यकृत का संचित भण्डार रिक्त होना
11. सिरदर्द
12. आंखों में पानी आना, लाल होना, सूजन आदि।
13. रक्तचाप बढ़ना/घटना

15.2.2.2 मानसिक व भावनात्मक लक्षण

1. असामान्य व्यवहार
2. चिड़चिड़ापन
3. हीनभावना
4. क्रोधी स्वभाव बनना
5. चिन्ता
6. निराशा
7. असुरक्षा की भावना
8. अनिद्रा
9. दुःस्वप्न
10. मनःस्थिति का बार–बार बदलना
11. रोना, चिल्लाना
12. बार–बार भूल जाना
13. जीवन में असफलता नजर आना।

15.2.2.3 व्यावहारिक लक्षण

1. नशे की आदत
2. अस्त–व्यस्त जीवनशैली
3. सामाजिकता में बदलाव
4. तनावग्रस्त मुद्राएं–जैसे दांतों से नाखुन काटना आदि।

बोध प्रश्न

1. तनाव के क्या–क्या कारण हैं ?
2. तनाव के व्यावहारिक लक्षण क्या हैं ?

15.3.0 तनाव के प्रकार

तनाव को पहचानना और उससे छुटकारा पाना एक चुनौती है। ***मोटे तौर पर तनाव को तीन भागों में बांटा गया है– शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक तनाव।*** ये तीनों प्रकार के तनाव एक दूसरे में भी बदलते हैं। शारीरिक तनाव से मानसिक तनाव और भावनात्मक तनाव भी उत्पन्न हो जाता है। कभी–कभी मानसिक तनाव से शारीरिक और भावनात्मक तनाव उत्पन्न हो जाते हैं। अतः इनका पारस्परिक परिवर्तन सम्भव है। सामान्यतया शारीरिक तनाव अत्यधिक शारीरिक श्रम से पैदा होता है। इसे विश्रान्ति या थकान भी कहते हैं। यह तनाव विश्राम व नींद से दूर हो जाता है। मानसिक तनाव अत्यधिक चिन्तन या चिन्ता से होता है। भावनात्मक तनाव (निषेधात्मक) बुरे भाव (आर्त्त व रौद्रध्यान) से पैदा होता है। ये दोनों तनाव नींद में भी स्वप्न के रूप में अभिव्यक्त होते रहते हैं। इन दोनों से निजात पाना अधिक चुनौतीपूर्ण है। आधुनिक जीवनशैली में व्यक्ति इस चुनौती का सामना मादक पदार्थ या प्रशामक औषधियों के सेवन से कर रहा है पर अनेक बार इस विधि का भारी मूल्य चुकाना पड़ता है। इससे अनेक असुविधाएं व जटिलताएं बढ़ जाती है। अन्य अतिरिक्त बीमारियों का सामना करना पड़ता है। अच्छा यह है कि हम ऐसे तनाव का मुकाबला प्राकृतिक तरीके से करें। तनाव से निपटने का प्राकृतिक, सहज व आन्तरिक तरीका है – कायोत्सर्ग। इसको विस्तार से समझेंगे तथा कायोत्सर्ग से तनाव कैसे दूर होता है ? क्या तनाव आवश्यक है ? तनाव से क्या–क्या हानियां हो सकती हैं ? तनाव कैसे पैदा होता है ? तनाव की स्थिति में मांसपेशियां कैसे कार्य करती हैं ? जैसे प्रश्नों पर चर्चा भी करेंगे।

15.3.1 शारीरिक तनाव (Physical Tension)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शारीरिक तनाव को पूरी तरह से समझने के लिए मांसपेशीय संकुचन (Muscle Contraction) को समझना आवश्यक है। हमारे शरीर में दो प्रकार की पेशियां होती हैं – इच्छाचालित और स्वतःचालित। कंकाली संरचनाओं (हड्डियों) के साथ जुड़ी हुई पेशियों को कंकाली पेशियां भी कहते हैं। ये इच्छाचालित होती हैं। पेशी कोशिकाओं को पेशी तंतु कहते हैं। प्रत्येक प्रकार का पेशी तंतु छोटी–छोटी ईकाइयों का बना होता है जिन्हें मायोफाइब्रिल (Myofibril) कहते हैं।

15.3.1.1 पेशीय संकुचन

कंकाली पेशी में निम्नलिखित अतिसूक्ष्म संरचनात्मक और रासायनिक घटनाएं होती हैं जिनसे संकुचन होता है।

डॉ. एच.ई. हक्सले ने तंतु फिसलन सिद्धान्त (Sliping filament theory) का प्रतिपादन किया। हक्सले ने इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी से पेशी–तन्तुओं के पैटर्न (व्यवस्था) को विश्रामी अवस्था में, शिथिल अवस्था में तथा लघूत्तर होने के विभिन्न स्तरों पर देखा। उसने देखा कि जब पेशी लघु से लघुत्तर होती जाती है तब मोटे और पतले तंतु एक दूसरे पर फिसलते जाते हैं। लेकिन उनमें से कोई भी तंतु पेशी के लघुकरण के दौरान स्वयं छोटा नहीं होता।

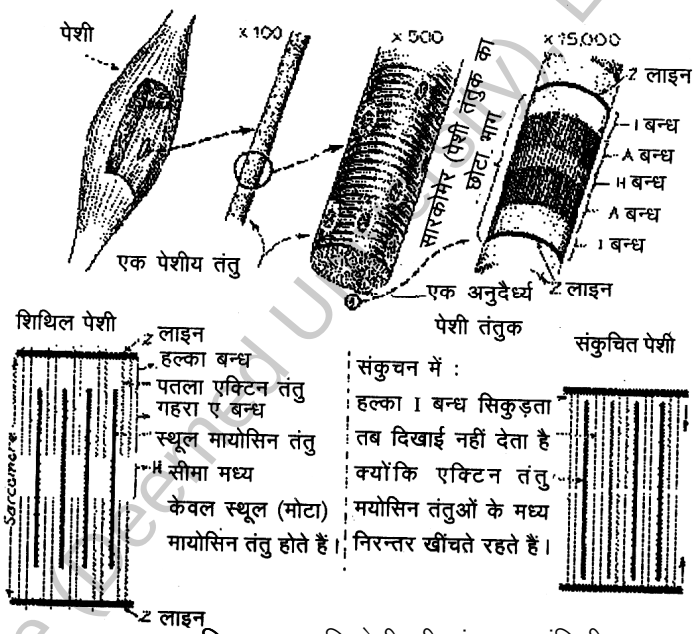

चित्र 15.1 अस्थिपेशी की संकुचन यांत्रिकी

15.2.1.2 रासायनिक घटनाएं

पेशी सकुचन में संबंधित रासायनिक घटनाओं का अध्ययन एलबर्ट सेन्ट जार्जियाई तथा अन्य वैज्ञानिकों ने किया है।

प्रेरक तंत्रिका में से तंत्रिका पेशी साइनेप्स अथवा प्रेरक अन्तिम प्लेट पर स्थित आशयों से ऐसीटाइलकोलीन निकलती है जो पेशी को उत्तेजित करती है। इससे अनेक रासायनिक क्रिया द्वारा ऊर्जा (Energy) निकलती है। यह ऊर्जा पेशी संकुचन में काम आती है।

15.3.1.3 पेशी–श्रान्ति (Muscle fatigue)

संकुचित अवस्था में पेशी तनाव कितने समय तक बना रह सकता है। यह इस बात पर निर्भर होता है कि पेशी में ऊर्जा आपूर्ति की कितनी क्षमता है ? पेशी में ऊर्जा की आपूर्ति घट जाने पर संकुचन का बल कम हो जाता है और अन्त में गिरकर शून्य हो जाता है। ***अधिक समय तक उत्तेजित करने के बाद संकुचन बल में आने वाली गिरावट को पेशी–श्रान्ति या थकान कहते हैं।***

पेशी में ग्लाइकोजन भी काफी मात्रा में संचित रहता है। यह ग्लाइकोजन एक अभिक्रिया श्रृंखला के द्वारा लेक्टिक अम्ल में विघटित हो जाता है और ऊर्जा निकलती है। ***पेशी में लेक्टिक अम्ल एकत्रित हो जाने से पेशीश्रान्ति (थकान) आ***

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाती है क्योंकि इसका ऊर्जा भण्डार समाप्त हो चुका होता है और श्रान्त–पेशी में दर्द महसूस होने लगता है। साधारण शारीरिक विश्राम की अपेक्षा अधिक कठिन व्यायाम के बाद पेशी में जल्दी श्रान्ति आ जाती है।

15.3.1.4 पेशी–शिथिलन

यदि पेशी से लगातार काम लेना है तो उसे एक के बाद एक संकुचित और शिथिल होते रहना होगा। अतः यह आवश्यक है कि उसे ए.टी.पी. के रूप में ऊर्जा भी लगातार मिलती रहे। संकुचन के लिए ऊर्जा उपलब्ध नहीं होती तब पेशी श्लथ व निष्क्रिय हो जाती है। ***तनाव की स्थिति में पेशी उत्तेजित और संकुचित रहने लगती है। इससे ऊर्जा का अनावश्यक व्यय होता है। थकान आती है। कायोत्सर्ग का अभ्यास तंत्रिका पेशी साइनेप्स पर उत्तेजना को शान्त कर देता है। ऊर्जा के अपव्यय को रोकता है जिससे मांसपेशियों का संकुचन दूर हो जाता है, वे शिथिल हो जाती हैं। उन्हें गहन विश्राम मिलता है।***

15.3.2 मानसिक या भावनात्मक तनाव

मानसिक या भावनात्मक तनाव की समस्या मूलतः आन्तरिक और बाह्य दबाव से उत्पन्न होती है। अतः उसको सुलझाने के लिए ''दबाव'' को समझना भी जरूरी है। दैनिक जीवन में उन कारणों या परिस्थितियों को दबाव कहा जाता है जो हमारे भीतर असामान्य परिवर्तन ला देती है और मांसपेशियों में खिंचाव या तनाव उत्पन्न कर देती हैं। ***सहनीय क्षमता तक उत्पन्न तनाव स्वतः समाप्त होता रहता है, परन्तु जब परिस्थितियां विषम और अवांछनीय होती हैं तो क्षमता से अधिक तनाव हमारे जीवन को अस्त–व्यस्त कर देता है।*** तनाव उत्पन्न करने वाली विषम और अवांछनीय स्थितियां बाह्य भी होती है एवं आन्तरिक भी। बाह्य परिस्थितियां जैसे सर्दी, गर्मी, मादक वस्तुओं का सेवन, भयकारक, चिन्ताजनक व प्रतिकूल परिस्थितियां आदि दबाव का कार्य करती है और इससे असहनीय तनाव भी उत्पन्न होता है। आन्तरिक स्थितियां – आवेश, भय, ईर्ष्या, शोक एवं हर्ष भी दबाव का कार्य करते हैं।

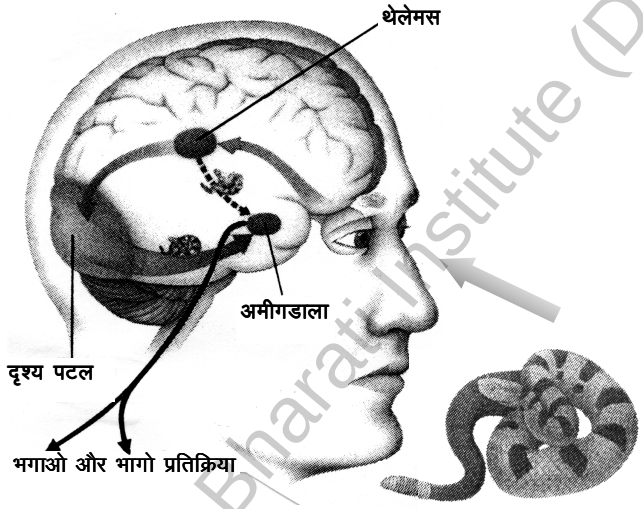

चित्र 15.2 दबाव तंत्र

15.3.2.1 दबाव तन्त्र

इस प्रकार तनावोत्पादक स्थितियों से व्यक्ति का सामना होने पर व्यक्ति के भीतर स्थित कुछ अवयव तुरन्त सक्रिय हो जाते हैं। उन अवयवों को सामूहिक रूप से 'दबाव तन्त्र' (चित्र 15.2) कहा जाता है। इसमें मुख्यतः निम्नलिखित अवयव/अंग सक्रिय रूप से भाग लेते हैं–

(क) हाइपोथेलेमस
(ख) पिच्यूटरी ग्रन्थि
(ग) एड्रीनल ग्रन्थियां
(घ) स्वायत्त नाड़ी तन्त्र का अनुकम्पी विभाग

उदाहरण के लिए मानलो कोई व्यक्ति अकेले बगीचे में घूम रहा है। अचानक उसे अपने सामने आता हुआ भयंकर काला सर्प दिखाई दे जाये। तब उसकी सूचना आँखों के द्वारा सीधे हाइपोथेलेमस तक भी पहुंच जाती है। यह मस्तिष्क का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है। यह अंग खतरे को पहचान कर व्यक्ति की सर्प से रक्षा के लिए सर्प को भगाने के लिए या स्वयं को भागने (fight or flight) के लिए तैयार करता है। हाइपोथेलेमस इसकी सूचना अन्तःस्रावी ग्रन्थि तन्त्र के नायक पिट्युटरी ग्रन्थि तन्त्र को देता है। वह आगे एड्रीनल ग्रन्थियों को सक्रिय कर देता है। एड्रीनल ग्रन्थियां स्वायत्त नाड़ी तन्त्र के अनुकम्पी विभाग को सक्रिय कर देता है। इतना सब कुछ ही क्षणों में घटित हो जाता है।

15.3.2.2 असामान्य परिवर्तन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ऐसे दबावों से निपटने के लिए अनुकम्पी विभाग हमारे शरीर में अचानक ही तीव्र और व्यापक अनेक असामान्य परिवर्तन घटित कर देता है। जैसे –

1. पाचन क्रिया मंद या बिल्कुल स्थगित हो जाती है।
2. लारग्रन्थियों के कार्य– स्थगन से मुंह सूख जाता है।
3. चयापचय की क्रिया में तेजी आ जाती है।
4. श्वास तेजी से चलने लगता है तथा हांफ बढ़ जाती है।
5. यकृत द्वारा संग्रहित शर्करा को अतिरिक्त रूप से रक्त प्रवाह में छोड़ा जाता है जिसे हाथ–पैर की मांसपेशियों तक पहुंचाया जाता है।
6. हृदय की धड़कन बढ़ जाती है जिससे शरीर के अपेक्षित भागों में अधिक रक्त को पहुंचाया जाता है।
7. रक्तचाप बढ़ जाता है।

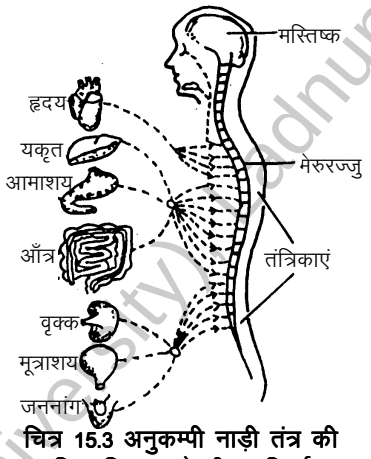

चित्र 15.3 अनुकम्पी नाड़ी तंत्र की अति सक्रियता से तीव्र परिवर्तन

इन परिवर्तनों के कारण दबावजनित परिस्थितियों से निपटने के लिए अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न होती है। इससे मांसपेशियां तनाव से भर जाती है। उपरोक्त उदाहरण में जैसे सांप के सामने आते ही शरीर में अचानक इतने परिवर्तन हो जाते हैं। सांप के चले जाने या वहां से व्यक्ति के दूर चले जाने के बाद धीरे–धीरे स्थितियां सामान्य हो जाती है।

बोध प्रश्न

1. पेशीय संकुचन से आप क्या समझते हैं ?
2. दबाव से आपका क्या आशय है ?

15.4.0 तनाव के दुष्परिणाम

एक सीमा तक तनाव सुरक्षा, विकास एवं कार्यक्षमता में उपयोगी होता है। बाह्य घटनाएं घटित होती एवं समाप्त भी हो जाती हैं किन्तु आन्तरिक चिन्ताएं, काल्पनिक भय व आशंकाएं जल्दी समाप्त नहीं हो पाते हैं। उससे तनाव अनेक बार व्यक्ति की सहन क्षमता को लांघ जाता है। ***बार बार एवं निरन्तर रहने लगता है तब वह घातक बन जाता है।*** इससे शरीर में होने वाले असामान्य परिवर्तन पुनः सामान्य अवस्था में नहीं आ पाते, कालान्तर में वे बीमारी का रूप भी ले लेते हैं।

15.4.1 तनाव से संभावित रोग

जिन अवयव या अंगों पर अत्यधिक दबाव पड़ता है वे रुग्ण बन जाते हैं जैसे –

1. **मस्तिष्क –** अधिकांश मानसिक बीमारियो की शुरुआत के मूल में तनाव ही होता है। जैसे स्नायु रोग एवं मानसिक अवसाद। शारीरिक बीमारियां जैसे सिरदर्द, माइग्रेन, गंजेपन के कुछ प्रकार आदि।
2. **हृदय –** हृदय धड़कनों का अनियमित या तेज हो जाना, उच्च रक्तचाप, पीरियोडिक एन्जाइमा, दिल के दौरे।
3. **पाचनतंत्र –** मुख में छाले, दांत पीसना, बदहजमी, अधिक गैस बनना, अल्सर, इरिटेबल बाउल सिन्ड्रोम, पेट दर्द, कभी कब्ज, कभी दस्त, मधुमेह आदि।
4. **मूत्राशय –** बार–बार पेशाब जाने की इच्छा होना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. **चर्म** – दाद, एक्जिमा, सोराइसिस, फफोले आदि।

चित्र 15.4 तनाव का प्रभाव

शरीरगत असामान्य परिस्थितियों को सामान्य बनाने का कार्य परानुकम्पी नाड़ी तंत्र का होता है। अनुकम्पी नाड़ी तंत्र सक्रियता और ऊर्जा उत्पादन को तीव्र कर देता है तो दूसरी तरफ दबावजनक परिस्थितियों के हट जाने पर शरीर को पुनः विश्राम व शक्ति को सुरक्षित रखने का कार्य परानुकम्पी नाड़ीतंत्र करता है। ***इन दोनों तंत्रों का संतुलन स्वस्थ, शान्त एवं प्रसन्न जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है।***

दबावपूर्ण परिस्थितियां जब हावी होती हैं तो परानुकम्पी नाड़ीतंत्र को कार्य करने का अवसर ही नहीं मिल पाता। परिणामतः निरन्तर तनाव बना रहता है। इससे अनेक मनोकायिक बीमारियां पैदा हो जाती हैं। यदि वर्तमान जीवनशैली, शहरी आपाधापी एवं अपने चारों ओर की परिस्थितियों को नहीं बदल सकते हैं जो मुख्य रूप से तनाव पैदा कर रही हैं तब इस परिस्थिति में परानुकम्पी नाड़ीतंत्र को कैसे सक्रिय किया जा सकता है ? किस प्रकार तनाव और उसके दुष्परिणामों से बचा जा सकता है ?

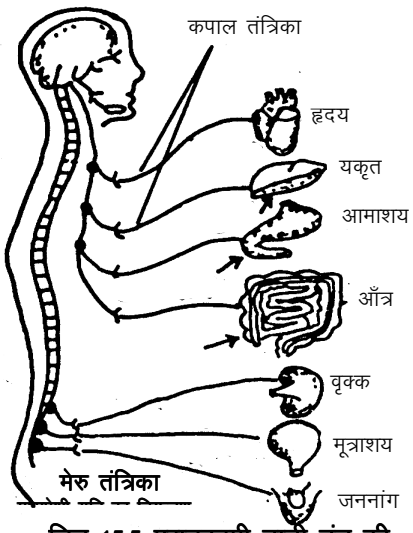

चित्र 15.5 परानुकम्पी नाड़ी तंत्र की सक्रियता से संतुलन

बोध प्रश्न

1. तनाव घातक कब बनता है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. तनाव से उत्पन्न शरीरगत असामान्य परिवर्तन को सामान्य बनाने का कार्य किसका है ?

15.5.0 तनाव का उपचार : कायोत्सर्ग

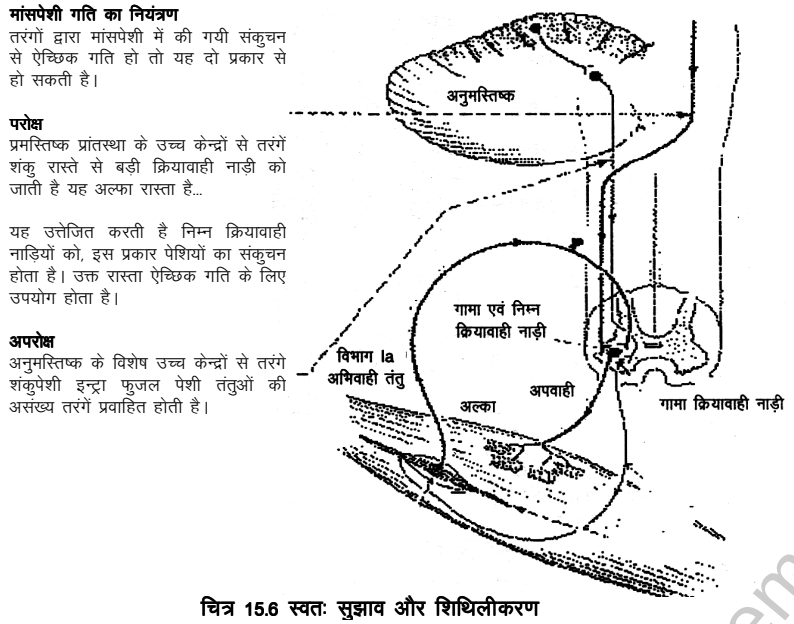

चित्र 15.6 स्वतः सुझाव और शिथिलीकरण

हमारे भीतर ऐसी शक्ति है जिससे परानुकम्पी नाड़ीतंत्र को सक्रिय कर अनुकम्पी नाड़ी तंत्र की अति–सक्रियता को संतुलित किया जा सकता है। वैज्ञानिक इसे (Relaxation Response) कहते हैं। अध्यात्म की भाषा में **इसे कायोत्सर्ग कहा जाता है। कायोत्सर्ग में स्वतः सुझाव द्वारा मांसपेशीय अति विद्युत के अपव्यय को रोककर एवं शिथिलता को प्राप्त कर परानुकम्पी नाड़ी तंत्र को सक्रिय कर लिया जाता है इससे तनाव के दुष्परिणामों से बच जाते हैं।** प्रतिदिन 20 मिनट का कायोत्सर्ग का अभ्यास न केवल तनाव को दूर करता है बल्कि साथ–साथ बुद्धि की जड़ता को भी दूर करता है। एकाग्रता में वृद्धि करता है, कार्यक्षमता को बढ़ाता है। अन्तर्दृष्टि एवं प्रज्ञा को जागृत करता है। कालान्तर में अनेक मनोकायिक बीमारियों से मुक्त करता है।

15.5.1 कायोत्सर्ग का पुनः पुनः अभ्यास

दसवैकालिक सूत्र में मुनि के लिए भगवान् महावीर ने एक विशेषण का प्रयोग किया है– **अभिक्खणं काउसग्गकारी**, बार बार कायोत्सर्ग करने वाला मुनि। भगवान महावीर ने मुनि के लिए निर्देश भी किया है – **असइं वोसट्ठचत्तदेहे।** अर्थात् मुनि बार बार कायोत्सर्ग करें। प्रत्येक कार्य के अन्त में कायोत्सर्ग करें। प्रारम्भ में भी कायोत्सर्ग करें। इस निर्देश की महत्ता आज के सन्दर्भ में खेल–विज्ञान को देखें तो सहज ही उभर कर सामने आ जाती है। ***बार बार कायोत्सर्ग करने से मांसपेशियों व तंत्रिकाओं को गहन विश्राम मिलता है एवं अगले कार्य को श्रेष्ठ ढंग से करने में मन व शरीर तैयार हो जाता है।***

प्रत्येक खिलाड़ी अपने आप से श्रेष्ठ खेल की अपेक्षा रखता है। यह बिना प्रशिक्षण एवं अभ्यास के संभव नहीं है। खेल मनोविज्ञान के अनुसार खेल में श्रेष्ठ कार्यक्षमता की अभिव्यक्ति के लिए चार चरण उभर कर आते हैं –

1. खेल के पूर्व अपने आपको, अपनी मानसिकता को एवं अपनी मांसपेशियों को तैयार करना।
2. श्रेष्ठ खेल का प्रदर्शन करना।
3. खेल के बाद मांसपेशियों को सामान्य करना।
4. इसके बाद मन एवं शरीर को गहन विश्राम देना।

समर्पित एवं अच्छे खिलाड़ी खेल के पहले पूर्वाभ्यास करते हैं। फिर अपना खेल खेलते हैं। खेल के बाद वे अपने आपको एवं मांसपेशियों को सामान्य अवस्था में लाते हैं। इन तीन अवस्थाओं से गुजरने के बाद वे पूर्ण विश्राम करते हैं या अपनी रुचि के कार्य में लग जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इससे एक बात स्पष्ट होती है कि ***श्रेष्ठ कार्यक्षमता के विकास के लिए शरीर एवं मन को गहन विश्राम देना आवश्यक है*** जिससे वह अगली बार श्रेष्ठ कार्यक्षमता को अभिव्यक्त कर सके। जो व्यक्ति अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित हैं उन्हें इस क्रिया को बार बार दोहराना आवश्यक है।

जीवन एक खेल है और हम सब खिलाड़ी हैं। यदि अपने आपमें श्रेष्ठ कार्यक्षमता का विकास करना चाहते हैं तो हमें भी इसी क्रम व चक्र से गुजरना होगा। हममें से कितने लोग पूर्व तैयारी करते हैं, कितने लोग एक कार्य समाप्त कर दूसरा कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व स्वयं को सामान्य करते हैं, या बिना विश्राम या सामान्य हुए ही दूसरे कार्य में लग जाते हैं ? सामान्य हुए बिना ही किस प्रकार हम अपने जीवन में श्रेष्ठ कार्यक्षमता को अभिव्यक्त कर पायेंगे। महत्त्वपूर्ण बात है–गहन विश्राम या श्रेष्ठ कार्यक्षमता के विकास हेतु समय निकालना।

दबाव व तनाव से निपटना अत्यन्त आवश्यक है। कार्य करना जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही श्रेष्ठ कार्यक्षमता हेतु गहन विश्राम। दैनिक जीवन के क्रियाकलापों को करते हुए होने वाले तनावों से कैसे निपटें ? इसका उत्तर हमारे भीतर है। हमारे दृष्टिकोण व विचारों में है। अपनी इच्छाशक्ति में है।

15.5.2 मांसपेशीय स्वास्थ्य

मांसपेशीय स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है मांसपेशी से जुड़ी तंत्रिका की विद्युत ऊर्जा का अपव्यय न हो और वहां एकत्रित लेक्टिक एसिड (दुग्धाम्ल) का विसर्जन होता रहे। यह तभी संभव है जब मांसपेशीय सक्रियता के बाद उन्हें शिथिल होने का अवसर मिले। यदि हम प्रत्येक क्रिया के बाद विश्राम या सलक्ष्य कायोत्सर्ग की आदत डालें तो मांसपेशियां स्वतः शान्त व शिथिल हो जायेंगी। मांसपेशियों में एकत्रित दुग्धाम्ल विसर्जित हो जायेगा एवं पेशियों की अनावश्यक उत्तेजना स्तर में कमी आयेगी। उनकी स्वस्थता बढेगी। अतः आवश्यक है कि हम प्रत्येक कार्य के पहले व बाद में कुछ क्षण या मिनटों के कायोत्सर्ग की आदत बनाएं। इससे हम शान्ति, तनावमुक्ति, प्रसन्नता एवं स्वास्थ्य एवं श्रेष्ठ कार्यक्षमता को भी प्राप्त कर सकेंगे।

बोध प्रश्न

1. बार–बार कायोत्सर्ग करने के क्या लाभ है ?
2. मांसपेशीय स्वास्थ्य के लिए क्या आवश्यक है ?

15.6.0 तनाव प्रबंधन – प्रयोग

शारीरिक एवं मानसिक लाभ के लिए कायोत्सर्ग का 5 सैकण्ड से 20 मिनट तक का अभ्यास करें। 5 सैकण्ड, 1 मिनट और 5 मिनट का कायोत्सर्ग दिन में अनेक बार करें। कार्य के प्रारम्भ में एक मिनट का कायोत्सर्ग करें। बीच–बीच में 5 सैकण्ड का कायोत्सर्ग करें। सांयकाल सम्पूर्ण कार्य निवृत्ति के पश्चात् 20 मिनट का कायोत्सर्ग करें। भावनात्मक विकास व लाभ के लिए 45 मिनट का कायोत्सर्ग प्रतिदिन 3 महीने तक निरन्तर करें। ***आध्यात्मिक विकास व लाभ के लिए 60 मिनट का कायोत्सर्ग प्रतिदिन 2 से 3 बार तक 6 महीने तक करें तथा निरन्तर जारी रखें।***[1]

15.6.1 प्रयोग–प्रविधि

2. **पांच सैकण्ड के लिए** –पूरे शरीर पर चित्त को फैला कर एक बार स्वयं सुझाव दें ''शिथिल'' और उसका अनुभव करें।

3. **एक मिनट के लिए** – पूरे शरीर पर चित्त को फैला कर स्वयं सुझाव दें – शिथिल हो जाए 3 बार, शिथिल हो रहा है 3 बार, अनुभव करें – शिथिल हो गया है।

[1]. देखें – प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति – आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **5 मिनट के लिए** – पहले एक मिनट के लिए उपरोक्त विधि से सभी सुझाव दें। फिर शेष चार मिनट में पूरे शरीर को तीन भागों में बांट कर उपरोक्त विधि से सुझाव दें। अन्त में फिर पूरे शरीर को एक मिनट की तरह सुझाव दें।

5. **20 मिनट के लिए** – पहले एक मिनट वाली प्रक्रिया दोहराएं। अन्त में भी। मध्य में पूरे शरीर को अठारह भागों में बांटकर उसी प्रकार सुझाव दें, जैसे –

   (1–3) दायां पैर– 1. टखने तक, 2. घुटने तक, 3. नितम्ब तक,

   (4–6) बायां पैर– 4. टखने तक, 5. घुटने तक, 6. नितम्ब तक,

   (7–9) धड़ का भाग– 7. पेट का भाग, 8. छाती का भाग, 9. पीठ का भाग,

   (10–12) दायां हाथ– 10. अंगूठे से कलाई तक, 11. कलाई से कोहनी तक, 12. कोहनी से कंधे तक।

   (13–15) बायां हाथ– 13. अंगूठे से कलाई तक, 14. कलाई से कोहनी तक, 15. कोहनी से कंधे तक।

   (16–18) सिर का भाग– 16. गर्दन, ठुड्डी, होंठ, 17. मुंह के भीतर का भाग, 18. दायां कपोल, बायां कपोल, दायां कान, बायां कान, दांयी आँख, बांई आँख, ललाट और मस्तिष्क का पूरा भाग।

   अन्त में पूरे शरीर को एक मिनट की तरह सुझाव दें।

बोध प्रश्न

1. शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक लाभ के लिए कितने समय तक का कायोत्सर्ग प्रभावशाली होता है ?
2. तनाव प्रबन्धन के लिए बड़े छोटे प्रयोग कैसे किये जा सकते हैं ?

15.7.0 सारांश

- मनुष्य के जीवन में कई बार ऐसी समस्याएं आती है जिनका हल बहुत मुश्किल होता है और उसके परिणाम स्वरूप **तनाव की स्थिति** पैदा हो जाती है। तनाव के कारण अनिद्रा, उच्च रक्तचाप, हृदयाघात, पाचनतंत्र की दुर्बलता, जोड़ों का दर्द, अस्थमा, संबंधों में कटुता आदि बीमारियाँ फैलती हैं। तनाव के कारणों में से कुछ निम्न हैं –

  1. अत्यधिक शारीरिक श्रम, 2. अत्यधिक चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या आदि।

  3. सुविधावादी जीवनशैली 4. अत्यधिक महत्त्वाकांक्षाएं

  5. समय का कुप्रन्धन 6. अनियमित जीवनशैली इत्यादि।

- तनाव के कुछ लक्षण होते हैं –

  शारीरिक लक्षण – 1. तनावग्रस्त मांसपेशियां, 2. अव्यवस्थित श्वास/श्वास की संख्या में वृद्धि, 3. मुंह सूखना, 4. हथेलियों पर पसीना आना, 5. हाथ–पैर ठण्डे होना, 6. काम में मन नहीं लगना आदि–आदि।

  मानसिक व भावनात्मक लक्षण – 1. असामान्य व्यवहार, 2. चिड़चिड़ापन, 3. हीनभावना, 4. क्रोधी स्वभाव बनना, 5. चिन्ता, 6. निराशा, 7. असुरक्षा की भावना, 8. अनिद्रा, 9. बार–बार भूल जाना आदि–आदि।

  व्यावहारिक लक्षण – 1. नशे की आदत, 2. अस्त–व्यस्त जीवनशैली, 3. सामाजिकता में बदलाव, 4. तनावग्रस्त मुद्राएं–जैसे दांतों से नाखुन काटना आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- तनाव तीन प्रकार का होता है – **1. शारीरिक तनाव –** यह अत्यधिक शारीरिक श्रम से होता है। **2. मानसिक तनाव –** यह अत्यधिक चिन्तन से होता है। **3. भावनात्मक तनाव –** यह बुरे (निषेधात्मक) भाव से उत्पन्न होता है। तनाव इस समय की अत्यधिक जटिल समस्या के रूप में आ रहा है जिससे बचने का प्राकृतिक, सहज व आन्तरिक तरीका है – कायोत्सर्ग।

- तनाव का मूल कारण है –दबाव। जब अत्यधिक दबाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो वह तनाव का रूप ले लेता है जिसके अनेक दुष्परिणाम हैं जैसे – 1. स्नायुरोग व मानसिक अवसाद, 2. गंजेपन की समस्या, 3. दांत पीसना, मुंह के छाले, 4. माइग्रेन एवं सिरदर्द, 5. बदहजमी, अधिक गैस बनना, अल्सर, पेटदर्द, कब्ज, दस्त, 6. हृदय की धड़कन अनियमित होना, 7. चर्म–रोग, एग्जिमा, सोराइसिस आदि। यदि हम इन बीमारियों के मूल से छुटकारा पाना चाहते हैं तो हमें इसके उपचार को बड़ी गहनता से अपनाना होगा।

- तनाव का उपचार है – कायोत्सर्ग। वैज्ञानिक इसे Relaxation Response कहते हैं।

- कायोत्सर्ग में स्वतः सुझाव द्वारा मांसपेशीय अति विद्युत के अपव्यय को रोक कर एवं शिथिलता को प्राप्त कर परानुकम्पी नाड़ी तंत्र को सक्रिय कर लिया जाता है। इससे तनाव के दुष्परिणामो से बच जाते हैं। यह व्यक्ति की अन्तर्दृष्टि एवं प्रज्ञा को जागृत कर उसकी एकाग्रता में वृद्धि करता है, उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि करता है तथा कालांतर में अनेक बीमारियों से मुक्ति दिलाता है।

15.8.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. तनाव के कारण होने वाली बीमारियों के नाम लिखो।
2. तनाव को कितने व कौनसे भागों में बांटा गया है ?
3. भावनात्मक तनाव की उत्पत्ति कहां से होती है ?
4. मायोफाइब्रिल क्या है ?
5. तनाव से निपटने का प्राकृतिक एवं सहज तरीका कौन सा है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. पेशी–श्रान्ति से आप क्या समझते हैं ?
2. अनुकम्पी विभाग द्वारा कौन–कौन से असामान्य परिवर्तन होते हैं ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. तनाव के कारण, लक्षण और प्रकारों की विस्तार से व्याख्या करें।
2. दबाव तंत्र की विस्तार से व्याख्या करते हुए तनाव के दुष्परिणामों की चर्चा करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 4 स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास

पाठ – 16 भावात्मक विकास और भावात्मक स्वास्थ्य

रूपरेखा

16.0.0 उद्देश्य
16.1.0 भूमिका
16.2.0 भावात्मक विकास
16.2.1 भावात्मक विकास और अनुसंधान
16.3.0 भावात्मक बुद्धि (Emotional Intelligence)
16.3.1 स्व–जागरूकता
16.3.2 मनोदशाओं का प्रबन्धन
16.3.3 अन्तःप्रेरणा
16.3.4 संवेग नियंत्रण
16.3.5 पारस्परिक सौहार्द, सम्पर्क एवं सम्प्रेषण
16.4.0 संवेग–प्रबन्धन
16.4.1 स्वतन्त्र व्यक्तित्व
16.5.0 भावात्मक रुग्णता
16.5.1 क्रोध
16.5.2 मान
16.5.3 माया
16.5.4 लोभ
11.6.0 भावात्मक स्वास्थ्य और प्रेक्षाध्यान
16.6.1 भावात्मक स्वास्थ्य और स्वस्थ आभामण्डल
16.6.2 शुभ भाव और लेश्याध्यान
16.6.3 लेश्याध्यान : रंगों का ध्यान
16.7.0 प्रयोग का अभ्यास
16.7.1 प्रयोग प्रविधि
16.8.0 सारांश
16.9.0 अभ्यास प्रश्न

16.0.0 उद्देश्य

स्वास्थ्य को तीन भागों में बांटा गया है – शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य और भावनात्मक स्वास्थ्य। जितना शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर हमारा ध्यान होता है उतना भावनात्मक स्वास्थ्य पर नहीं होता। भावनात्मक स्वास्थ्य एवं भावनात्मक विकास मानव के सर्वांगीण विकास का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस पाठ का लेखन किया गया है। इस पाठ से आप जान पाएंगे –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. भावनात्मक विकास पर मनोवैज्ञानिकों का चिन्तन
2. भावनात्मक बुद्धि से तात्पर्य
3. संवेग प्रबन्धन के के विभिन्न तौर–तरीके
4. भावात्मक रुग्णता और उसके दुष्परिणाम
5. भावात्मक स्वास्थ्य की प्राप्ति में लेश्याध्यान के प्रयोगों की महत्ता और उसकी विधि।

16.1.0 भूमिका

प्राचीन काल में सफलता के लिए शारीरिक विकास पर विशेष जोर दिया जाता था। मध्यकाल में मानसिक विकास का महत्त्व ज्यादा बढ़ गया परन्तु आधुनिक अनुसंधानों से यह स्पष्ट हुआ है कि भावनात्मक विकास सबसे महत्त्वपूर्ण है। भावनात्मक आवेश–आवेग पर अंकुश रखने वाला व्यक्ति अवश्य ही सफलता प्राप्त करता है। इसलिये शारीरिक, मानसिक प्रशिक्षण के साथ–साथ शिक्षा जगत् में भावनात्मक प्रशिक्षण को भी स्थान दिया जाना चाहिए।

अधिकांश भावनात्मक बीमारी ही मानसिक और फिर शारीरिक व्याधि के रूप में परिणत होती है। इसलिये भावनात्मक स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता अति आवश्यक है। भावनात्मक अस्वस्थता का उपचार मेडिकल साइंस के पास नहीं है। उसका समुचित उपाय अध्यात्म जगत् में विद्यमान है। प्रेक्षाध्यान में लेश्याध्यान का प्रयोग भावनात्मक परिष्कार का अनूठा प्रयोग है।

16.2.0 भावात्मक विकास

1980 के दशक के आस–पास यह माना जाता था कि जीवन में सफलता के लिए सर्वाधिक योगदान बौद्धिक विकास का होता है। मनोवैज्ञानिक बौद्धिक विकास को मापने के लिए एक विशेष शब्द का प्रयोग करते हैं – बुद्धि लब्ध्यांक (Intelligence Quotient) किन्तु आज इस धारणा में आमूल–चूल परिवर्तन हो गया है। आज मनोवैज्ञानिक यह मानने लगे हैं कि जीवन में सफलता हेतु बौद्धिक विकास की भूमिका मात्र 20 प्रतिशत ही है। 80 प्रतिशत भूमिका भावात्मक विकास की है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे एक नया नाम दिया है – भावात्मक बुद्धि (Emotional Intelligence)।

16.2.1 भावात्मक विकास और अनुसंधान

1960 की बात है एक मनोवैज्ञानिक वाल्टर माइकल (Walter Mischal) ने स्टेनफोर्ड युनिवर्सिटी परिसर में स्थित प्रीस्कूल (नर्सरी) के 4 वर्षीय बच्चों से मिले। उन्होंने बच्चों से कहा कि अभी तुम्हें एक चॉकलेट दी जायेगी। जो बच्चा 20 मिनट तक उस चॉकलेट को नहीं खायेगा। प्रतीक्षा करेगा। उसे एक और चॉकलेट मिलेगी। कुछ बच्चों ने तुरन्त पहली चॉकलेट खा ली। कुछ बच्चों ने 20 मिनट का इन्तजार किया और दूसरी चॉकलेट प्राप्त की। दोनों ही प्रकार के बच्चों के दो वर्ग बनाए गए उनका वर्षों तक अध्ययन किया गया। जब वे युवा हुए तो यह पाया गया कि ***द्वितीय वर्ग के बच्चे अपने लक्ष्य के प्रति अधिक धैर्यवान थे। सामाजिक रूप से अधिक सक्षम व दृढ़ थे। जीवन में आने वाली बाधाओं और निराशाओं का सामना अच्छे ढंग से कर पा रहे थे।*** प्रथम वर्ग के बच्चे जो एक चॉकलेट से ही संतुष्ट हो गये। जिनमें धैर्य और इन्तजार का अभाव था, वे अधिक जिद्दी थे। वे असमंजसता और अनिर्णायकता की स्थिति में पाये गये। वे तनाव से भी ग्रस्त थे। दोनों ग्रुप के बच्चों में जो अन्तर है वह वास्तव में भावात्मक बुद्धि के कारण है। इसे हम भावात्मक विकास या भावात्मक प्रतिभा भी कह सकते हैं।

बोध प्रश्न

1. जीवन में सफलता पाने के लिए भावात्मक बुद्धि की क्या भूमिका है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. प्रथम वर्ग और द्वितीय वर्ग के विद्यार्थियों में भावात्मक रूप से क्या अन्तर पाया गया ?

16.3.0 भावात्मक बुद्धि

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भावात्मक बुद्धि मुख्य रूप से निम्नलिखित तत्वों से निर्मित होती है –

16.3.1 स्व–जागरूकता (Self-awareness)

जो व्यक्ति अपने प्रति जागरूक होता है, स्वयं का निरीक्षण करता है, अपने भावों को समझता है, वह उसमें परिवर्तन करने में भी सक्षम हो जाता है। स्वयं के प्रति जागरूकता, भावात्मक परिष्कार, भावात्मक विकास एवं भावात्मक संतुलन का आधारभूत सूत्र है।

16.3.2 मनोदशाओं का प्रबंधन (Mood-management)

जीवन एक संघर्ष है। किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति या इच्छाओं की आपूर्ति में अनेक बाधाएं आती हैं। जीवन में उतार–चढ़ाव भी आते रहते हैं। उस समय हमारे भीतर कितनी समता रह पाती है? कितना संतुलन रह पाता है? यही वह परीक्षा की घड़ी भी होती है। इससे ही हमारे सुदृढ़ चरित्र का पता लगता है। ***जो व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितियों का वस्तुपरक सकारात्मक दृष्टिकोण से सतत जागरूक रहकर मूल्यांकन करता है वह जीवन में आने वाली चुनौतियों को सहज रूप से स्वीकार कर उससे निपटने में सक्षम हो जाता है।*** सत्संग, एकान्तवास, ध्यान, कायोत्सर्ग आदि इसमें बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। इनसे व्यक्ति दुश्चिन्ता, अवसाद अथवा निराशा से उबर जाता है।

16.3.3 अन्तःप्रेरणा (Self-motivation)

जब कोई व्यक्ति बुरा काम करता है तो उसकी चेतना उसे रोकने की कोशिश करती है किन्तु वह उसे देखा–अनदेखा कर देता है। यह माना जाता है कि हर व्यक्ति एक निश्चित उद्देश्य को लेकर इस पृथ्वी पर जन्म लेता है। वह अपने इस उद्देश्य का ज्ञान स्वयं के निरन्तर सम्पर्क एवं अन्दर से आने वाली स्वतः स्फूर्त प्रेरणाओं को सुन कर ही कर सकता है। ***भीतर से आने वाली प्रेरणाएं किसी भी बड़ी उपलब्धि का सबसे बड़ा आधार होती है। प्रत्येक बड़ी उपलब्धि के लिए स्पष्ट लक्ष्य एवं निरन्तर आशावादी दृष्टि की आवश्यकता होती है।*** वह व्यक्ति को अन्तःप्रेरणा से उपलब्ध होती रहती है। ऐसा व्यक्ति यह अनुभव करता है –''मुझे यह करना है। और यह मैं कर सकता हूं।'' वह अपनी हर असफलता से सीखता है, रास्ता खोजता है एवं आगे बढ़ जाता है।

16.3.4 संवेग–नियंत्रण (Impulse-control)

बीज से फल प्राप्ति तक व्यक्ति को धैर्य रखना होता है। सतत पुरुषार्थ द्वारा बीज से निकले अंकुरों का सिंचन, पल्लवन, पोषण तथा सुरक्षा करनी होती है। आवेग और आवेश, विकार और वासनाएं, अहंभाव व कुटिल व्यवहार, लोभ और लालच वर्षों की तपस्या को क्षण भर में राख कर के रख देते हैं। अधीरता ला देते हैं। अतः ***स्वयं के संवेगों का जागरूकता के साथ परिष्कार, रेचन, मार्गान्तरीकरण व उदात्तीकरण के द्वारा उन पर नियन्त्रण कौशल को विकसित किया जा सकता है।*** यह जीवन में सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

16.3.5 पारस्परिक सौहार्द, सम्पर्क एवं सम्प्रेषण (Pepole Skills)

पारस्परिक सौहार्द एवं सम्पर्क बौद्धिक दक्षता में चार चांद लगा देते हैं। बहुत सारे बौद्धिक क्षमता से युक्त व्यक्ति जब तकनीकी कठिनाई का अनुभव करते हैं, वे दूसरों से सहयोग मांगते हैं तब उन्हें सहयोग कम प्राप्त होता है। परन्तु उनमें से कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन्हें तुरन्त सहायता मिल जाती है। क्योंकि ऐसे लोग सम्पर्क करने व सम्बन्धों को बनाये

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रखने में निपुण होते हैं। फिर उनकी बौद्धिक क्षमता (I.Q.) कितनी भी क्यों न हो। भावात्मक रूप से विकसित व्यक्ति की एक अलग ही पहचान होती है।

बोध प्रश्न

1. भावात्मक बुद्धि में किन तत्त्वों का समावेश किया जाता है ?
2. स्व – जागरुकता से आप क्या समझते हैं ?

16.4.0 संवेग–प्रबन्धन

संवेग एक जटिल भावात्मक प्रक्रिया है। भाव संवेग की ही पूर्व अवस्था होती है। भावों में उफान के पश्चात् संवेग की अवस्था आती है। संवेग बाह्य परिस्थिति या अन्तः मनस्थिति के प्रति तीव्र प्रतिक्रियाएं हैं। इसके कारण व्यक्ति में बाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार के परिवर्तन होते हैं। यह कहा जाता है कि ***क्रोध हमारी इच्छाओं में रूकावट के कारण होने वाली प्रतिक्रिया है। भय हमारी परिणामों के प्रति आशंकाओं की प्रतिक्रिया है। सहानुभूति एवं प्रेम के अभाव की प्रतिक्रिया दुःख है।*** खुशी, आनन्द, प्रसन्नता सब सकारात्मक प्रतिक्रियाएं हैं। संवेगों की तीव्र प्रतिक्रियाओं के कारण व्यक्ति के भाव जगत् में असंतुलन पैदा हो जाता है। इससे सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित होता है। व्यक्ति अपनी संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति या प्रबन्धन अनेक रूपों में कर अपने आपको शान्त, हल्का व तनावमुक्त करने का प्रयास करता है। जैसे –

1. संवेगों की शारीरिक या वाचिक अभिव्यक्ति करना – रोना, चिल्लाना, डांटना, अपने शरीर को हिलाना आदि।
2. संवेगों को नियन्त्रित कर लेना, बाह्य अभिव्यक्ति को रोक लेना, उससे तादात्म्य स्थापित नहीं करना।
3. सही जगह पर सही तरीके से हानि रहित रूप में रेचन करना। जैसे–खेलकूद व मनोरंजन द्वारा।
4. सृजनात्मक कार्य में अथवा रचनात्मक क्रियाओं में रूपान्तरित कर देना। जैसे– कला, साहित्य सृजन आदि में।

16.4.1 स्वतन्त्र व्यक्तित्व

'सा विद्या या विमुक्तये' विद्या वह ही है जो व्यक्ति को मुक्त करे, स्वतन्त्र बनाये। ***भावात्मक रूप से संतुलित या विकसित व्यक्ति का व्यक्तित्व ही स्वतन्त्र होता है। ऐसे व्यक्ति प्रियता–अप्रियता, पसन्द–नापसन्द से अप्रभावित होकर, मुक्त होकर स्वतन्त्र निर्णय करते हैं।*** वे अपने भावों को ठीक से पहचान लेते हैं और दूसरों के भावों को भी जान लेते हैं। सहयोग, सद्भाव एवं पारस्परिक संबंधों को महत्त्व देते हैं। उनके निर्णयों में स्वयं के सिद्धान्त एवं मूल्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। उनमे पारस्परिक संबंधों को निभाने एवं नये संबंधों को बनाने की अद्भुत क्षमता होती है।

स्वतन्त्र व्यक्तित्व की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं होती हैं –

1. वे घटनाओं एवं व्यक्तियों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं के प्रति जागरूक रहते हैं।
2. वे विभिन्न संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं में सूक्ष्म अन्तर कर सकते हैं।
3. वे संवेगों की शारीरिक प्रतिक्रियाओं को भी पहचान सकते हैं।
4. वे अपने अतीत के अप्रिय संवेगों के अनुभवों से सीखते रहते हैं एवं वर्तमान जीवन में उनके प्रभावों को सीमित कर सकते हैं। उनसे अप्रभावित रह सकते हैं।
5. वे अपनी अच्छी एवं बुरी भावनाओं को स्वीकार कर सकते हैं।
6. वे अपनी भावनाओं का उत्तरदायित्व स्वयं पर लेते हैं, दूसरों पर दोषारोपण नहीं करते हैं।
7. वे अपनी भावनाओं को विभिन्न सकारात्मक तरीकों से अभिव्यक्त करने में सक्षम होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बोध प्रश्न :

1. संवेग क्या है?
2. स्वतंत्र व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएं क्या हैं ?

16.5.0 भावात्मक रुग्णता

क्रोध, मान, माया व लोभ इन चारों को आध्यात्मिक या आन्तरिक दोष कहा गया है। ये चारों ही भावात्मक रुग्णता के मूल कारण भी है। भगवान महावीर ने कहा है –

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्व विणासणो।। दसवै. 8/37

क्रोध प्रीति को नष्ट करता है। मान विनम्रता/शिष्टाचार को नष्ट करता है। माया/कुटिलता मित्रता को नष्ट करती है तथा लोभ/लालच प्रीति, शिष्टाचार और मैत्री – सभी को नष्ट कर देता है।

15.5.1 क्रोध

सामान्य जीवन व्यवहार में भी देखें तो अधिक क्रोध, आवेश या आवेग से दो बड़े नुकसान होते है। पहला संबंधों में दरारे पड़ जाती है। जो व्यक्ति आवेश–आवेग में अपने आप पर नियन्त्रण नहीं रख पाते हैं, वे सामने वाले व्यक्ति को जो नहीं कहा जाना चाहिए, वह भी कह देते हैं। यह भान उनको तभी होता है जब वे पुनः शान्त होते हैं। उसके बाद उन्हें अनेक बार पश्चाताप भी होता है कि मैंने ऐसा क्यों कहा ? नहीं कहता तो अच्छा रहता आदि। किन्तु जब कमान से तीर निकल जाता है तो वह लोटकर नहीं आता। वैसे ही जब जबान से अवांच्छित शब्द निकल जाते हैं तो वे भी लौटकर नहीं आते। उनसे जो नुकसान होना होता है वह हो ही जाता है। इससे संबंधों में खटास पैदा हो जाती है। मधुरता समाप्त हो जाती है।

क्रोध से जो दूसरा नुकसान होता है, वह है सही निर्णय नहीं कर पाना। जब भी आवेग या आवेश में निर्णय लिया जाता है। उसमें कोई न कोई त्रुटि रह जाती है। क्योंकि आवेग और आवेश में सम्पूर्ण स्थितियों का समग्रता से आकलन नहीं हो पाता है। अतः भावात्मक स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने क्रोध पर नियन्त्रण करना सीखे।

16.5.2 मान

अहंकार से व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर आंच आती है। जिन व्यक्तियों में अहंकार अधिक है उन व्यक्तियों को अनावश्यक उलझनों में उलझना पड़ता हैं। इससे लोग इन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। उससे दूर रहना ही पसन्द करते हैं। महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश में लिखा है–

पूज्यपूजाव्यतिक्रमः बध्नाति श्रेयः।

सम्माननीय व्यक्तियों के सम्मान की अवहेलना करने पर श्रेयस् की उपलब्धि में बाधाएं आती हैं। जिसे जीवन में कुछ विशिष्ट उपलब्धि प्राप्त करनी है उसे अंहकार को दूर करना होगा। व्यक्ति कितना भी बड़ा क्यों न हो, वह मनुष्य ही है, देवता नहीं। अतः प्रत्येक मनुष्य को मनुष्य के समान ही आदर देना चाहिए। फिर वह चाहे छोटा हो या बड़ा। यदि व्यक्ति अहंकार से ग्रस्त है तो वह दूसरों को भी आदर नहीं दे पाता है। तुच्छ समझता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह समाज में अकेला पड़ जाता है।

16.5.3 माया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जीवन का सम्पूर्ण व्यवहार सत्य पर चलता है। असत्य का सहारा व्यक्ति क्रोध, लोभ, भय या हास्यवश लेता रहता है। ***मायावी व्यक्तियों की विश्वसनीयता कम हो जाती है।*** माया, कुटिलता, ईर्ष्या, कपट विश्वास को कम करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को सरल सी बात कहने या स्वीकार करने में भी बहुत समय और शक्ति का अपव्यय करना पड़ता है । सत्य–निष्ठा व सत्यवादिता पर आंच आती है। इससे उन पर भरोसा कम होता है। लोग सोचते हैं–यह कह तो रहा है किन्तु पता नहीं, यह करेगा या नहीं। इससे इनका कोई सच्चा मित्र भी नहीं बन पाता है। उनकी मित्रता बनी रहनी भी कठिन है।

16.5.4 लोभ या लालच

जीवन में सीमित या संयमित इच्छाएं विकास का हेतु बनती है। ***एक भी असीमित इच्छा, एक साथ अनेक इच्छाएं और अनेक दिशागामी इच्छाएं विनाश का हेतु भी बन सकती हैं।*** जो व्यक्ति जीवन में सन्तुष्ट और सफल होना चाहते हैं उनके लिए अपनी इच्छाओं को समझकर उनका सीमाकरण करना, आवश्यक इच्छाओं की भी प्राथमिकता निर्धारित करना, अन्य को स्थगित (Postpond) करना आदि रणनीति अपनाना, जीवन में सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

एक साथ अनेक इच्छाएं एक साथ दिमाग पर दबाव डालती हैं तो व्यक्ति की शक्तियां बिखर जाती है। अतः अनावश्यक इच्छाओं का संयम शक्ति की सुरक्षा के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपाय है। जीवन में लक्ष्य बनाना एवं प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति की चाह होती है। यह कार्य सफलता से वही कर सकता है जो अपनी इच्छाओं के बलाबल को समझ सकता है तथा संयम करना जानता है। हम सब जानते है कि नदी के जल का वेग इस बात पर भी निर्भर करता है कि उसके दोनों किनारों की दूरी कितनी है अर्थात् नदी का पाट जितना अधिक चौड़ा होगा उतना ही उसका वेग कम होगा। ***जीवन में प्रगति की संभावना भी उतनी ही तीव्र होगी जितनी की व्यक्ति की इच्छाएं सीमित व एक दिशागामी होगी।*** ऐसा व्यक्ति अपनी शक्ति को एक दिशा में नियोजित भी कर सकेगा, जो सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं

कोई भी व्यक्ति एक साथ एक ही समय में 20–30 काम नहीं कर सकता। जितने भी बड़े व्यक्ति है, यदि उनके पास सैंकड़ो काम है, तब भी वे उनके लिए व्यवस्थित रूप से अलग–अलग समय निर्धारित करते हैं। उस समय दूसरी सभी इच्छाओं को एक–तरफ करके सारी शक्ति उसी में लगा देते है। जैसे आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी प्रत्येक कार्य के लिए एक निश्चित समय निर्धारित करते हैं। उस समय कार्य हो गया तो ठीक है, अन्यथा उसका दिमाग पर बोझ नहीं रखते। कार्य सम्पन्न होने पर वे अपने आपसे कहते हैं– निःशेषम् ! आज के दिन इस कार्य के लिए कुछ भी शेष नहीं बचा है। ऐसा कहकर अपने आपको हलका रखते हैं। अनेक कार्यों से निपटने का यह भी एक सुन्दर उपाय है।

बोध प्रश्न

1. क्रोध से क्या–क्या हानियाँ हैं ?
2. लोभ पर एक परिच्छेद लिखिये।

16.6.0 भावात्मक स्वास्थ्य और प्रेक्षाध्यान

भौतिकतावादी जीवनशैली और विलासमय जीवन पद्धति से भावात्मक अस्थिरता और मनोविकारों की निरन्तर वृद्धि हो रही है। तनाव, चिन्ता, भय, अवसाद, निराशा, कुण्ठा, मिर्गी, आक्रामकता, क्रूरता, ईर्ष्या, चिड़चिड़ापन आदि समस्याएं बेतहाशा बढ़ रही है। इससे समाज भी रुग्ण हो रहा है। समाज में भी हिंसा, आतंक, अपराध, बलात्कार, चोरी, भ्रष्टाचार आदि बढ़ रहे हैं। वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री सभी इन समस्याओं से चिन्तित हैं। इनसे निपटने के लिए नित्य नये प्रयोग हो रहे हैं। औषधियों का निर्माण हो रहा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रेक्षाध्यान में भावात्मक स्थिरता या स्वास्थ्य के लिए अनेक प्रयोग सुझाए गए हैं। इनमें मुख्य रूप से लेश्याध्यान के सतत अभ्यास के द्वारा मनोकायिक विकारों एवं भावात्मक अस्थिरता पर नियन्त्रण के प्रमाण अनुसंधानों से सामने आये हैं। प्रेक्षाध्यान के अभ्यास करने वाले साधकों के व्यक्तिगत अनुभव भी इसकी पुष्टि करते हैं। उनके भावात्मक स्वास्थ्य में वृद्धि हुई है। विद्यार्थियों, प्रौढ़ लोगों एवं कैदियों पर किये गये विशेष अनुसंधान से यह बात सामने आयी कि इससे उनकी भावात्मक स्थिरता बढ़ी। ***व्यक्ति में भावात्मक स्थिरता जितनी अधिक होगी उसका व्यक्तित्व व चरित्र उतना ही अधिक सुदृढ़ होगा।***

16.6.1 भावात्मक स्वास्थ्य और स्वस्थ आभामण्डल

प्रत्येक व्यक्ति के चारों ओर रश्मियों का एक वलय होता है। उसे आभामण्डल कहते हैं। अच्छे रंगों के ध्यान से हमारा आभामण्डल बदलता है। आभामण्डल के बदलने से लेश्या बदलती है। लेश्या परिवर्तन से भावधारा बदलती है। मानसिक दुर्बलता भी समाप्त होती है। व्यक्ति मानसिक और भावात्मक रूप से स्वस्थ बनता है। इसका पारिवारिक व सामाजिक स्वास्थ्य पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

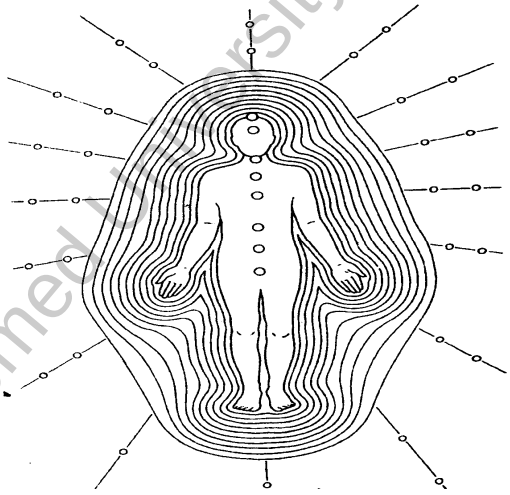

चित्र 16.1 स्वस्थ आभामण्डल

हमारे भीतर अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के संस्कार और भाव होते हैं। अच्छे भाव जैसे– करुणा, मैत्री, प्रमोद, सरलता, विनम्रता आदि। इसके साथ बुरे भाव– क्रूरता, शत्रुता, द्वेष, माया, अहंकार, क्रोध आदि निषेधात्मक भाव भी होते हैं। जब व्यक्ति पर निषेधात्मक भाव हावी होते हैं तो व्यक्ति भावात्मक रूप से अस्वस्थ हो जाता है। वह स्वयं दुःखी बनता है। उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है और मानसिक रूप से भी अस्वस्थ होने की संभावना बढ़ जाती है। अच्छे भाव पुष्ट होते हैं तो व्यक्ति भावात्मक रूप से भी स्वस्थ बनता है।

अच्छे भावों को पुष्ट कैसे करें ? बुरे भावों को क्षीण कैसे करें? इसके लिए हमें भावों के उद्‌गम स्थल एवं स्वरूप को समझना होगा। भावों के बीज हमारे स्थूल शरीर में नहीं हैं। वे हमारे भीतर गहरे में निहित हैं। सूक्ष्मतम शरीर (कार्मण शरीर) में हैं। चैतन्य की तरंगों के साथ भावों के बीज, कर्म या संस्कार मिलकर अध्यवसाय के रूप में आगे बढ़ते हैं तथा सूक्ष्म शरीर (तैजस् शरीर) के सम्पर्क में आते हैं। इन्हें यहां लेश्या कहते हैं। विज्ञान की भाषा में आभामण्डल कहते हैं। ये तरंगें रंगीन होती हैं। यहां वे भावधारा का रूप ग्रहण करते हैं। ***अच्छे भाव अच्छे और प्रशस्त रंगों मे प्रकट होते हैं, इन्हें शुभ लेश्या कहते हैं। इसकी अभिव्यक्ति स्वस्थ आभामण्डल के रूप में होती है।***

बुरे भाव बुरे रंगों और अप्रशस्त रंगों में प्रकट होते हैं। इसकी अभिव्यक्ति रुग्ण आभामण्डल के रूप में होती है।

लेश्या/भावधारा आगे चलकर स्थूल शरीर में उतरती है। वहाँ ग्रन्थितन्त्र में स्रावों के माध्यम से भाव/संवेग के रूप में उत्पन्न होते हैं। यहां ये भाव नाड़ी तन्त्र एवं मांसपेशी के माध्यम से मानसिक व शारीरिक प्रवृत्ति में परिणत हो जाते हैं। अशुभ भावों के हावी होने से भावात्मक व मानसिक अस्वास्थ्य बढ़ता है। शुभ भावों को पुष्ट करने से मानसिक व भावात्मक स्वास्थ्य प्राप्त होता है।

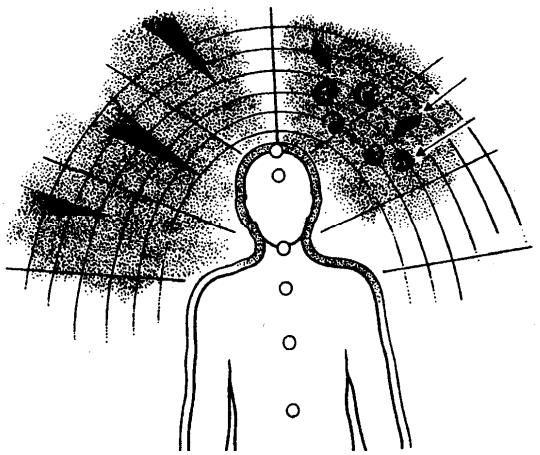

चित्र 16.2 रुग्ण आभामण्डल

16.6.2 शुभ भाव और लेश्याध्यान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अच्छे भावों को पुष्ट करने के लिए लेश्या के सिद्धान्त को समझना होगा। लेश्या का सिद्धान्त है कि शुभ लेश्या के ध्यान से अशुभ लेश्या को बदला जा सकता है एवं शुभ लेश्या को पुष्ट किया जा सकता है। लेश्याध्यान रंगों का ध्यान है। ***चमकते हुए शुभ रंगों के ध्यान से अशुभ लेश्या, शुभ लेश्या में परिणत होने लगती है।***

भावों को निर्मल एवं शुभ भावों को पुष्ट करने का सबसे सरल उपाय है – रंगों का ध्यान करना। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपाय है। प्रशस्त रंगों का ध्यान भावों को निर्मल बनाने में उपयोगी होता है। लाल, पीला और सफेद – ये रंग भाव शुद्धि के कारण हैं।

16.6.3 लेश्याध्यान : रंगों का ध्यान

रंग विद्युत चुम्बकीय तरंगें हैं (चित्र 16.3)। इनका हमारे शरीर, मन व संवेगों के साथ गहरा संबंध है। शारीरिक स्वास्थ्य और बीमारी, मन का संतुलन और असंतुलन, संवेगों में कमी और वृद्धि ये सब उन प्रयत्नों पर निर्भर करते हैं कि हम किस प्रकार के रंगों का समायोजन करते हैं और किस प्रकार हम रंगों से अलगाव या संश्लेषण करते हैं।

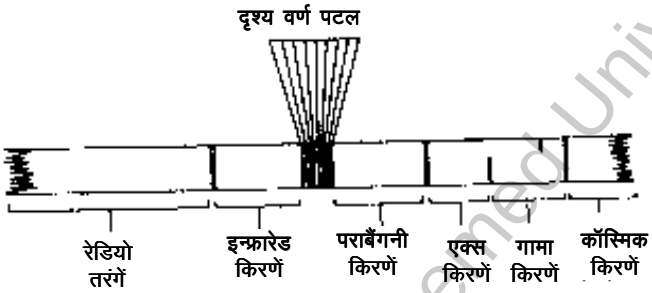

चित्र 16.3 रंग और विद्युत चुम्बकीय पटल

उदाहरणतः नीला रंग कम होता है तो क्रोध अधिक आता है। नीले रंग के ध्यान से इसकी पूर्ति हो जाने से गुस्सा कम हो जाता है। श्वेत रंग की कमी होती है तो अशान्ति बढ़ती है, लाल रंग की कमी होने पर आलस्य और जड़ता पनपती है। पीले रंग की कमी होने पर ज्ञान तन्तु निष्क्रिय बन जाते हैं। ज्योति केन्द्र पर श्वेत रंग, दर्शन केन्द्र पर लाल रंग और ज्ञान केन्द्र पर पीले रंग का नियमित दस–दस मिनट ध्यान करने से क्रमशः आवेश शान्त, अन्तर्दृष्टि और मनोबल का विकास तथा ज्ञान तन्तु सक्रिय होते हैं। जिसकी परिणति भावात्मक एवं मानसिक स्वास्थ्य में होती है। **व्यक्ति जब अरुण रंग का ध्यान करता है और तेजो लेश्या के स्पन्दन जागते हैं तब उसकी मन की दुर्बलता समाप्त हो जाती है। मन इतना शक्तिशाली हो जाता है कि कोई घटना घटे मन उससे टूटने से बच जाता है।** घटना को रोका नहीं जा सकता, मन को टूटने से बचाया जा सकता है। पीले रंग के ध्यान से मन की प्रसन्नता, बौद्धिक विकास, प्रज्ञा का विकास तथा मस्तिष्क और नाड़ी तन्त्र सुदृढ़ बनता है। श्वेत रंग के ध्यान से उत्तेजना, आवेग, आवेश, चिन्ता, तनाव, वासना, क्रोध आदि शान्त होते हैं। पूर्ण शान्ति की अनुभूति होती है।

तालिका 16.1 चैतन्य केन्द्रों पर रंगों के (लेश्या) ध्यान की निष्पत्ति

केन्द्र	रंग	भावना/अनुभव
आनन्द	हरा	भावधारा की निर्मलता
विशुद्धि	नीला	वासनाओं का अनुशासन
दर्शन	अरुण	अन्तर्दृष्टि का जागरण – आनन्द का जागरण
ज्ञान (चाक्षुष)	पीला	ज्ञानतंतु की सक्रियता (जागृति)
ज्योति	श्वेत	परम शान्ति – क्रोध, आवेश, उत्तेजनाओं की शान्ति

बोध प्रश्न

1. भावनात्मक स्वास्थ्य का स्वस्थ आभामण्डल से क्या संबंध है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. आन्तरिक दोष क्या हैं ? और ये कैसे दूर हो सकते हैं ?

16.7.0 प्रायोगिक अभ्यास

प्रायोगिक अभ्यास प्रारम्भ करने से पूर्व आत्म–निरीक्षण करें कि मेरे भीतर कौनसी भावात्मक रुग्णता अत्यधिक प्रबल है ? यह कार्य अपने प्रति निरन्तर जागरुकता (Self-awareness) द्वारा करना पड़ेगा। यह निश्चित मान लें कि एक उम्र के बाद सामान्यतः आपको कोई सही सलाह देने नहीं आयेगा। आपका हित देखते हुए कोई भी आपकी कमियां बताने नहीं आयेगा। यदि कोई सलाह दे भी देगा तो भी उसे सही परिप्रेक्ष्य में ग्रहण करना आसान नहीं होता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई परिष्कार या विकास हो सकता है तो वह स्वयं के प्रति स्वयं की जागरुकता और आत्म–निरीक्षण से ही संभव हो सकता है। अतः हम स्वयं के विचारों, क्रियाओं, भावनाओं के प्रति निरन्तर जागरुक रहें जिससे आवश्यक संशोधन, परिवर्तन, संवर्द्धन होता रहे। अन्यथा हमें यह पता भी नहीं चल पायेगा कि आखिर मेरी गलती कहां रही ?

यदि आप समझते हैं कि मेरे भीतर कोई भी भावात्मक रुग्णता प्रबल नहीं है तो फिर सोचें कि मेरे कार्य क्षेत्र में प्रगति के लिए किस भावात्मक तत्त्व की विशेष आवश्यकता है। क्या आपको शान्ति, मानसिक संतुलन, धैर्य, मधुरता, सरलता या इच्छाओं के केन्द्रीकरण में से किसी की भी अत्यधिक अपेक्षा है ? उसका चुनाव करें। उसके अनुरूप लेश्याध्यान के प्रायोगिक अभ्यास का चुनाव करें। उसका निरन्तर प्रतिदिन 5–10 मिनट का अभ्यास छह महिने तक करें।

16.7.1 प्रयोग प्रविधि

किसी को क्रोध अधिक आता है। बैचेनी अधिक रहती है। सब कुछ होने पर भी मन अशान्त रहता है तो वह ज्योति केन्द्र पर श्वेत रंग का ध्यान करे।

ध्यानासन। महाप्राण ध्वनि। कायोत्सर्ग। अब अपने चित्त को ललाट के मध्य भाग ज्योति केन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां पर चमकते हुए श्वेत रंग की कल्पना करें। जैसे पूर्णिमा का चाँद उग रहा है। उसकी श्वेत रश्मियां ज्योति केन्द्र पर गिर रही है। अब मन ही मन भावना करें – क्रोध शान्त हो रहा है..... (नौ बार), अब पूरे ललाट पर श्वेत रंग का अनुभव करें। पूर्ण शान्ति का अनुभव करें। महाप्राण ध्वनि (तीन बार) के साथ प्रयोग सम्पन्न करें।

बोध प्रश्न

1. बड़ी आयु होने के बाद कौन अपना मार्गदर्शन करेगा ?
2. क्रोध शान्ति के लिए प्रेक्षाध्यान की प्रविधि क्या है ? क्या इसका अपने आप पर प्रयोग कर हम लाभ उठा सकते हैं?

11.8.0 सारांश

- आज के मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सफलता की प्राप्ति में बौद्धिक विकास (बुद्धिलब्ध्यांक) का महत्त्व 20 प्रतिशत और भावात्मक विकास (भावात्मक अंक) का महत्व 80 प्रतिशत है। मनुष्य का भावात्मक विकास मुख्य रूप से कुछ तत्त्वों पर निर्भर करता है – 1. स्व–जागरुकता, 2. मनोदशाओं का प्रबन्धन, 3. अन्तः प्रेरणा, 4. संवेग नियंत्रण, 5. पारस्परिक सौहार्द, सम्पर्क एवं सम्प्रेषण। यदि वह इन सबमें कुशल है तो इससे तात्पर्य उसकी भावात्मक बुद्धि तीव्र है। पारस्परिक सौहार्द एवं सम्पर्क उसकी बौद्धिक दक्षता में चार चाँद लगा देते हैं।

- संवेग एक जटिल भावात्मक प्रक्रिया है जो प्रायः मनुष्य के व्यवहार में प्रतिक्रिया स्वरूप हो जाती है। भाव संवेग की पूर्व अवस्था है। भाव का तीव्र रूप ही संवेग है। संवेग पर नियंत्रण किया जा सकता है। अपने संवेगों की सही अभिव्यक्ति के लिए व्यक्ति में भावात्मक बुद्धि का होना आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- **सा विद्या या विमुक्तये** अर्थात् विद्या वह ही है जो व्यक्ति को मुक्त बनाये, स्वतंत्र बनाये। भावात्मक रूप से संतुलित या विकसित व्यक्ति का व्यक्तित्व ही स्वतंत्र होता है। ऐसे व्यक्ति प्रियता–अप्रियता, पसंद–नापसंद से अप्रभावित होकर स्वतंत्र निर्णय करते हैं। उनके अन्दर अपने भावों को ठीक से पहचानने और दूसरे के भावों को जानने की क्षमता होती है। वे अपनी भावनाओं का उत्तरदायित्व स्वयं पर लेते हैं, दूसरों पर दोषारोपण नहीं करते हैं एवं वे अपनी भावनाओं को विभिन्न सकारात्मक विधियों से अभिव्यक्त करने में सक्षम होते हैं।

- मनुष्य के भाव हमेशा एक सदृश नहीं रहते हैं। उनमें समयानुसार उतार–चढ़ाव भी आते रहते हैं। क्रोध, मान, माया व लोभ इन चारों को आध्यात्मिक रुग्णता या आन्तरिक दोष कहा गया है। क्रोध मनुष्य में प्रीति को नष्ट करता है। मान विनम्रता को नष्ट करता है। माया मित्रता को नष्ट करती है और लोभ प्रीति, शिष्टाचार और मैत्री सभी को नष्ट कर देता है। इस प्रकार इनसे व्यक्ति के जीवन में रुग्णता आ जाती है। इस भावात्मक रुग्णता का एक अचूक उपाय है – प्रेक्षाध्यान। प्रेक्षाध्यान का एक प्रयोग है – लेश्याध्यान, जिसमें रंगों के ध्यान के बारे में बताया गया है।

- रंगों का ध्यान अलग–अलग केन्द्रों पर समस्या के अनुरूप किया जाता है। जैसे क्रोध की शान्ति के लिए ज्योति केन्द्र पर श्वेत रंग का ध्यान, ज्ञान तंतु की सक्रियता के लिए ज्ञान केन्द्र पर पीले रंग का ध्यान, भावधारा की निर्मलता के लिए आनन्द केन्द्र पर हरे रंग का ध्यान एवं मन की दुर्बलता को समाप्त करने के लिए दर्शन केन्द्र पर अरुण रंग का ध्यान करना चाहिए। ये सभी रंगों के ध्यान व्यक्ति की भावात्मक रुग्णता को दूर करने में पूर्णतया समर्थ हैं। इससे व्यक्ति का भावात्मक विकास होकर सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास में मदद मिलती है।

16.9.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. 'सा विद्या या विमुक्तये' पंक्ति का शाब्दिक अर्थ क्या है ?
2. माया किस चीज को नष्ट करती है ?
3. 'निःशेषम्' शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है ?
4. आभामण्डल से आपका क्या आशय है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अन्तःप्रेरणा से आप क्या समझते हैं ? संक्षिप्त में लिखें।
2. संवेग प्रबन्धन से आप क्या समझते हैं ? इसके उपाय क्या हैं ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. मनुष्य की भावात्मक रुग्णता के मूल कारणों की व्याख्या करते हुए इन पर नियंत्रण पाने के लिए कौनसे रंगों का ध्यान किया जाना चाहिए ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 5 सक्षम व्यक्तित्व का विकास

पाठ – 17 स्मृति–विकास

रूपरेखा

17.0.0 उद्देश्य
17.1.0 भूमिका
17.2.0 स्मृति और विस्मृति
17.2.1 स्मृति का महत्त्व
17.2.2 विस्मृति के कारण
17.3.0 स्मृति–प्रशिक्षण
17.3.1 रुचि
17.3.2 एकाग्रता
17.3.3 सम्बन्ध संयोजना
17.3.4 पुनरावर्तन
17.4.0 सुदृढ़ स्मृति और अध्ययन शैली
17.4.1 सर्वावलोकन
17.4.2 पूर्वावलोकन
17.4.3 अन्तरावलोकन
17.4.4 पुनरावलोकन
17.5.0 मस्तिष्क की क्षमता और प्रेक्षाध्यान
17.5.1 स्मृति विकासक प्रयोग : महाप्राण ध्वनि
17.5.2 ज्ञान केन्द्र पर पीले रंग का ध्यान
17.6.0 सारांश
17.7.0 अभ्यास प्रश्न

17.0.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों !

सक्षम व्यक्तित्व विकास का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है – स्मृति विकास। अच्छी स्मृति सफलता की सहायक है। वहीं विस्मृति की समस्या प्रत्येक कार्य में व्यवधान है। व्यक्ति की क्षमताओं को विकसित करके ही व्यक्तित्व को सक्षम बनाया जा सकता है। अतः इस पाठ के द्वारा हम जानेंगे –

- स्मृति का महत्त्व
- स्मृति प्रशिक्षण के विभिन्न पहलू
- सुदृढ़ स्मृति के लिए सहयोगी अध्ययनशैली
- मस्तिष्क की क्षमताओं के विकास हेतु प्रेक्षाध्यान के विभिन्न प्रयोग

17.1.0 भूमिका

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यदि व्यक्ति के पास सबकुछ है परन्तु अच्छी स्मृति न हो तो क्या आप सक्षम व्यक्तित्व की कल्पना कर सकते हैं। नहीं। जीवन में सफलता के लिए स्मृति का बहुत महत्त्व है। विद्यार्थियों के लिए तो स्मृति अति महत्त्वपूर्ण है। जिनकी स्मृति जितनी अच्छी होती है वे उतने ही अच्छे अंक प्राप्त करने में सफल होते हैं।

महान् व्यक्तियों की सफलता के पीछे जिसका बहुत बड़ा योगदान है उनमें एक है – अच्छी स्मृति। अच्छी स्मृति वाले लोग जीवन के हर क्षेत्र में सफलता का वरण करते है। वहीं बार–बार भूल जाने वाले अपने व्यक्तिगत कार्य भी व्यवस्थित नहीं कर पाते। गणाधिपति गुरुदेव तुलसी हजारों श्रावक–श्राविकाओं को नाम से जानते थे। अमेरिका के एक राष्ट्रपति 50 हजार अमेरिकन को नाम से जानते थे।

वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि किसी भी व्यक्ति की स्मृति खराब नहीं होती। आवश्यकता होती है प्रशिक्षण की। प्रशिक्षित स्मृति अच्छी और अप्रशिक्षित स्मृति को हम खराब स्मृति कह सकते हैं। प्रेक्षाध्यान एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा स्मृति को प्रशिक्षित कर व्यक्तित्व में चार चाँद लगाए जा सकते हैं।

17.2 स्मृति और विस्मृति

- क्या आप जल्दी भूल जाते हैं ?
- क्या आपको पढ़ी हुई बातें परीक्षा में याद नहीं आती है ?
- क्या आपका पढ़ने में मन कम लगता है ?
- क्या आप पढ़ते समय एकाग्र और शान्त नहीं रह पाते हैं ?
- क्या पढ़ते समय आपको चंचलता परेशान करती है ?
- क्या आपकी रुचि पढ़ने में कम है ?

यदि हां तो आप विस्मृति की समस्या से ग्रस्त हैं। विस्मृति को कम करना और स्मृति को सुदृढ़ करने के लिए स्मृति प्रशिक्षण बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है।

17.2.1 स्मृति का महत्त्व

सक्षम व्यक्तित्व–विकास का एक महत्त्वपूर्ण घटक है – सुदृढ़ स्मृति। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता के लिए इसकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यार्थियों में अच्छी स्मृति होने का परिणाम है – अच्छे अंकों की प्राप्ति। युवाओं में अच्छी स्मृति का तात्पर्य है – अपने कार्यक्षेत्र में सफलता। प्रौढ़ों में अच्छी स्मृति का तात्पर्य है – संबंधों की सुदृढ़ता। वृद्धों में अच्छी स्मृति होने का परिणाम है – जीवन में उत्साह व उल्लास।

सक्षम व्यक्तित्व–विकास का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू है – अभिव्यक्ति कौशल का विकास। अच्छी अभिव्यक्ति के लिए सतत ज्ञानार्जन की आवश्यकता होती है। उसके लिए जितनी अच्छी स्मृति होती है अभिव्यक्ति में भी उतना ही निखार आता चला जाता है। ज्ञान को धारण करने व उसे अभिव्यक्त करने में स्मृति से सहायता मिल जाती है। जितनी विषय सामग्री आपको याद रहेगी, आपकी अभिव्यक्ति उतनी ही प्रभावी हो सकेगी।

जीवन में सफलता के लिए योजनाबद्ध व्यवस्थित कार्य करने का बहुत महत्त्व है। योजना बनाने, निर्णय करने और उसे क्रियान्विति के धरातल पर उतारने में अच्छी स्मृति का भी बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है। योजना बना लें, कागज पर भी उतार लें किन्तु सही समय पर कागज ही न मिले कि वह कहां रखा है तब खोजते रहें। योजना की क्रियान्विति सही समय पर कैसे होगी ?

कांग्रेस कार्यकारिणी के वरिष्ठ सदस्य भारी परेशान थे। वह रिपोर्ट नहीं मिल रही थी, जिसके आधार पर महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित करने के लिए कार्यकारिणी की विशेष बैठक बुलाई गई थी। स्वतंत्रता आन्दोलन का समय था, हर कदम ठीक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

समय पर उठाना आवश्यक था, पर बिना आधार के चिन्तन आगे कैसे बढ़े ? अचानक ध्यान आया कि महात्मागाँधी व डॉ. राजेन्द्र प्रसाद उस रिपोर्ट को पढ़ चुके हैं। उस समय राजेन्द्र बाबु, पंडित नेहरु, आचार्य कृपलानी आदि वरिष्ठ नेताओं के साथ चर्चा कर रहे थे। पूछने पर राजेन्द्र बाबू ने कहा – 'हाँ, मैं पढ़ चुका हूँ, आवश्यकता हो तो नोट करा सकता हूँ। खोज के साथ–साथ लम्बी रिपोर्ट का पुनर्लेखन प्रारम्भ हुआ। वे सौ से अधिक पृष्ठ लिखा चुके थे, तब वह रिपोर्ट भी मिल गई। मिलाने पर तनिक भी अन्तर नहीं मिला, सारे आश्चर्यचकित थे। प्रशंसा भरे स्वर में पंडित नेहरु ने पूछा – ऐसा प्रखर दिमाग कहाँ से पाया राजेन्द्र बाबू ? देश रत्न राजेन्द्र बाबू ने सौम्य मुस्कान के साथ उत्तर दिया – यह दिमाग दूध से बना है, अण्डे से नहीं। यह थी एकाग्रता पूर्वक पढ़ने और स्मृति में रख लेने की करामात। ऐसे मेधावी आज भी मिल सकते हैं।

17.2.2 विस्मृति के कारण

यह जो भूलने की समस्या है वह सभी उम्र के लोगों में दिखाई देती है। बचपन में भी दिखाई देती है एवं बड़ी उम्र के लोगों में भी। आखिर व्यक्ति भूलता क्यों है ? उसे याद क्यों नहीं रहता है ? मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जिसमें आपकी रुचि नहीं है उसे याद रखना कठिन होता है। जिसमें आपकी गहरी रुचि है उसको याद करने की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती है, स्वतः याद रह जाती है। क्रिकेट के शौकीन बच्चों से पूछो कि भारतीय क्रिकेट टीम के ग्यारह खिलाड़ी कौन–कौन से हैं तो वे तुरन्त बता देंगे। शायद कभी उन्होंने इसे बैठकर याद नहीं किया होगा। स्वतः याद हो गया। रुचि हो तो याद करना और उसे याद रखना आसान हो जाता है। रुचि न होने से एकाग्रता भी नहीं हो पाती है उससे याद करने में भी कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त संकल्प का अभाव, स्मरणीय विषय में अरुचि, टी.वी. खेल आदि अन्य मनोरंजन के साधनों में अतिरुचि व आकर्षण, अनियमित दिनचर्या, मानसिक चंचलता, मस्तिष्क को पर्याप्त पोषण न मिल पाना, निरन्तरता व पुनः पुनः अभ्यास का अभाव आदि विस्मृति के प्रमुख कारण हैं। विस्मरण योग्य बातों की स्मृति को बनाये रखना, कलह कदाग्रह करना, ईर्ष्या करना आदि बातें स्मृति प्रकोष्ठों को घेरे रहेगी तो स्मृति योग्य बातें याद नहीं रहेगी।

बोध प्रश्न

1. अच्छी स्मृति के क्या–क्या लाभ हैं ?
2. विस्मृति के क्या–क्या कारण हैं ?

17.3.0 स्मृति प्रशिक्षण

स्मृति के विकास के लिए स्मृति के बनने की प्रक्रिया को समझना उपयोगी रहेगा। इसके चार चरण हैं :– ***1. ग्रहण (Reception), 2. धारणा (Retention), 3. पहचान (Rcognition), 4. प्रत्यास्मरण (Recall)।*** किसी भी तथ्य को याद करने के लिए उसे रुचि एवं एकाग्रता से **ग्रहण** करना होता है। ग्रहण करने के बाद वे तथ्य हमारे मस्तिष्क में लम्बे समय तक क्षमतानुसार **धारणा** के रूप में संगृहित रहते हैं। जब पुनः वे तथ्य हमारे सामने आते हैं तो उनकी आंशिक या पूर्ण रूप से **पहचान** कर ली जाती है। आवश्यकतानुसार जब वे सहज ही चेतना में ऊभर आते हैं तो उसे **प्रत्यास्मरण** कहा जाता है। उसे हम अच्छी स्मृति या सुदृढ़ स्मृति भी कहते हैं। शीघ्र याद होना, लम्बे समय तक याद रहना, समय पर उपयुक्त प्रसंग का स्मरण हो आना, भाषण में उसकी समुचित प्रस्तुति देना आदि सुदृढ़ स्मृति के लक्षण हैं।

धारणा की दृष्टि से स्मृति के दो प्रकार किये जाते हैं – ***अल्पकालिक स्मृति एवं दीर्घकालिक स्मृति।*** अल्पकालिक स्मृति उसे कहते हैं जो थोड़े समय के लिए याद रहती है। दीर्घकालिक स्मृति उसे कहते हैं जो लम्बे समय तक याद रह जाती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अल्पकालिक स्मृति किसी की भी खराब नहीं होती है। केवल अन्तर पड़ता है दीर्घकालिक स्मृति में। वास्तव में अच्छी या बुरी स्मृति नाम की कोई चीज नहीं होती है। केवल होती है – प्रशिक्षित स्मृति या अप्रशिक्षित स्मृति। ***जिसने अल्पकालिक स्मृति को दीर्घकालिक स्मृति में बदलने का प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया उसकी स्मृति अच्छी व सुदृढ़ होती है।*** प्रश्न है कि अल्पकालिक स्मृति को दीर्घकालिक स्मृति में कैसे बदलें?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अल्पकालिक स्मृति को दीर्घकालिक स्मृति में बदलने के लिए चार महत्त्वपूर्ण कारक तत्त्व हैं – ***1. रुचि, 2. एकाग्रता, 3. सम्बन्ध संयोजना, 4. पुनरावर्तन।*** इन चार कारक तत्त्वों के उपयोग से स्मृति को प्रशिक्षित किया जाता है।

17.3.1 रुचि

अल्पकालिक स्मृति को दीर्घकालिक स्मृति में बदलने का सबसे पहला बिन्दु है – रुचि। जिस विषयवस्तु को याद रखना है उसमें रुचि का होना। अनेक बार कुछ विषय स्वतः रुचिकर होते हैं तो उन्हें याद रखना आसान होता है। कभी–कभी कुछ विषय ऐसे होते हैं, जिनमें रुचि तो नहीं होती किन्तु उन्हें याद रखना आवश्यक होता है। ऐसे विषयों में रुचि लेनी होती है। रुचि को बढ़ानी पड़ती है। ***रुचि को बढ़ाने का सरलतम उपाय है – उस विषय की उपयोगिता के बारे में बार–बार विचार करना।*** बार बार दोहराने से वह विचार हमारे अवचेतन मन तक बैठ जाता है। इससे स्वतः उस विषय के प्रति रुचि जागृत हो जाती है। जैसे किसी विद्यार्थी को गणित विषय कठिन लगता है, उसमें उसे आनन्द नहीं आता है, मन नहीं लगता है। दूसरी तरफ गणित विषय में उत्तीर्ण होना भी आवश्यक है। ऐसी परिस्थिति व मनःस्थिति में विद्यार्थी क्या करे ? अभिभावक अथवा शिक्षक इस विषय की उपयोगिता के बारे में बताएं। विद्यार्थी स्वयं अपना ध्यान केन्द्रित करे कि –''गणित मेरे लिए अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक है, यह भविष्य में बहुत काम आयेगा। मैं इसे थोड़ी सी मेहनत से हल कर सकता हूं।'' इस प्रकार इसे वह बार बार दोहराये जिससे वह उसके अवचेतन मन तक चला जाये। इससे गणित में उसकी रुचि स्वतः जागृत हो जायेगी। मनोरंजनात्मक विषय आधारित खेल व प्रभावकारी श्रव्य–दृश्य सामग्री से भी रुचि जागृत की जा सकती है।

17.3.4 एकाग्रता

स्मृति का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारक तत्व है – एकाग्रता। एकग्रता शब्द एक + अग्र शब्द से मिलकर बना है। अग्र का अर्थ है – आलम्बन। एकाग्रता का अर्थ है – एक ही आलम्बन/वस्तु/विषय पर मन का स्थिर रहना। स्मृति के संदर्भ में ***मन के एकाग्र होने से दो फलित घटित होते हैं – विषय–वस्तु के अन्तरंग सम्बन्धों का बोध तथा संस्कारों का दृढ़ता से ग्रहण।*** मन के एकाग्र होते ही विषयवस्तु का बोध सरल हो जाता है साथ ही इनके पारस्परिक सम्बन्धों का भी ज्ञान सहज रूप से विकसित होने लगता है। इससे विषयवस्तु का ग्रहण बहुत तीव्रता से एवं सघन रूप से होने में सहायता मिलती है। वह विषय वस्तु दीर्घकालिक स्मृति बन जाती है।

अध्ययन और पठन–पाठन के सन्दर्भ में एकाग्रता का बहुत अधिक महत्त्व है। ***अतः पढ़ने से पहले स्थान, समय, अवधि, आदि पर भी ध्यान देने से एकाग्रता को बनाये रखने में मदद मिलती है।***

अवधि : किसी एक विषय पर सामान्यतया 20 से 40 मिनट तक ही एकाग्र रहा जाता है। उसके पश्चात् मस्तिष्क के तन्तु थकने लगते हैं। अतः एक विषय को एक साथ लगातार 40 मिनट से अधिक न पढ़ें। यदि लम्बा पढ़ना आवश्यक ही हो तो बीच–बीच में विषयान्तर कर लें। इससे एकाग्रता को बनाये रखने में मदद मिलेगी।

समय : अध्ययन के लिए समय का चुनाव भी सावधानी से करना चाहिए। जब मन प्रसन्न, भार व तनाव रहित हो वह समय सबसे अच्छा होता है। ऐसे समय में मन की ग्रहणशीलता सर्वाधिक होती है। प्रातः ब्रह्ममुहूर्त्त का समय इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

स्थान : स्थान भी ऐसा हो जहां व्यवधान की संभावना कम से कम हो। कमरे में टी.वी. रखा हो, परिवार के अन्य सदस्य उसे देख रहे हों, आप भी वहीं बैठकर पढ़ रहे हों तो यह सम्भावना अधिक है कि आपका मन पढ़ने में कम लगे। अतः वायु व प्रकाश पूरा हो तथा बाह्य ध्वनि रहित स्थान का प्रयोग करना हितकर होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस प्रकार एकाग्रता को बढ़ाने एवं व्यवधान को कम से कम करने पर ध्यान देने से दीर्घकालिक स्मृति के विकास में बहुत मदद मिलती है। इसके अतिरिक्त ध्यान के अनेक छोटे–छोटे अभ्यास (4.1 व 4.2) भी हैं जिनके द्वारा एकाग्रता और स्मृति का विकास किया जा सकता है।

17.3.3 सम्बन्ध संयोजना

बचपन में समृति बहुधा तीव्र होती है। फोटोग्राफी की तरह मस्तिष्क के कैमरे में वह दृश्य कैद हो जाता है। लम्बे समय तक वह दृश्य याद भी रहता है ***किन्तु जैसे–जैसे बड़े होते हैं तो फोटोग्राफिक स्मृति कम होती चली जाती है। उस समय स्मृति अल्पकालीन से दीर्घकालीन बनाने का सर्वाधिक प्रचलित व सरलतम उपाय है – सम्बन्धों की संयोजना करना।*** ज्ञात से अज्ञात को जोड़ना। जैसे विद्यालय में पढ़ते समय सात रंगों को याद करने के लिए कहा जाता था। उस समय यह भी बताते थे कि इसको याद करने के लिए सभी रंगों के पहले अक्षरों (अंग्रजी के) का सम्बन्ध कर लो तब एक शब्द बनता है – VIBGYOR अर्थात् Violet (बैंगनी), Indigo (नीला), Blue (आसमानी) Green (हरा), Yellow (पीला), Orange (केसरिया), Red (लाल)। इस प्रकार एक शब्द में सातों रंग सरलता से याद हो जाते हैं। वह शब्द आज अनेक वर्षों के बाद भी याद है। इस प्रकार सम्बन्धों के संयोजन से अल्पकालिक स्मृति को दीर्घकालीन स्मृति में सरलता से बदला जा सकता है। यह संबंध संयोजना स्मृति प्रशिक्षण का हृदय है। इससे स्मृति प्रशिक्षण के दोनों कारक तत्व स्वतः जुड़ जाते हैं। स्मरण करना रुचिकर हो जाता है तथा मन भी वहां सहज रूप से एकाग्र हो जाता है।

इस ***संबंध–संयोजना का अपना पूरा विज्ञान भी है। उसे 'अवधान विद्या (Mnemonics) कहा जाता है।*** वह प्राचीनकाल में बहुत विकसित था। आज भी अनेक मुनिगण व गृहस्थ व्यक्ति भी स्मृति प्रशिक्षण व अभ्यास से आश्चर्यजनक प्रदर्शन करने में सक्षम हैं। इस स्मृति प्रदर्शन के अन्तर्गत 27 अंकों तक की लम्बी संख्या याद रख लेते हैं। सैंकड़ों वस्तुओं या तथ्यों को तुरन्त याद कर लेते हैं। अनेक श्लोंकों को तुरन्त याद कर लेते हैं–आदि अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं तथा कार्यक्रम के अन्त में उन्हें हूबहू सुना भी देते हैं। स्मृति प्रशिक्षण में चेहरे को, नामों को याद रखने आदि अनेक स्मृतिगत समस्याओं के समाधान हेतु सम्बन्ध संयोजना सिद्धान्त का अलग–अलग ढंग से उपयोग होता है। इन्हें सीख कर कोई भी व्यक्ति स्मृति के कमजोर पक्षों को सरलता से विकसित कर सकता है।

4.1.4 पुनरावर्तन

पुनरावर्तन का तात्पर्य है – याद की हुई सामग्री को दोहराना। जिस सामग्री का लम्बे समय तक उपयोग नहीं होता वह सामग्री खराब होने लगती है। इसी प्रकार जिस विषय वस्तु को हमने याद किया है उसका भी समय समय पर किसी न किसी प्रकार से उपयोग नहीं होता है तो वह भी विस्मृत होने लगती है। ***अतः समय–समय पर याद की हुई सामग्री का उपयोग अथवा पुनरावर्तन करते रहना अच्छी एवं सुदृढ़ स्मृति के लिए अत्यन्त आवश्यक है।***

हम अपनी रुचि के विषय को बार बार देखना, पढ़ना व सुनना चाहते हैं। अतः पढ़ने में एवं याद करने में रुचि लें। उसकी उपयोगिता पर बार–बार ध्यान दें। इससे पुनरावर्तन व उपयोग करने की क्षमता बढ़ेगी। उदाहरणतया जैसे कोई अपरिचित व्यक्ति आपसे मिले, उसने आपको नाम बताया। नाम सुनते ही उसको तीन चार बार अपने भीतर मन ही मन दोहरा लें। उसकी संबंध संयोजना कर लें। वार्ता के दौरान तीन चार बार उसको उसके नाम से संबोधित करने का प्रयत्न करें। अभ्यास करें । इससे आपको अपने दैनिक जीवन में नाम को याद करना व याद रखना आसान हो जायेगा।

बोध प्रश्न

---

1. रुचि को बढ़ाने का सरलतम उपाय क्या है ?
2. एकाग्रता से आप क्या समझते हैं ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

17.4.1 सुदृढ़ स्मृति और अध्ययन शैली

विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए संबंध–संयोजना की विशेष पद्धति का विकास हुआ है। इसे सीखकर प्रत्येक विद्यार्थी बहुत लाभ उठा सकता है। संबंध संयोजना के महत्त्व को एक और उदाहरण से समझें – मेडिकल स्टोर में सैंकड़ों प्रकार की दवाईयां होती हैं। दुकान का मालिक बिना किसी विशेष असुविधा के जब चाहे तब किसी भी दवाई को तुरन्त लाकर ग्राहक को दे देता है। क्या इसका रहस्य आप जानते है ? इसका रहस्य संबंध संयोजना है। दुकानदार प्रत्येक दवाई के लिए एक स्थान सुनिश्चित करता है फिर वहीं उसे रखता है। अतः उसे रखने व लेने में कठिनाई नहीं होती है।

अध्ययन करते समय भी किससे; किसको एवं कैसे जोड़ना ? संबंधों की संयोजना कैसे करना, यह सीखा दिया जाये तो ग्रहण, धारण, पहचान व प्रत्यास्मरण – स्मृति के सभी पक्ष सुदृढ़ हो जायेंगे। उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए अध्ययन पद्धति को चार चरणों में बांटा गया है– 1. सर्वावलोकन, 2 पूर्वावलोकन, 3. अन्तरावलोकन, 4. पुनरावलोकन।

17.4.1 सर्वावलोकन (Over View)

अध्ययन की सामग्री को मस्तिष्क में धारण करने से पहले उसे किससे जोड़ा जाये जिससे वह लम्बे समय तक याद रहे एवं वह आसानी से समय पर याद भी आ जाए। इसके लिए ***हम अध्ययन से पूर्व पुस्तक का समग्र रूप से अवलोकन करें, उससे परिचित हो जाएं। उसकी भूमिका, उसका सारांश एवं उसकी अनुक्रमणिका (Index) को पढ़ें।*** विशेष रूप से अनुक्रमणिका के परस्पर संबंधों को समझने की कोशिश अवश्य करें। यह अनुक्रमणिका ही वह Anchor या हुक है जिससे अध्ययन की पूरी सामग्री व्यवस्थित रूप से जुड़ी रहती है। मस्तिष्क में लम्बे समय तक जुड़ी रहेगी। इस अनुक्रमणिका (Index/Content) को प्रत्येक बार हर विषय के अध्ययन से पूर्व एक बार अवश्य देख लें, उनके पारस्परिक संबंधों को ताजा कर लें। सामान रखने के लिए स्टोर में हुक, अलमारियां आदि जितनी अधिक और व्यवस्थित रहेगी सामान भी उतना ही अधिक और व्यवस्थित रखा जा सकेगा। अतः अनुक्रमणिका को समझने व प्रत्येक बार उसे देखने के महत्त्व को जानकर प्रत्येक विषय के अध्ययन से पूर्व अवश्य उपयोग करें।

17.4.2 पूर्वावलोकन/पुनरीक्षण (Review)

विषय के अध्ययन के अन्तर्गत जिस अध्याय को पढ़ना है, उसे भी किससे एवं कैसे जोड़ा जाए। ***अध्याय को जोड़ने के लिए सबसे उपयोगी साधन है –अध्याय के अन्त में दिए गये सारांश, अध्याय के अन्त में दिये गये प्रश्न एवं पूर्व मे दी गई अध्याय की रूपरेखा।*** अतः अध्याय को प्रारम्भ करने से पहले उसके प्रश्नों को पढ़ें। पूर्व में दी गई रूपरेखा को पढ़ें एवं अध्याय के अन्तर्गत दिये गये शीर्षक, उपशीर्षक, तालिका, चित्र आदि को देखें। इससे अध्याय का सामान्य परिचय होगा जिससे आपकी रुचि व एकाग्रता बढ़ेगी।

सर्वावलोकन व पूर्वावलोकन से विषय के प्रति रुचि व एकाग्रता बढ़ने के अतिरिक्त अध्याय/पाठ के प्रति आपकी समझ को भी बढ़ायेगी। आपकी अन्तर्दृष्टि भी विकसित होगी। पाठ में क्या–क्या बातें महत्त्वपूर्ण व स्मरणीय है उनकी पकड़ भी आपमें मजबूत होगी।

17.4.3 अन्तरावलोकन

अन्तरावलोकन के समय नियमित अध्ययन की भांति पूरे पाठ को पढ़ें किन्तु एक बात याद रखें, ***पाठ पढ़ते समय हाथ में कच्ची पेंसिल एवं रबड़ अवश्य रखें। पाठ को त्वरित गति से पढ़ें, पढ़ते समय पेन्सिल को पढ़ी जाने वाली पंक्ति पर त्वरित गति से आगे बढ़ाएं। स्मरणीय एवं महत्त्वपूर्ण अंशों को रेखांकित करें। कठिन अंशों को भी अंकित (Mark) करें।*** त्वरित गति से पूरे पाठ को पढ़ लें। एक बार पढ़ने के बाद कठिन अंशों एवं महत्त्वपूर्ण अंशों को दोबारा पढ़ लें। उपरोक्त प्रक्रिया के बाद अपने नोट्स कॉपी में बना लें। नोट्स बनाने की सामान्य प्रक्रिया के अतिरिक्त एक विशेष प्रक्रिया यह भी है जो पुनरावर्तन व दीर्घकालिक स्मृति के लिए बहुत सहायक सिद्ध होती है। सामान्य प्रक्रिया के अन्तर्गत सभी महत्त्वपूर्ण व

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्मरणीय बातों को हम क्रमशः लिख लेते हैं। किन्तु विशेष प्रक्रिया के अन्तर्गत सम्पूर्ण अध्याय को हम केन्द्रीय सारभूत तथ्यों से जोड़कर वृक्षाकार रूप में विकसित करते हैं।

17.4.4 पुनरावलोकन

याद की गई सामग्री का जब बार बार उपयोग होता है तो वह विस्मृत नहीं होती है। लम्बे समय तक याद रहती है। कम समय में अधिक से अधिक सामग्री का पुनरावलोकन कैसे हो ? सर्वावलोकन तथा पूर्वावलोकन के पश्चात् अन्तरावलोकन में आपने जो स्मरणीय व महत्त्वपूर्ण अंशों को लिखा है उसे पुनः देख लें तथा समय–समय पर देखते रहें। यदि आपने साथ–साथ वृक्षाकार चित्रण व लेखन भी किया है तो वह आपके पुनरावर्तन की क्षमता को बहुत तीव्र व सटीक बना देगा। उसको देखते ही पाठ की महत्त्वपूर्ण बातें आपके मस्तिष्क में फिल्म की तरह घूम जायेगी। बहुत तीव्र गति से पाठ का पुनरावर्तन होगा। अभ्यास के बाद अध्ययन करना भी अपने आपमें मनोरंजक बन जायेगा। याद करना भी आनन्ददायक बन जायेगा।

बोध प्रश्न

1. सर्वावलोकन से आप क्या समझते हैं ?
2. अन्तरावलोकन पर एक परिच्छेद लिखिये।

17.5.0 मस्तिष्क की क्षमता और प्रेक्षाध्यान

मस्तिष्क की क्षमता असीम हैं। उसकी क्षमता का आधार जागृत ज्ञान तन्तु है। ***मस्तिष्क के दो भाग हिप्पोकेम्पस (Hippocampus) और अमीगडाला (Amygdala) दीर्घकालीन स्मृति के लिए विशेष उत्तरदायी होते हैं।*** इनका स्थान कनपटी के पास होता है। जब ये स्वस्थ, शक्तिशाली होते हैं, अर्थात् इनके तन्तु सक्रिय और जागृत होते हैं तो स्मृति के दीर्घकालीन व सुदृढ़ होने में बहुत सहयोग मिलता है। दोनों कनपटियों पर पीले रंग का ध्यान से वहां के ज्ञान तन्तुओं को सक्रिय और जागृत किया जा सकता है।

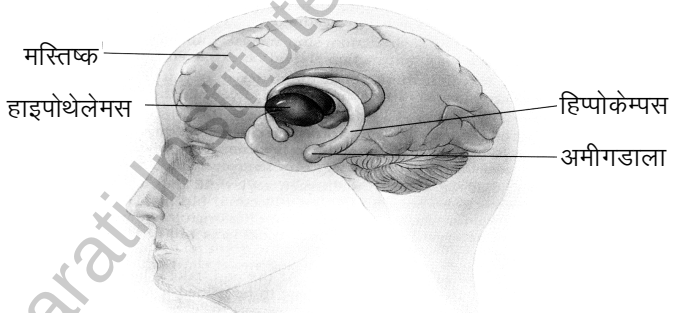

चित्र 17.1 : दीर्घकालीन स्मृति के लिए उत्तरदायी हिप्पोकेम्पस और अमीगडाला

मानसिक क्षमता के विकास के साथ किसी तथ्य को ग्रहण करते समय उसी पर ध्यान को एकाग्र करना आवश्यक होता है अन्यथा वह तथ्य याद नहीं रह पायेगा। जब मस्तिष्क पहले से ही अत्यधिक विचारों की उथल पुथल में उलझा रहता है तो हमारे चारों ओर क्या हो रहा है? उसका भी ठीक से बोध नहीं होता है। अतः ***मस्तिष्क को विचारों से खाली करने और मन को एकाग्र करने का एक और सरल उपाय है – महाप्राण ध्वनि का अभ्यास।***

17.5.1 स्मृति विकासक प्रयोग : महाप्राण ध्वनि :

सुखासन में बैठें। ज्ञान मुद्रा लगाएं। अर्थात् अंगूठे और तर्जनी के अग्रभागों को मिलाएं। शेष तीनों अंगुलियां सीधी रहे। दोनों हाथों को घुटनों पर स्थापित करें। आंखें बिना दबाव दिये कोमलता से बन्द रखें। रीढ़ व गर्दन सीधी रहे। लम्बा श्वास भरें एवं भंवरे की तरह मंद एवं मधुर गूंजन करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

महत्त्व एवं लाभ :

1. महाप्राण ध्वनि ध्यान की पूर्व भूमिका का निर्माण करती है।
2. मस्तिष्क के स्नायुओं को सक्रिय करती है।
3. मन की चंचलता को कम करती है।
4. एकाग्रता बढ़ाती है।
5. पढ़ने में मन लगता है।
6. श्वास–प्रश्वास मंद और लम्बा होता है।
7. इसके निरन्तर अभ्यास से स्मरण–शक्ति का विकास होता है।
8. मन शान्त और भाव निर्मल होते हैं।

17.5.2 ज्ञान केन्द्र पर पीले रंग का ध्यान

दाहिने हाथ की हथेली ज्ञान केन्द्र पर रखें। सूरजमुखी के फूल की भांति ज्ञान केन्द्र और दोनों कनपटियों पर पीले रंग का ध्यान करें।

शब्दावली को तीन बार दोहराएं – ''मस्तिष्क के ज्ञान तन्तु सक्रिय हो रहे हैं। स्मरणशक्ति का विकास हो रहा है।'' (तीन बार मानसिक जप करें।)

अनुभव करें– ''मस्तिष्क के ज्ञान तन्तु सक्रिय हो गये हैं, स्मरण शक्ति का विकास हो गया है।''

तीन बार महाप्राण ध्वनि से प्रयोग सम्पन्न करें।

इस प्रकार व्यक्तित्व विकास का एक महत्त्वपूर्ण घटक तत्व हैं – स्मृति विकास। इसे स्मृति प्रशिक्षण व प्रयोग से विकसित किया जा सकता है तथा स्मृति से संबंधित समस्याओं का समाधान प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति इससे लाभान्वित हो सकता है।

बोध प्रश्न

1. महाप्राण ध्वनि का महत्त्व एवं लाभ बताइये।
2. ज्ञान केन्द्र पर पीले रंग के ध्यान का सिद्धान्त लिखें।

17.6.0 सारांश

- सुदृढ़ स्मृति प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में सफलता प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण पहलू है। व्यक्तित्व विकास का एक और महत्त्पूर्ण पहलू है – अभिव्यक्ति कौशल का विकास। अच्छी अभिव्यक्ति के लिए सतत ज्ञानार्जन की आवश्यकता होती है उसके लिए जितनी अच्छी स्मृति होती है अभिव्यक्ति में उतना ही अधिक निखार आता चला जाता है। यदि व्यक्ति की स्मृति अच्छी है तो वह अपने कार्य की योजनाबद्ध व व्यवस्थित क्रियान्विति करके अच्छे परिणाम ला सकता है।
- विस्मृति का एक मूल कारण है – रुचि का अभाव। इस समस्या के निदान हेतु स्मृति प्रशिक्षण को अपनाया जा सकता है। स्मृति के निर्माण के चार चरण हैं –1. ग्रहण (Reception), 2. धारणा (Retention), 3. पहचान (Rcognition), 4. प्रत्यास्मरण (Recall)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- मनुष्य की स्मृति के दो रूप हैं – प्रशिक्षित स्मृति एवं अप्रशिक्षित स्मृति। जिसने अल्पकालिक स्मृति को दीर्घकालिक स्मृति में बदलने का प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया उसकी स्मृति अच्छी व सुदृढ़ होती है। अल्पकालिक स्मृति को दीर्घकालिक स्मृति में परिवर्तित किया जा सकता है। इसके चार मूल कारक हैं – 1. रुचि, 2. एकाग्रता, 3. संबंध संयोजना, 4. पुनरावर्तन।

- सदृढ़ स्मृति और अध्ययनशैली के चार उपाय (चरण) हैं – 1. सर्वावलोकन, 2. पूर्वावलोकन, 3 अन्तरावलोकन, 4. पुनरावलोकन।

- प्रेक्षाध्यान द्वारा मस्तिष्क की क्षमता को जागृत कर एकाग्रता को बढ़ाया जाता है। महाप्राण ध्वनि का अभ्यास और ज्ञान केन्द्र पर पीले रंग के ध्यान से स्मृति विकास में बहुत मदद मिलती है। इसका नियमित अभ्यास बहुत आवश्यक है।

17.7.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रत्यास्मरण से क्या तात्पर्य है ?
2. धारणा की दृष्टि से स्मृति के प्रकार लिखें।
3. पुनरावर्तन से क्या तात्पर्य है ?
4. अध्ययन पद्धति के कितने चरण हैं ? व कौन–कौन से हैं ?
5. मस्तिष्क के कौन से दो भाग दीर्घकालिक स्मृति के लिए उत्तरदायी हैं ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अभिव्यक्ति कौशल में अच्छी स्मृति का क्या योगदान है ?
2. स्मृति के चरणों को संक्षेप में समझाइये।

निबंधात्मक प्रश्न

1. अल्पकालीन स्मृति को दीर्घकालीन स्मृति में बदलने वाले चार महत्त्वपूर्ण कारकों को बताते हुए उन्हें विस्तारपूर्वक समझाएं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 5 सक्षम व्यक्तित्व का विकास

पाठ – 18 उच्च मानसिक शक्तियों का विकास

रूपरेखा

18.0.0 उद्देश्य

18.1.0 भूमिका

18.2.0 शक्ति का स्वरूप

18.2.1 शक्ति : आध्यात्मिक दृष्टिकोण

18.2.2 शक्ति : वैज्ञानिक दृष्टिकोण

18.3.0 उच्च मानसिक शक्तियां

18.3.1 तर्क शक्ति

18.3.2 अन्तर्दृष्टि

18.3.3 उच्च गणनाएं

18.4.0 उच्च मानसिक शक्ति का आधार

18.4.1 शक्ति का भण्डार

18.4.2 शक्ति का उपयोग

18.5.0 शक्ति का ऊर्ध्वारोहण

18.5.1 शक्ति का ऊर्ध्वारोहण और अन्तर्यात्रा

18.5.2 प्रयोग प्रविधि

18.6.0 सारांश

18.7.0 अभ्यास प्रश्न

18.0.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों !

मानव का मस्तिष्क अनन्त क्षमताओं की खान है परन्तु ये क्षमताएं सुप्त अवस्था में होने के कारण हम इनसे अनभिज्ञ रह जाते हैं। प्रस्तुत पाठ के माध्यम से हम विद्यार्थियों को इस क्षमता से परिचित कराएंगे। अतः इस पाठ से आप जान पाएंगे–

1. आध्यात्मिक दृष्टि से शक्ति का स्वरूप
2. वैज्ञानिक दृष्टि से शक्ति का स्वरूप
3. उच्च मानसिक शक्तियों के विभिन्न रूप

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. उच्च मानसिक शक्तियों का आधार

5. शक्ति के ऊर्ध्वारोहण का तात्पर्य एवं उपाय

18.1.0 भूमिका

शक्ति व्यक्तित्व विकास का बीज है। यदि हममें सब कुछ है पर शक्ति नहीं तो सभी बेकार हैं। जिस प्रकार जल के बिना जलाशय का अस्तित्व समाप्त हो जाता है उसी प्रकार शक्ति के अभाव में व्यक्ति का व्यक्तित्व मिट जाता है। इसलिये यदि हमें विकास करना है, सफल जीवन जीना है तो शक्ति से परिचित होना होगा। वह व्यक्ति उतना ही सफल होता है जितना शक्तिशाली होता है। शक्ति का तात्पर्य केवल शारीरिक शक्ति से नहीं है। इसका आशय प्राणशक्ति, संकल्पशक्ति, मानसिक एवं भावनात्मक शक्ति आदि से भी है। इसके साथ ही अलौकिक शक्ति भी हमारी क्षमता का उच्चतम स्तर है।

हमारे अन्दर अनन्त शक्ति का स्रोत है। वहां तक पहुंचना और उसका समुचित उपयोग करना ही उच्च मानसिक शक्तियों के विकास का प्रयोजन है।

18.2.0 शक्ति का स्वरूप

व्यक्ति के पास यदि सब कुछ है लेकिन शक्ति नहीं है तो क्या होगा ? गाड़ी बहुत अच्छी है लेकिन पेट्रोल नहीं है तो क्या होगा ? रॉकेट बहुत बढ़िया है लेकिन ईंधन नहीं है तो क्या होगा ? आदमी बहुत सुन्दर है और भीतर में प्राण नहीं है तो क्या होगा? लोग कहेंगे ले जाओ इसकी अन्तिम क्रिया करवाओ। शक्ति विकास भी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। व्यक्तित्व विकास का आधारभूत विषय है। अगर किसी को विकसित होना है तो शक्ति चाहिए। शक्ति के बिना विकास नहीं हो सकता।

जो लोग उपवास करते हैं, लम्बी तपस्या करते हैं, चार–पांच दिनों के बाद उनका शरीर एक बार तो एकदम सुस्त हो जाता है। फिर प्राण शरीर सक्रिय होता है तो फिर से उन्हें शक्ति का अनुभव होने लगता है। अथवा तपस्या के बाद जब भोजन करते हैं तो फिर शारीरिक शक्ति आ जाती है। यदि शक्ति है तो व्यक्ति कार्य कर सकता है, दौड़ सकता है, सोच सकता है, उत्साह व उमंग से जी सकता है। अगर शक्ति नहीं है तो व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता।

हर व्यक्ति के अन्दर (भीतर) शक्ति का अनन्त सागर लहरा रहा है। प्रश्न यह है कि इन शक्तियों का हम विकास कैसे करें? उपयोग कैसे करें? जीवन में नई दिशाओं की खोज कैसे करें? जब तक जानकारी नहीं होगी उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने भीतर के शक्ति स्रोतों को जानें और उनका उपयोग कैसे किया जाए? उनको जागृत कैसे किया जाए ? इसको हम जानें, समझें।

18.2.1 शक्ति : आध्यात्मिक दृष्टिकोण

योगशास्त्र के अनुसार हमारे शरीर में शक्ति प्राण के रूप में रहती है। आधुनिक युग में जो महत्त्व विद्युत ऊर्जा का है, वही महत्त्व अध्यात्म योग में प्राण ऊर्जा का है। प्राण के दो रूप सामने आते हैं– एक वह प्राण है जो अविभक्त रूप से सम्पूर्ण आकाश मण्डल में व्याप्त है। योगियों के अनुसार सम्पूर्ण आकाश मण्डल प्राण से परिपूर्ण है। दूसरा वह प्राण है जो ऊर्जा के सभी संभावित रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। योगशास्त्र के अनुसार हमारे भीतर और बाहर जितने भी शक्ति के रूप हैं वे सभी प्राण की ही अभिव्यक्तियां हैं। जीवन के सन्दर्भ में देखा जाए तो आचार्यश्री तुलसी के अनुसार प्राण जीवनी शक्ति है। यह सम्पूर्ण जीवन को चलाने वाली ऊर्जा है। इसके

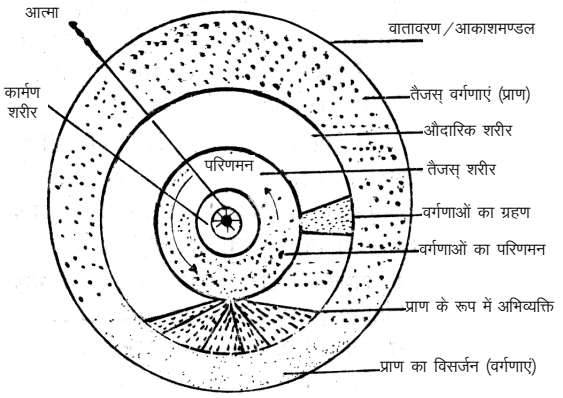

चित्र 18.1 प्राण का ग्रहण, परिणमन और उत्सर्जन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संयोग से जीव जीवन अवस्था को प्राप्त होता है एवं वियोग से मरण अवस्था को। प्राण जीव का बाहरी लक्षण है। यह जीव जी रहा है, ऐसी प्रतीति प्राण से ही होती है।

इस प्रकार स्थूल शरीर में जो चैतन्य की अभिव्यक्ति है, वह प्राण द्वारा ही होती है। आकाश मण्डल में व्याप्त प्राण का आकर्षण एवं ग्रहण इस स्थूल शरीर के विभिन्न संस्थानों से होता है (चित्र 18.1)। वह अधिक मात्रा में होता है तो प्राण पुष्ट होता है। वह स्थूल शरीर से जुड़कर अनेक प्रकार के कार्यों में योगभूत बनता है एवं पुनः आकाश मण्डल में विसर्जित हो जाता है। प्राण का ग्रहण, परिणमन व विसर्जन का क्रम अनवरत रूप से चलता रहता है।

18.2.2 शक्ति : वैज्ञानिक दृष्टिकोण

विज्ञान की भाषा में शारीरिक ऊर्जा का उत्पादन कोशिका में होता है। कोशिका में ऊर्जा उत्पति के लिए मुख्यतः दो बाह्य घटक तत्वों की आवश्यकता होती है – शर्करा (ग्लुकोज) और ऑक्सीजन। शर्करा (ग्लुकोज) हमें भोजन से प्राप्त होती है एवं ऑक्सीजन बाहरी वायुमण्डल से। भोजन के पाचन में पाचन तंत्र का योगदान होता है एवं ऑक्सीजन को ग्रहण करने में श्वसन तंत्र का। शर्करा (ग्लुकोज) और ऑक्सीजन रक्त परिसंचरण द्वारा प्रत्येक कोशिका तक पहुंचाई जाती है। इससे ***प्रत्येक कोशिका के केन्द्र में अवस्थित माइटोकोण्ड्रिया (चित्र 18.2) द्वारा ऊर्जा का निर्माण होता है। विज्ञान की दृष्टि में यही हमारी शक्ति का मूल स्वरूप है।***

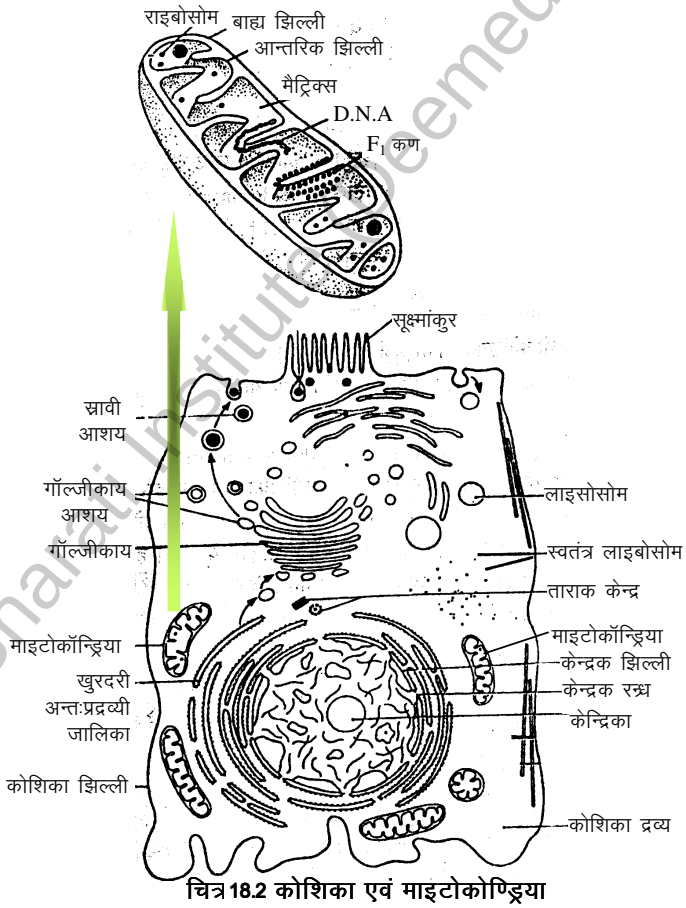

चित्र 18.2 कोशिका एवं माइटोकोण्ड्रिया

मूल शक्ति एक है। वह कोशिका में ऊर्जा के रूप में उत्पन्न होती है। इसे प्राण भी कहा जा सकता है। ***यह प्राण ऊर्जा हमारे स्थूल जीवन में तीन प्रकार की शक्तियों के रूप में अभिव्यक्त होती है – शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति एवं भावनात्मक***

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शक्ति / शारीरिक शक्ति से हम शारीरिक कार्य करते हैं। चलते हैं, दौड़ते हैं, खाते हैं, पीते हैं, वजन उठाते हैं इत्यादि। इन कार्यों में मुख्यतः मांसपेशीय कोशिका में निर्मित ऊर्जा की खपत सबसे अधिक होती है। मानसिक शक्ति से हम सोचते हैं, स्मरण करते हैं, कल्पना करते हैं, निर्णय करते हैं, इत्यादि। इन कार्यों में मुख्यतः नाड़ी तंत्र की कोशिका में निर्मित ऊर्जा की खपत सबसे अधिक होती है।

भावनात्मक शक्ति से हम प्रसन्नता, खेद, आक्रोश आदि सकारात्मक एवं नकारात्मक भावों को प्रकट करते हैं। इसमें ग्रन्थि तंत्र की कोशिकाओं में निर्मित ऊर्जा सबसे अधिक खर्च होती है। एक व्यक्ति मोटा–ताजा धीरे–धीरे आराम से चल रहा था, चलने में भी उसको दिक्कत आ रही थी लेकिन उसके पीछे अगर कोई कुत्ता लग जाये या पीछे से सांप आ जाए तो वह क्या करेगा ? वह भय से भागेगा जो चल भी नहीं पा रहा था, वह भागेगा। तो यह शक्ति कहां से आ गई ? यह अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की भावात्मक शक्ति है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की विशेषता यह है कि इनका स्राव (हार्मोन) सीधा रक्त में मिल जाता है। ये अन्तःस्रावी ग्रन्थियां हमारे शरीर में अनेक हैं। हमारे मस्तिष्क में दो हैं – 1. पीनियल, 2. पिच्युटरी ग्रन्थि। गले में 3. थाइराइड ग्रन्थि, 4 पैराथाइराइड ग्रन्थि। एक हृदय के पास, 5. थाइमस ग्रन्थि। एक हमारी नाभि के पास 6. एड्रीनल ग्रन्थि और एक पेडू में गोनाड्स ग्रन्थि। इन ग्रन्थियों के विविध स्राव व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और भावात्मक तीनों स्तरों को जितना प्रभावित करते हैं उतना कोई अन्य रसायन नहीं करते हैं। आप लोगों ने देखा होगा कि 12–15 साल तक जो शरीर में परिवर्तन होता है, लम्बाई बढ़ती है, वजन बढ़ता है, पेन्ट टाइट हो जाती है और शर्ट छोटे पड़ जाते हैं उसका कारण हैं विशेष स्राव। इन रासायनिक स्रावों से शरीर में तेजी से परिवर्तन आ जाते हैं। यह हमारे भीतर ऊर्जा की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति है।

बोध प्रश्न :

1. हमारे शरीर में शक्ति किस रूप में विद्यमान है?
2. पीनियल ग्रन्थि कहां पाई जाती है?

18.3.0 उच्च मानसिक शक्तियाँ

हमारे भीतर दो प्रकार की मानसिक शक्तियां हैं – 1. उच्च मानसिक शक्तियां, 2. निम्न मानसिक शक्तियां। उच्च मानसिक शक्तियों के अन्तर्गत मुख्य रूप से तर्क शक्ति, अन्तर्दृष्टि आदि का समावेश किया जाता है। निम्न मानसिक शक्तियों के अन्तर्गत साधारण स्मृति, समझ–पहचान, चिन्तन–कल्पना, आदि क्षमताओं को ग्रहण किया जाता है।

18.3.1 तर्क शक्ति

स्मृति सामान्य रूप से बच्चों में भी पाई जाती है। बच्चों में भी देखने की, सुनने की और समझने की शक्ति होती है। सामान्य गुणा–भाग आदि गणित करने की भी क्षमता होती है। उनमें सोचने और कल्पना करने की भी शक्ति होती है लेकिन तर्क शक्ति उनमें विकसित नहीं होती है। वह विकसित होती है 12 साल के बाद से। 12 साल से 25 साल तक धीरे–धीरे तर्क शक्ति बढ़ती जाती है। बहुत सारी चीजों को देखकर, समझकर कारण और कार्य के आधार पर नियम बना लिये जाते हैं कि यह ऐसा है तो ऐसा ही होगा लेकिन बच्चे ऐसा नहीं करते। जिज्ञासा करना अलग है और तर्क अलग है। ***तर्क है नियम बनाना*** कि ऐसा होने से ऐसा ही होता है। यह शक्ति बच्चों में पूर्ण विकसित नहीं होती है। वह क्या है? वे यह तो पूछ सकते हैं किन्तु ऐसा करने से ऐसा ही होगा, ऐसा नहीं करने से वैसा नहीं होगा। बच्चे इस प्रकार के नियम नहीं बना पाते। यह तर्क शक्ति (रिजनिंग पॉवर) है। यह उच्च मानसिक अवस्था में संभव होता है।

बड़े–बड़े संस्थानों में जो विशेषज्ञ होते हैं वे तर्क कर सकते हैं, भविष्यवाणी कर सकते हैं कि इतने सारे कारण चल रहे हैं तो निश्चित ही आने वाले समय में ऐसा कार्य होगा। यह जो निष्कर्ष निकालना है वह उच्च मानसिक शक्ति से ही निकलता है। डॉक्टर लक्षणों को देखकर तुरन्त निर्णय पर पहुंच जाता है कि इसको यह रोग है। यह क्या है ? यह भी उच्च

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मानसिक शक्तियों का विकास है ***जहां व्यक्ति उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर इस निर्णय पर पहुंच जाए कि ऐसा ही होने वाला है। यह रिजनिंग है।***

18.3.2 अन्तर्दृष्टि

रिजनिंग से भी आगे अन्तर्दृष्टि (इनट्यूशन पॉवर) है। इसमें आदमी अधिक सोचता नहीं है लेकिन उसे समझ में आ जाता है कि ऐसा ही होगा। समस्या का हल हो जायेगा। अन्तर्दृष्टि से निर्णय (इनट्यूशन लर्निंग) और समाधान के बारे में एक उदाहरण मनोविज्ञान की किताब में मिलता है कि एक चिंपाजी बन्दर को कमरे में बन्द कर दिया गया। उस कमरे के बीचों बीच केले लटका दिये। कहा जाता है कि चिम्पाजी बन्दर को केले खाने का बहुत शौक होता है किन्तु वह केले इतनी उंचाई पर थे कि उसका हाथ नहीं पहुंचता है। अब इधर उधर कमरे में घूमता रहता है कभी ऊपर कूदता है लेकिन वे केले हाथ नहीं आते हैं। वह थोड़ी देर बाद थक कर बैठ जाता है और फिर देखता है कि पास में डण्डा पड़ा हुआ है। वह डण्डा ले लेता है अब डण्डे से उस केले तक पहुंचने का प्रयास करता है। फिर भी डण्डा वहां तक नहीं पहुंचता है। फिर वह थोड़ी देर मेहनत करके बैठ जाता है। फिर वह इधर उधर देखता है। अचानक दिमाग में आता है कि पास में टेबल पड़ी हुई है। वह टेबल को घसीटता हुआ वहां ले आता है। टेबल पर खड़े होकर के केलों तक पहुंच जाता है। इसको कहते हैं अन्तर्दृष्टि (इनट्यूशन पावर)। जहां पहले से दिमाग में ऐसा समाधान नहीं होता कि मुझे यह करना है। नई स्थिति है उसमें क्या करना है ? उस समय अन्तर्दृष्टि (इनट्यूशन) कार्य करती है। अनेक चीजों को मिला दिया। ***व्यक्ति की रचनात्मकता और सृजनात्मकता (क्रियेटिविटी) में अन्तर्दृष्टि की भूमिका प्रमुख रूप से होती है।*** विपरीत परिस्थितियों में अनेक समस्याएं हमारे सामने होती है। जीवन में नई–नई समस्याएं पैदा होती रहती हैं। इन समस्याओं का क्या समाधान निकाला जाना चाहिए ? इसमें अन्तर्दृष्टि का बहुत बड़ा योगदान होता है। ''ऐसा करने से ऐसा होगा'' यह निर्णय अन्तर्दृष्टि से होता है।

18.3.3 उच्च गणनाएं

बहुत कठिन बातों को याद रखना भी उच्च मानसिक क्षमता है। सामान्य चीजें तो याद रह सकती है लेकिन बहुत जटिल गणित के सूत्रों को याद रखना सामान्य स्मृति के स्तर पर संभव नहीं होता। इंजीनियरिंग में काल और क्षेत्र के बोध से अनेक जटिल समस्याओं का समाधान किया जाता है। जैसे – यह पता लगाना है कि एक बड़े कमरे में कितनी कुर्सियां आयेगी ? व्यक्ति क्या करेगा ? या तो पहले सब कुर्सियों को जमा दें फिर वह बता सकेगा किन्तु जो कल्पना कर सकता है, सोच सकता है वह अपने दिमाग से गणित लगायेगा कि एक कुर्सी के लिए कितनी जगह लगेगी ? एक कुर्सी से दूसरी कुर्सी के बीच की दूरी कितनी रहनी चाहिए ? इसका हिसाब लगाकर देखेगा कि जगह कितनी है और मन ही मन विचार करके बता देगा कि इसमें इतनी कुर्सियां आराम से आ सकती है। यह क्या है ? यह हायर मेन्टल पावर है। यदि उच्च मानसिक शक्तियों का विकास नहीं है तो पहले पचास कुर्सियां लाओ फिर उनको कमरे में जमाओ और देखो कि कितनी कुर्सियां आयेगी लेकिन अब कुर्सियां लाने की जरूरत ही नहीं है। इसमें अपने आप बता देगा कि कितनी कुर्सियां आयेगी। यह सब उच्च मानसिक शक्तियों से सम्भव है। सामान्य व्यक्ति ऐसा निर्णय नहीं ले सकता।

जीवन में, अपने व्यवसाय मे, अपने कार्यक्षेत्र में, अपने कौशल में सफल होने के लिए अपने भीतर में इन सब शक्तियों को विकसित करना बहुत जरूरी है क्योंकि हर कार्य क्षेत्र में तुरन्त निर्णय करना पड़ता है। एक दिन की भी देरी होने से बहुत सारा काम पिछड़ जाता है। निर्णय यदि गलत होता है तो वह हमारे अहित में जाता है। प्रतिकूल परिणाम आते हैं। ***सही निर्णय सही समय पर तभी संभव है जब व्यक्ति के भीतर दो विशिष्ट क्षमताओं – एक तर्क–शक्ति (रिजनिंग) और दूसरा अन्तर्दृष्टि (इनट्यूशन) मजबूत हो।*** इनकी विद्यमानता में निर्णय सही होते हैं। विभिन्न कार्यों में तर्क शक्ति के द्वारा बलाबल को समझकर सर्वाधिक उपयुक्त निर्णय करना पड़ता है। अन्तर्दृष्टि हमारी ऐसी शक्ति है जो यह भांप लेती है कि यह ऐसा ही होगा। दोनों शक्तियां आ जाने से व्यक्ति में आत्म विश्वास आ जाता है। मनोबल बढ़ जाता है और वह काम को आसानी से पार लगा देता है। हर व्यक्ति के लिए, चाहे वह विद्यार्थी हो या प्रोफेसर या अन्य कोई भी काम करने वाला हो। सबके लिए उच्च मानसिक शक्तियों का विकास बहुत लाभदायक है। अब प्रश्न यह है कि उच्च मानसिक शक्तियां कहां हैं ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बोध प्रश्न

1. मानसिक शक्तियाँ मुख्य कितने प्रकार की होती है ?
2. तर्क शक्ति क्या है ?
3. रचनात्मकता और सृजनात्मकता का संबंध किस मानसिक शक्ति से है ?

18.4.0 उच्च मानसिक शक्ति का आधार

जैसा कि हमने पूर्व में पढ़ा कि ***मानसिक शक्ति का संबंध नाड़ी तंत्र के साथ है।*** नाड़ी तंत्र के दो भाग हैं– मस्तिष्क और सुषुम्ना। उच्च मानसिक शक्तियों के सभी केन्द्र मस्तिष्क में स्थित हैं। हमारी स्मरण शक्ति, चिन्तन शक्ति, तर्क शक्ति,, निर्णय शक्ति, कल्पना शक्ति, समझ शक्ति, अभिव्यक्ति क्षमता, अन्तर्दृष्टि आदि अनेक शक्तियों के केन्द्र मस्तिष्क में हैं। मस्तिष्क का वजन शरीर के अनुपात में दो प्रतिशत है पर इसको लगभग 20 प्रतिशत ऑक्सीजन के पोषण की जरूरत होती है। इसी प्रकार 17 प्रतिशत शर्करा (ग्लुकोज) की आवश्यकता होती है। सामान्यतया यह ऊर्जा, ईंधन या शक्ति हमें आहार एवं श्वास से मिलती है। ये हमारी सामान्य शक्ति को ही जागृत करती हैं। ***मस्तिष्क की अतिरिक्त एवं विशिष्ट शक्तियों को जागृत करने के लिए अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता होती है। यह अतिरिक्त शक्ति हमें शक्ति–केन्द्र से मिल सकती है।***

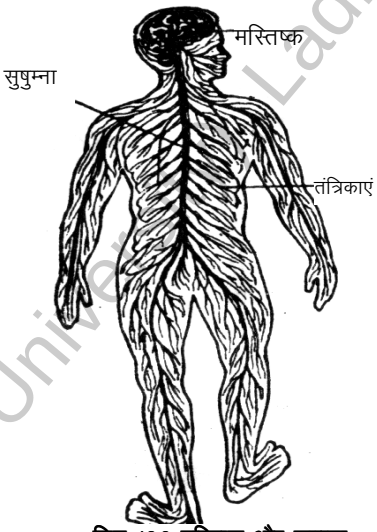

चित्र 18.3 मस्तिष्क और सुषुम्ना

18.4.1 शक्ति का भण्डार

मानसिक शक्तियों का संबंध हमारे मस्तिष्क से है। वे शक्तियां तब ही विकसित होंगी जब उनको पूरी मात्रा में प्राण ऊर्जा का सिंचन मिलता रहेगा अन्यथा उनका पूरा विकास नहीं हो पायेगा। उनके पूर्ण विकास के बिना व्यक्ति के लिए योजना बनाना और उसे सही ढंग से क्रियान्वित करना बहुत कठिन हो जाता है। ***योगशास्त्रों के अनुसार शक्ति का भण्डार रीढ़ की हड्डी के नीचे अवस्थित शक्ति–केन्द्र में है किन्तु शक्ति–केन्द्र में अवस्थित शक्ति भण्डार का उपयोग दैनिक क्रियाकलापों में नहीं होता है। शक्ति वही काम आती है जो ज्ञान केन्द्र (मस्तिष्क के ऊपरी भाग पर स्थित) के पास उपलब्ध होती है।*** जैसे कुएं में पानी बहुत है, पर दैनिक जीवन के क्रियाकलापों के लिए बार–बार कुएं पर नहीं जाया जा सकता। पानी वही काम आता है जो कुएं से लाकर घर मे भर दिया जाता है। उसे ही आवश्यकतानुसार थोड़ा–थोड़ा, बार–बार काम में लिया जाता है।

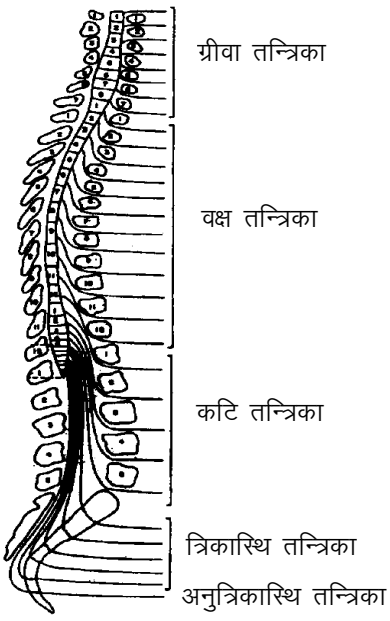

चित्र 18.4 सुषुम्ना

प्राण–शक्ति सामान्यतया हमारे भीतर शरीर के मुख्य भागों पर अपने ढंग से कार्य करती है। जब तक प्राण–शक्ति की गति पर हमारा नियंत्रण नहीं हो जाता तब तक वह न शुद्ध हो सकती है और न ही स्वेच्छा से संचालित। ***प्राणशक्ति को शक्तिकेन्द्र से ज्ञान केन्द्र में ले जाना –यही हमारी प्राण–साधना या प्राण–प्रशिक्षण का अर्थ है।*** यह हमारे व्यक्तित्व में उच्च मानसिक शक्तियों के विकास का प्रबल आधार है।

प्राण धारा के दो मार्ग हैं – बाह्य और आन्तरिक। बाह्य मार्ग से जो प्राणशक्ति जाती है वह प्रत्येक कोशिका को सक्रिय बनाती है। (जैसा कि शक्ति के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत हमने पढ़ा)। उससे सामान्य मानसिक शक्तियां – स्मृति, पहचान,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सीखना आदि उत्पन्न होती है। यह जीवन यात्रा को चलाने में सहायक होती हैं। इससे विशिष्टता उत्पन्न नहीं होती। आन्तरिक मार्ग से प्रवाहित होने वाली प्राणशक्ति से विशिष्ट शक्तियां जागृत हो जाती हैं। यह आन्तरिक मार्ग – सुषुम्ना का मार्ग है। जब हम प्राणशक्ति के प्रवाहित होने वाले मार्ग को बदल देते हैं, सुषुम्ना के मार्ग से प्राण शक्ति को ज्ञान केन्द्र में ले जाने का प्रयोग करते हैं तो हमारे व्यक्तित्व में उच्च मानसिक क्षमताओं के विकास की प्रबल संभावनाएं प्रकट होती है।

18.4.2 शक्ति का उपयोग

उच्च मानसिक शक्तियों का विकास कैसे किया जाए ? ***एक तरफ उच्च मानसिक शक्तियों का स्थान हमारा मस्तिष्क है और दूसरी ओर शक्ति का भण्डार नीचे शक्ति केन्द्र है।*** दोनों में लगभग आधा मीटर की दूरी है। दोनों के बीच में बहुत सारे स्टेशन आ जाते हैं। अन्तिम स्टेशन तक माल पहुंच नहीं पाता, उससे पहले ही माल समाप्त हो जाता है। कहते हैं कि सरकार गरीबों के लिए एक रुपया भेजती है लेकिन गरीबों तक पहुंचते–पहुंचते दस पैसा भी नहीं रहता। वह बीच में ही साफ हो जाता है। इस समस्या का समाधान कैसे किया जाए ? जो दरिद्रता है, कमी है। इसका मूल कारण है कि ***हमारी शक्ति नीचे ही खत्म हो रही है। ऊपर तक तो वह पहुंच ही नहीं पाती है।*** वहां तक कैसे ले जाया जाए ? कौन से ऐसे कारण हैं जिससे शक्ति का ह्रास हो रहा है ? इसमें दो प्रमुख कारण हैं। हमारे दो केन्द्र जो नीचे अवस्थित हैं – एक हैं स्वास्थ्य केन्द्र और दूसरा है तैजस् केन्द्र। स्वास्थ्य केन्द्र वासनाओं का केन्द्र है और तैजस् केन्द्र हमारी वृत्तियों का केन्द्र है। वृत्तियां जैसे – क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या आदि। इन नकारात्मक भावों (नेगेटिव इमोशन्स) का मूल स्थान हमारी नाभि है। और वासना का स्थान है नाभि के नीचे स्वास्थ्य केन्द्र का स्थान। ***हमारी अधिकतम शक्ति ऊपर जाने से पहले वासनाओं और वृत्तियों की पूर्ति में ही समाप्त हो जाती है।*** ये दोनों केन्द्र शक्ति को अवशोषित कर लेते हैं। आगे जाने ही नहीं देते हैं। इसका परिणाम क्या होता है ? ऊपर की उच्च मानसिक शक्तियां सुप्त रह जाती हैं। जागृत ही नहीं हो पाती हैं। यह बड़ी समस्या है कि शक्ति का केन्द्र नीचे और उच्च मानसिक शक्तियों का केन्द्र ऊपर है। इन दोनों में कैसे तालमेल बैठाया जाए ?

शक्ति केन्द्र से उस शक्ति को ऊपर के केन्द्र तक पहुंचाना होगा। अगर हम ऊपर ज्ञान केन्द्र तक शक्ति को नहीं पहुंचा पाते हैं तो फिर हम उच्च मानसिक शक्तियों का विकास अच्छी तरह से नहीं कर सकते। जितना सहज रूप से होगा उतना ही हो पायेगा। अपनी अपेक्षा और आवश्यकतानुसार उसका विकास नहीं हो पायेगा। यदि हमारी यह इच्छा है कि हमें उच्च मानसिक शक्तियों का विकास करना है तो रिजनिंग पावर को बढ़ाना है, इनट्यूशन पावर को बढ़ाना है और मेमोरी को बढ़ाना है। फिर हमें अपनी शक्ति का ऊर्ध्वारोहण करना होगा। जो हमारी शक्ति नीचे ही समाप्त हो रही है। उस शक्ति को उठाकर ऊपर के केन्द्र तक पहुंचाना होगा। यह कैसे संभव है ? शक्ति कैसे पहुंचेगी ?

बोध प्रश्न

---

1. सुषुम्ना के दोनों छोर पर अवस्थित केन्द्रों के नाम लिखो।
2. अधिकतम शक्ति ऊपर जाने के पहले कहाँ खत्म हो जाती है ?

18.5.0 शक्ति का ऊर्ध्वारोहण

शक्ति को ऊपर पहुंचाने के लिए हमें एक नियम को जानना पड़ेगा कि ***जहां–जहां मन वहां–वहां प्राण। यत्र–यत्र मनस्तत्र तत्र प्राणः।*** यह नियम है। जहां आपका मन जायेगा, वहां आपका प्राण चला जायेगा। यदि हम मन को या चित्त को नीचे से ऊपर यात्रा करायेंगे तो साथ–साथ प्राण भी नीचे से ऊपर यात्रा करेगा। इसी गति से हम नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे चित्त की यात्रा करेंगे तो साथ–साथ प्राण भी उसी गति से यात्रा करने लगेगा। इसके आने जाने का मार्ग पूर्णतः शुद्ध नहीं है। अवरोध से भरा पड़ा है। चित्त की यात्रा से मार्ग शुद्ध होगा। जैसे मान लो एक नाली बनी हुई है। उसमें कचरा इक्कठा हो गया है। पानी रुक गया है। कोई व्यक्ति उसको खोद कर निकाल सकता है अथवा आगे से पीछे, पीछे से आगे पानी का बहाव

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तेज हो तो वह एकदम साफ हो जायेगा। ऐसे ही हमारी प्राण की यात्रा से प्राणपथ में आये हुए अवरोधक दूर होने लगेंगे और साथ–साथ प्राण ऊपर की दिशा में गतिशील हो जायेगा।

18.5.1 अन्तर्यात्रा

प्राणशक्ति को ऊपर की ओर ले जाने का एक सरल उपाय है – अन्तर्यात्रा। हमारी सुषुम्ना रीढ़ की हड्डी के मध्य में है। उस पर ध्यान केन्द्रित करते हुए ऊपर से नीचे की ओर आ जाएं एवं पुनः नीचे से ऊपर की ओर जाएं। इस प्रक्रिया से हम पांच मिनट से दस मिनट तक अभ्यास करें। भावना करें कि मेरी उच्च मानसिक शक्तियां विकसित हो रही हैं। कल्पना शक्ति का विकास हो रहा है। तर्क शक्ति का विकास हो रहा है। अन्तर्दृष्टि का विकास हो रहा है– इन भावनाओं के साथ अगर हम अभ्यास करते रहेंगे तो उनसे जुड़े हुए प्रकोष्ठ जागृत हो जायेंगे। इससे बहुत जल्दी परिणाम हमें प्राप्त होंगे। इसमें बहुत अधिक समय नहीं लगेगा। ***आपको अभ्यास करते ही लगेगा कि आपका मस्तिष्क सक्रिय हो रहा है। उसमें झनझनाहट सी पैदा हो रही है। जैसे विद्युत उपकरण पर हाथ रखने से प्रकम्पन्नों का अनुभव होता है वैसे ही मस्तिष्क में तरंग और प्रकम्पन्न होने लग जायेंगे।***

यह एक छोटा सा प्रयोग है किन्तु बहुत शक्तिशाली प्रयोग है। इसे प्रारम्भ में बहुत लम्बे समय तक नहीं करना चाहिए। पांच मिनट से दस मिनट तक, इससे अधिक नहीं करना चाहिए। इससे गर्मी भी बढ़ती है। शरीर में शक्ति उत्पन्न होगी। वह एक दिशा में जायेगी तब गर्मी जैसा लगेगा। मस्तिष्क कभी कभी भारी भी लगने लगेगा। मस्तिष्क के तंतु कमजोर होंगे और शक्ति अधिक जायेगी तो खतरा हो जायेगा। वोल्टेज हाई हो तब फ्यूज उड़ जाता है। ऐसी ही हमारी भी स्थिति है। हमारे भीतर के तंतु मजबूत नहीं है तो फिर हमारे भीतर एक साथ इतनी शक्ति झेलने की क्षमता नहीं होगी। इसलिए रोज थोड़ा अभ्यास करें। पांच मिनट से शुरू करें, फिर दस मिनट से पन्द्रह मिनट और फिर धीरे–धीरे इसको बढ़ाया जाये। धीरे–धीरे हमारे भीतर की सहनशक्ति भी बढ़ जायेगी। एक छोटा सा प्रयोग पांच मिनट के लिए करके देखें।

18.5.2 प्रयोग प्रविधि

किसी सुविधाजनक आसन में बैठें, आंखें कोमलता से बन्द करें।

1. महाप्राण ध्वनि – तीन बार। पूरा श्वास भरें। श्वास को छोड़ते हुए भंवरे की तरह गुंजन की ध्वनि करें।
2. कायोत्सर्ग की स्थिति – पैर के अंगूठे से लेकर सिर तक पूरे शरीर को ढीला छोड़ दें। शिथिलता का सुझाव दें, शिथिल हो जाएं – तीन बार। अनुभव करें – शिथिल हो रहा है, तीन बार। अनुभव करें पूरा शरीर शिथिल हो गया है, तीन बार।
3. अब चित्त को रीढ़ की हड्डी के अन्तिम छोर पर केन्द्रित करें, वहां से धीरे–धीरे सुषुम्ना मार्ग से चित्त को मस्तिष्क तक ले जाएं। ऐसा अनुभव करें कि पूरा मस्तिष्क शक्ति से भर रहा है। जैसे कुएं का पानी बाल्टी से खींच कर बाहर खाली करते हैं वैसे ही अनुभव करें कि बाल्टी नीचे से ऊपर जा रही है। वापस धीरे–धीरे नीचे आ रही है। ऊपर ले जाते समय मूलबंध का भी प्रयोग करें। नीचे आते समय उसको खोल दें। (मूलबंध – अपने गुदा द्वार को श्वास छोडते हुए ऊपर की ओर खींचे, संकुचित करें फिर धीरे–धीरे मूलबंध खोलें और श्वास भरते हुए नीचे आएं) श्वास को छोड़ते हुए चित्त को सुषुम्ना मार्ग से ही ज्ञान केन्द्र (ऊपर) तक ले जाएं इसी प्रकार चित्त को भी नीचे की ओर लाते समय मूलबंध खोल दें और ऊपर जाते समय मूल बंध लगा लें। नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे सुषुम्ना में चित्त की यात्रा करें। कल्पना करें कि नीचे से शक्ति को ऊपर ले जा रहे हैं और ऊपर जाकर खाली कर रहे हैं। वापस नीचे की तरफ खाली बाल्टी लेकर आ रहे हैं। फिर उसको भरें, ऊपर की ओर उठाएं, मस्तिष्क तक ले जाएं और खाली कर दें। साथ–साथ सुझाव दें, स्मरण शक्ति, तर्क शक्ति, अन्तर्दृष्टि और कल्पना शक्ति का विकास हो रहा है। नौ बार अनुभव करें।
4. अब तीन बार महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग सम्पन्न करेंगे।

बोध प्रश्न

1. प्राणशक्ति को ऊपर की ओर ले जाने के लिए कौन सा प्रयोग करना चाहिए ?
2. प्रारम्भिक अवस्था में अन्तर्यात्रा का प्रयोग कितने समय तक करना चाहिए ?

18.6.0 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- शक्ति सक्षम व्यक्तित्व विकास का आधारभूत तत्त्व है। यदि व्यक्तित्व को विकसित करना है तो शक्ति चाहिए। शक्ति के बिना विकास नहीं हो सकता। हर व्यक्ति के अन्दर शक्ति का अनन्त सागर है, परन्तु वह उनका उपयोग करना नहीं जानता। बस, यदि सलक्ष्य उपयोग करना आ जाये तो संसार में कुछ भी असंभव नहीं है।
- आध्यात्मिक दृष्टिकोण के अनुसार शक्ति प्राण के रूप में है। यह सम्पूर्ण जीवन को चलाने वाली ऊर्जा है। इसके संयोग से जीव जीवन अवस्था को प्राप्त होता है एवं वियोग से मरण अवस्था को। प्राण जीव का बाहरी लक्षण है। यह जीव जी रहा है ऐसी प्रतीति प्राण से ही होती है।
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार ऊर्जा या शक्ति का उत्पादन शरीर की कोशिका में होता है। कोशिका में ऊर्जा उत्पति के लिए शर्करा और ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। शर्करा और ऑक्सीजन रक्त परिसंचरण द्वारा प्रत्येक कोशिका तक पहुंचाई जाती है। इससे प्रत्येक कोशिका में अवस्थित माइटोकोण्ड्रिया द्वारा ऊर्जा का निर्माण होता है। यही शक्ति शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक शक्ति के रूप में क्रमशं मांसपेशियों, तंत्रिका तंतुओं एवं ग्रन्थि तंत्र के रूप में अभिव्यक्त होती है।
- हमारे भीतर दो प्रकार की मानसिक शक्तियाँ हैं – उच्च मानसिक शक्तियाँ और निम्न मानसिक शक्तियाँ। उच्च मानसिक शक्तियों में विशेष रूप से तर्क शक्ति और अन्तर्दृष्टि बहुत महत्त्वपूर्ण है। तर्क शक्ति बालक में 12 साल की उम्र के बाद विकसित होती है। इसमें व्यक्ति उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर इस निर्णय पर पहुंच जाता है कि ऐसा होने वाला है। रिजनिंग से आगे है अन्तर्दृष्टि। इसमें आदमी अधिक सोचता नहीं है लेकिन उसे समझ में आ जाता है कि ऐसा ही होगा। जहाँ पहले से दिमाग में ऐसा समाधान नहीं होता कि मुझे यह करना है। एकदम नई स्थिति है। उसमें क्या करना है ? इसका समाधान अन्तर्दृष्टि से मिल जाता है।
- मनुष्य को अपने जीवन के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में समय–समय पर अनेक निर्णय लेने पड़ते हैं। सही निर्णय, सही समय पर व सही अवस्था में हो इसके लिए उच्च मानसिक शक्तियों का विकास होना बहुत जरूरी है।
- प्रत्येक व्यक्ति में शक्ति केन्द्र पर शक्ति का भण्डार होता है। बस जरूरत है तो उसको जागृत करने व सही उपयोग की। व्यक्ति की वासनाएं एवं वृत्तियाँ अधिकांश शक्ति को ज्ञान केन्द्र तक पहुंचने से पहले ही समाप्त कर देती है। इन पर नियंत्रण कर व अपनी शक्ति का ऊर्ध्वारोहण कर उच्च मानसिक शक्तियों को जागृत कर सकते हैं। अन्तर्यात्रा प्राणशक्ति को ऊपर की ओर ले जाने का एक सरल उपाय है। इससे वृतियों को भी नियंत्रित कर सकते हैं।

18.7.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. कोशिका में ऊर्जा उत्पति के लिए कौनसे दो बाह्य घटकों की आवश्यकता होती है ?
2. ऊर्जा की अभिव्यक्ति जीवन में किन शक्तियों के रूप में होती है ?
3. किस उम्र के बाद व्यक्ति में तर्कशक्ति का विकास होता है ?
4. हमारे मस्तिष्क का वजन शरीर के अनुपात में कितना प्रतिशत है ?
5. प्राण साधना का क्या अर्थ है ?

लघुत्तरात्मक

1. प्राण शक्ति को ऊपर ले जाने की प्रक्रिया क्या है ?
2. शक्ति के ऊर्ध्वारोहण का नियम क्या है ? यह कैसे कार्य करता है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. मनुष्य अपनी शक्तियों का श्रेष्ठतम उपयोग किस प्रकार कर सकता है ? उच्च मानिसक शक्ति के विकास की प्रयोग विधि भी लिखें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 5 सक्षम व्यक्तित्व का विकास
पाठ – 19 कार्यक्षमता का विकास

रूपरेखा

19.0.0 उद्देश्य
19.1.0 भूमिका
19.2.0 कार्य क्षमता
19.2.1 दायित्व वृद्धि : क्षमता में कमी
19.3.0 कार्य क्षमता का आधार
19.3.1 ज्ञान
19.3.2 एकाग्रता
19.4.0 मानसिक प्रशिक्षण
19.4.1 मानसिक एकाग्रता
19.4.2 मानसिक एकाग्रता का उपाय : श्वास प्रेक्षा
19.4.3 श्वास प्रेक्षा एवं श्वसन तंत्र
19.4.4 वैज्ञानिक दृष्टि से श्वास
19.5.0 एकाग्रता का अभ्यास
19.5.1 ज्ञान और अभ्यास
19.5.2 अभ्यास से असंभव भी संभव
19.5.3 अभ्यास और निरन्तरता
19.5.4 अभ्यास और संकल्प
19.6.0 प्रयोग–प्रविधि
19.6.1 दीर्घ श्वास प्रेक्षा
19.6.2 लयबद्ध श्वास प्रेक्षा
19.7.0 सारांश
19.7.1 अभ्यास प्रश्न

19.0.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों ! सक्षम व्यक्तित्व के विकास के लिए जहाँ आन्तरिक क्षमताओं का विकास आवश्यक है वहीं दूसरी ओर उन क्षमताओं के उपयोग में कुशलता अर्जित करना भी आवश्यक है। उसके लिए आवश्यक है कार्यक्षमता या कार्य दक्षता या कार्य कुशलता का विकास। व्यक्ति की सफलता भी कार्य की कुशलता पर ही निर्भर करती है। इसलिये हम अपनी एकाग्रता का विकास कर कार्यक्षमता का विकास कर सकते हैं।

प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य कार्यक्षमता की वृद्धि के बारे में बताना है। इसके अन्तर्गत हम निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करेंगे–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. कार्यक्षमता के आधार को जानेंगे ।
2. कार्यक्षमता की कमी और दायित्व वृद्धि में सामंजस्य स्थापित करना सीखेंगे।
3. अभ्यास और संकल्प के प्रयोग से अवगत होंगे।
4. मानसिक प्रशिक्षण की प्रविधियों से अवगत होंगे।

19.1.0 भूमिका

व्यक्ति की उम्र जैसे–जैसे बढ़ती जाती है वैसे–वैसे जिम्मेदारियां भी बढ़ती है परन्तु कार्य करने की क्षमता कम होती जाती है। ऐसे में व्यक्ति तनाव और चिन्ता से ग्रस्त हो जाता है। इसलिये उम्र के साथ कार्यक्षमता का भी विकास हो यह अपेक्षित है। हम अपने अनुभवों एवं सामंजस्य के द्वारा अपनी कार्य क्षमता को सही समय पर सही दिशा में गतिशील करें इस हेतु कार्यक्षमता अभिवृद्धि का शिक्षण एवं प्रशिक्षण अपेक्षित है। कार्यक्षमता का विकास कर हम अपना समुचित उपयोग कर सकते हैं।

19.2.0 कार्य क्षमता

एक उच्च अधिकारी सन्तों के दर्शनार्थ आये। बात–चीत के दौरान उन्होंने कहा कि मुनिश्री! पहले हम काम को बहुत जल्दी निपटा देते थे। अब स्थिति उल्टी हो रही है। पहले हमारे पास फाइलें कम होती थीं। एकाग्रता अच्छी रहती। हम शीघ्र ही काम निपटा देते थे। अब जितनी फाइलें एक दिन में निपटाते हैं, दूसरे दिन फिर उतनी ही फाइलें नई आ जाती हैं। ***पदोन्नति के साथ अन्य कार्य और जिम्मेदारियां भी बढ़ रही हैं। ऐसी स्थिति में एकाग्रता और कार्यक्षमता में कमी आ रही है। इसको कैसे रोका जाए ?*** कार्य क्षमता को किस प्रकार बढ़ाया जाए ? ये प्रश्न सभी प्रकार के व्यक्तियों के सामने उपस्थित होते हैं। कुछ लोग इस कमी को पहचान लेते हैं। रोकने का प्रयत्न करते हैं। कुछ लोग इसको पहचान नहीं पाते हैं। जैसा चल रहा है वैसा चलता रहता है। उनकी बैचेनी और परेशानियां बढ़ती जाती है। प्रश्न है इसको कैसे रोका जाए ?

19.2.1 दायित्व वृद्धि : क्षमता में कमी

जीवन में सफलता के लिए कार्यक्षमता का विकास अत्यन्त आवश्यक है। इसका कर्मजा शक्ति / कार्यदायित्व / कार्य–कौशल या सतत पुरुषार्थ से बहुत गहरा संबंध है। वर्तमान में बौद्धिक क्षमता पर जितना ध्यान दिया जाता है उसका शतांश भी कार्यक्षमता के विकास पर ध्यान नहीं दिया जाता है। ***उम्र बढ़ने के साथ युवा अवस्था तक व्यक्ति पर पारिवारिक, सामाजिक, व्यावसायिक दायित्व भी बढ़ते जाते हैं। जिस अनुपात में दायित्व बढ़ते हैं उस अनुपात में कार्यक्षमता नहीं बढ़ती है।*** यौवन ढलने के साथ शारीरिक, मानसिक शक्तियां भी ढलने लगती है। व्यक्ति जब बच्चा होता है तो उसके पास पढ़ने–लिखने, खाने–पीने, खेलने–कूदने आदि के अलावा और अन्य कोई विशेष जिम्मेदारी नहीं होती है। पढ़ाई पूरी करने के बाद पहला दायित्व होता है स्वावलम्बी बनने का। यदि विवाह हो गया है तो परिवार के पालन–पोषण की जिम्मेदारी भी बढ़ जाती है। जैसे–जैसे आयु बढ़ती है नई–नई चुनौतियां और कार्य सामने आने लगते हैं। कार्य क्षमता का पर्याप्त विकास होने पर व्यक्ति को सब कुछ सहज लगता है और वह आसानी से चुनौतियों का सामना करते हुए आगे बढ़ता जाता है। कार्य क्षमता के विकास के अभाव में व्यक्ति तनाव, व्यग्रता, बैचेनी, कुण्ठा या अवसाद जैसी समस्याओं से घिरता चला जाता है फलस्वरूप वह अपने आपको बोझिल अनुभव करता है। इन सब स्थितियों में व्यक्ति की कार्यक्षमता प्रभावित न हो, कार्यक्षमता बढ़ती रहे, क्या यह संभव है ?

बोध प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. कार्यक्षमता में कमी क्यों आती है ?
2. दायित्व वृद्धि एवं क्षमता में कमी का क्या परिणाम होता है ?

19.3.0 कार्यक्षमता का आधार

कार्य का परिणाम या उत्पादन–क्षमता व्यक्ति की कार्यक्षमता पर निर्भर है। ***यदि कार्यक्षमता अधिक है तो कम समय में सुन्दर व अधिक काम होगा। उत्पादन क्षमता (Operational Efficiency) अधिक होगी।*** कार्य क्षमता कम है तो अधिक समय लगाने पर भी काम कम होगा, जो होगा वह भी अच्छा नहीं हो सकेगा। आज के व्यावहारिक जीवन और व्यावसायिक क्षेत्र में सफलता के लिए कार्यक्षमता को अत्यन्त आवश्यक माना गया है।

व्यक्ति की कार्यक्षमता मुख्य रूप से दो बातों पर निर्भर है – (1) संबंधित क्षेत्र का नवीनतम ज्ञान, (2) एकाग्रता।

19.3.1 ज्ञान

कार्यक्षमता में विकास के लिए जिस क्षेत्र में व्यक्ति काम कर रहा है उस क्षेत्र का उसको नवीनतम (Latest) ज्ञान अपेक्षित होता है। जैसे कोई कम्प्युटर इंजीनियर है तो उसको अपने क्षेत्र की नवीनतम जानकारी की जरूरत होगी। अगर कोई चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट है तो उसको अपने क्षेत्र में हो रहे नित्य नवीन नियमों व नीतिगत परिवर्तनों से परिचित रहना होगा। यदि कोई डॉक्टर–सर्जन है तो उसे अपने क्षेत्र की नवीनतम तकनीक व शोधों को जानते रहना होगा अन्यथा वह पिछड़ जायेगा। उसकी कार्यक्षमता प्रभावित होगी। सही निर्णय में भी कठिनाइयां आयेगी।

19.3.2 एकाग्रता

किसी भी कार्यक्षमता के विकास का मूलभूत आधार मानसिक एकाग्रता है। इस ***एकाग्रता के आधार से ही व्यक्ति किसी भी कार्य की कार्य–प्रणाली का बोध एवं क्रियान्वयन सुगमता से कर लेता है।*** डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर, कर्मचारी, प्रबन्ध निदेशक या गृहिणी भी क्यों न हो, सबको अपने कार्य को कुशलता से करने के लिए मानसिक एकाग्रता की अत्यन्त आवश्यकता होती है। ज्ञान तो अनेक लोगों को होता है कि क्या करना चाहिए ? वस्तुतः उसको क्रियान्वित करने में अनेक समस्याएं आ जाती हैं। यदि मानसिक एकाग्रता बिल्कुल नहीं है, साथ–साथ बैचेनी है, तनाव है, चिन्ता है, भय है तो काम में भी मन नहीं लगता है। अनेक लोग ऐसे भी होते हैं जो काम करने के लिए जाते जरूर हैं, पर कहते हैं कि काम में मेरा मन नहीं लगता। उनके भीतर मन में जो कुछ हो रहा है वह उसकी सम्पूर्ण कार्यक्षमता को प्रभावित कर देता है। कहावत है ''मन के हारे हार है और मन के जीते जीत''। जिसका मन टूट गया, मनोबल गिर गया, मानसिक परेशानियां जिस पर हावी हो गई फिर वह जो भी कार्य प्रारम्भ करेगा, वह या तो सही नहीं होगा या फिर कार्य पूरा ही नहीं करेगा, बीच मे ही छोड़ देगा। वह अन्यान्य कार्यों से भी बचने की कोशिश करेगा।

एक क्रिकेट का खिलाड़ी पूरी एकाग्रता से खेलता है। दूसरे खिलाड़ी की एकाग्रता भंग हो जाती है। दोनों में क्या अन्तर है ? पहला खिलाड़ी लम्बे समय तक सफलता से खेलने में समर्थ हो जाता है जबकि दूसरा एक–दो बॉल में ही पेवेलियन का रास्ता नाप लेता है। ***जहां एकाग्रता में कमी आती है, वहां पर ज्ञान व क्षमता होने पर भी कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न नहीं हो पाता है।*** जो कार्य कर रहे हैं उसमें पूरी मानसिक शक्ति लगे। अतः आवश्यक है कि हम मन को प्रशिक्षित करें।

बोध प्रश्न

1. कार्यक्षमता और उत्पादन क्षमता में क्या अन्तर है ?
2. एकाग्रता में कमी होने पर क्या हानि होगी ?

19.4.0 मानसिक प्रशिक्षण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मानसिक प्रशिक्षण का अर्थ है कि हम जिस कार्य को कर रहे हैं 'मन' उसी कार्य में लगा रहे, अन्य बातें उस समय दिमाग में नहीं आये। इस हेतु मन को प्रशिक्षित करना जैसे – खाना खाएं तो मन केवल खाना खाने में रहे, चलें तो मन केवल चलने पर टिका रहे, बोलें तो केवल बोलने पर ध्यान रहे, सुनें तो केवल सुनने पर ही ध्यान जाए। यह मानसिक प्रशिक्षण है। इसे भाव क्रिया भी कहते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो 'हर क्रिया में मन का योग हो, वर्तमान क्षण का बोध रहे, कार्य को जानते हुए करें तथा सतत अप्रमत्त बने रहें। जो क्रिया चल रही है, हमारा पूरा भाव उसके साथ जुड़ा रहे।' अगर मन और भाव इधर उधर भटक रहें हैं, कार्य हो रहा है और मन कहीं दूसरी ओर है, भावनाएं कहीं ओर हैं तो जो भी कार्य होगा वह अस्त–व्यस्त हो जायेगा। किस प्रकार मन को व्यवस्थित किया जाए ? किस प्रकार मन को संतुलित और एकाग्र किया जाये ? इसका समाधान केवल मानसिक प्रशिक्षण द्वारा ही संभव है। यदि हम इस बात को गौण कर देते हैं, इसको कोई महत्त्व नहीं देते हैं तो इस स्थिति में केवल 20 प्रतिशत मानसिक शक्ति का ही सही उपयोग होगा। शेष 80 प्रतिशत मानसिक शक्ति का अपव्यय मानसिक भटकाव में होगा। ऐसी स्थिति में जो कार्य किया जायेगा वह कुशलता से सम्पन्न नहीं हो पायेगा, आपकी पूर्ण क्षमता उसमें नहीं लगेगी, आपकी कार्य दक्षता भी नहीं बढ़ेगी। ***यदि हम अस्थिरता, व्यग्रता, चंचलता, अधीरता पर नियंत्रण नहीं कर रहे हैं तो अपनी बहुत बड़ी हानि कर रहे हैं। केवल 20 प्रतिशत शक्ति से काम चला रहे हैं। 80 प्रतिशत शक्ति को अनावश्यक खर्च कर रहे हैं।*** इस स्थिति को बदलना है। 80 प्रतिशत शक्ति का भी सही उपयोग करना है। मन को यदि प्रशिक्षित कर लें तो यह भी संभव है। मानसिक प्रशिक्षण दो बातों पर निर्भर करता है (1) मानसिक एकाग्रता के उपाय का ज्ञान और (2) उसका निरन्तर अभ्यास।

19.4.1 मानसिक एकाग्रता

प्रश्न है मन को एकाग्र कैसे किया जाये ? मन दिखाई नहीं देता है। मन एक बेलगाम घोड़े की तरह भागता रहता है। मन की लगाम कहां है ? मन रूपी घोड़े की पूंछ पकड़ने से तो वह लात ही मारेगा। मन को बलात्/हठात् पकड़ने की कोशिश करेंगे तो वह और अधिक उग्र हो जायेगा। अतः मन को कैसे पकड़ें ? कैसे नियंत्रित करें?

अध्यात्म शास्त्र का सिद्धान्त है कि मन का श्वास के साथ सीधा संबंध है। ***''मन चंचल है तो श्वास भी चंचल होगा''***। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि हम श्वास की चंचलता को कम कर लें तो मन की चंचलता कम हो जायेगी। तात्पर्य यह है कि श्वास की गति को कम करना सीख लें तो मन की चंचलता नियन्त्रित हो जायेगी। श्वास की गति को कम कैसे करें ? श्वास की गति का अर्थ है एक मिनट में आने वाले श्वास की संख्या। यह संख्या प्रायः एक मिनट में 15 से 20 श्वास तक होती है। एक मिनट में श्वास की संख्या जो 18 है, उसको 6 पर लेकर आना है। तिगुना कम कर दें। ***इस संख्या को कम करने से श्वास की गति कम, चंचलता कम होगी। मन की चंचलता भी कम होगी। स्थिरता व एकाग्रता का विकास होगा।***

19.4.3 मानसिक एकाग्रता का उपाय : श्वास प्रेक्षा

इसका उपाय है – वैज्ञानिक ढंग से श्वास लेना, पूरा श्वास लेना। श्वास का अनुभव करने से, देखने से श्वास की गति कम होती है। संख्या कम होती है। ***श्वास प्रेक्षा का प्रयोग वैज्ञानिक ढंग से श्वास लेने का प्रयोग है। यह मन की एकाग्रता को बढ़ाने का सरल एवं सक्षम प्रयोग है।*** इस प्रयोग में साधक अपने चित्त को, जो क्रिया वर्तमान में चल रही है, उसी के ऊपर एकाग्र (Concentrate) होने का प्रशिक्षण प्रदान करता है। मानसिक एकाग्रता का तात्पर्य है वर्तमान में चलने वाली क्रिया पर ध्यान केन्द्रित करना। न अतीत की स्मृति, न भविष्य की कल्पना। जैसे प्रत्येक श्वास केवल वर्तमान की क्रिया है – न अतीत की स्मृति , न भविष्य की कल्पना है। साधक उसी को देखने में तन्मय हो जाता है, वैसे ही व्यावसायिक क्षेत्र में भी ***दूसरे अनेक कार्य को छोड़कर केवल वर्तमान के काम पर पूरा ध्यान देना और वैसा करने की आदत डालना यह मानसिक एकाग्रता का प्रशिक्षण है।***

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

19.4.3 श्वास प्रेक्षा एवं श्वसन तन्त्र

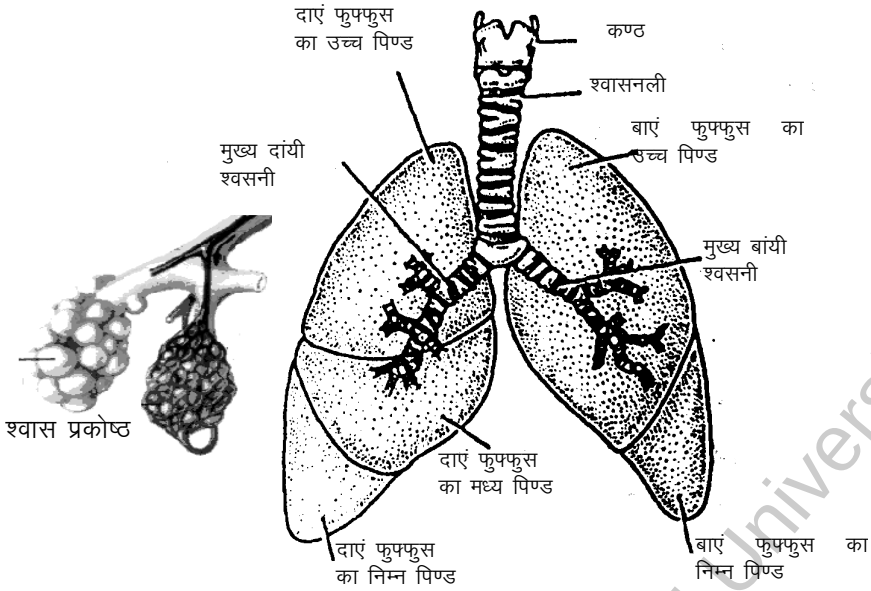

चित्र 19.1 श्वसन तन्त्र

श्वास प्रेक्षा को समझने के लिए श्वसन तन्त्र एवं उसकी कार्य–प्रणाली को समझना उपयोगी होगा। (देखें चित्र 19.1) हम श्वास लेते हैं, वह श्वास नाक से छनकर फेफड़ों में पहुंचता है। फेफड़ों में छोटे–छोटे श्वास प्रकोष्ठ (Alveoli) होते हैं। उनकी संख्या 30 करोड़ से 65 करोड़ तक होती है। प्रत्येक श्वास प्रकोष्ठ के चारों ओर रक्त नलिकाओं (केशिकाओं) का जाल होता है। इन केशिकाओं से कार्बन–डाई–ऑक्साइड नाक के माध्यम से शरीर के बाहर निकाल दी जाती है और ऑक्सीजन पूरे शरीर की ऊत्तक व कोशिकाओं (देखें चित्र संख्या 19.2) तक पहुंचाया जाता है, उससे शारीरिक ऊर्जा बनती है। हमारी शारीरिक ऊर्जा का एक आधार ऑक्सीजन है। इसका शरीर में अधिकतम उपयोग हमारे स्वास्थ्य की कुंजी है। हमारे फेफड़ों की फुफ्फुसीय प्राण क्षमता (Lung Vital Capacity) औसतन रूप में लगभग 6 लीटर जितनी है। किन्तु आम तौर पर इस क्षमता का पूरा उपयोग नहीं किया जाता। ***अधिकांश लोग केवल आधा से एक लीटर वायु का आदान–प्रदान कर पाते हैं। इससे हमारा श्वास छोटा, गति तेज एवं संख्या अधिक होती है।*** अधिकांश व्यक्ति छोटे–छोटे टुकड़ों में छिछला श्वास लेते हैं। आवेग की स्थिति में यह संख्या और अधिक बढ़ जाती है। उनकी श्वास संख्या लगभग 20, 25, 30, 35 एवं 40 प्रति मिनट हो जाती है। इससे श्वास प्रकोष्ठ में हवा मात्र 1 से 3 सेकेण्ड तक रह पाती है।

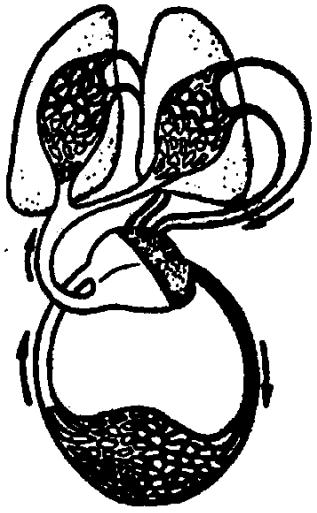

चित्र 19.2 उत्तकों में वायुओं का विनिमय

19.4.4 वैज्ञानिक दृष्टि से श्वास

वैज्ञानिक दृष्टि से सम्यक् श्वास वह है जिसमें –

(1) फेफड़ों की क्षमता का अधिकतम उपयोग हो।

(2) श्वास प्रकोष्ठ में हवा अधिकतम समय (10 से 12 सेकण्ड) तक रहे।

कोशिका के सुचारु रूप से संचालन तथा क्षमता वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन मिले। वैज्ञानिकों के अनुसार फेफड़ों में वायु का आदान–प्रदान भली भांति तभी हो सकता है जब हवा श्वास प्रकोष्ठ में 10 से 12 सेकण्ड

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तक रहे। इससे ऑक्सीजन और कार्बन–डाइ–ऑक्साइड का अधिकतम विनिमय होता है। अतः पूर्ण श्वास लेना बहुत जरूरी और महत्त्वपूर्ण है। फेफड़ों की क्षमता के अधिकमतम उपयोग के लिए उसे फैलने का पूरा अवकाश मिलना चाहिए। फेफड़े अपने आप में मांसपेशी रहित है। अतः श्वसन प्रक्रिया में आवश्यक यांत्रिक क्रिया में उनका सीधा योगदान नहीं मिलता अर्थात वह अपने आप फैल या सिकुड़ नहीं सकते। उसको फैलने के लिए पूरी जगह मिलनी चाहिए। यह जगह, अवकाश यांत्रिक बल तीन प्रकार से उपलब्ध हो सकता है– 1. तनुपट को ऊपर–नीचे खिसका कर, 2. अन्तर्पर्शुकीय मांसपेशियों के संकुचन–विस्तरण के द्वारा, 3. हंसली को ऊपर–नीचे खिसका कर।

श्वास को सही ढ़ंग से लेने की प्रक्रिया यह है कि हम तनुपट, पसली एवं हंसली की मांसपेशियों का पूरा उपयोग करें। यह तब संभव है जब हम श्वास को पूरा खाली करें। कार्बन–डाइ–ऑक्साइड को अधिकतम बाहर निकाल दें, फिर धीरे–धीरे श्वास लें। ***सम्यक् श्वास लेने का नियम यह है कि श्वास लेते समय पेट फूले एवं श्वास छोड़ते समय पेट भीतर जाए। इससे तनुपट को नीचे फैलने के लिए पूरा अवसर मिलेगा, पसली एवं हंसली की मांसपेशियों का भी पूरा उपयोग होगा।*** श्वास की संख्या कम होगी। मन की चंचलता और विचार भी कम होंगे। मानसिक एकाग्रता का विकास होगा।

बोध प्रश्न

1. मानसिक प्रशिक्षण का क्या अर्थ है ?
2. चंचलता और अधीरता पर नियंत्रण न करने से क्या हानि है ?
3. मन और श्वास में क्या संबंध है ?

19.5.0 एकाग्रता का अभ्यास

औद्योगिक, वाणिज्यिक और व्यापारिक क्षेत्र के बड़े–बड़े संस्थान अपने वरिष्ठ प्रबंधकों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए उनके प्रशिक्षण में प्रतिवर्ष लाखों रुपये खर्च करते हैं। प्रशिक्षण देने वाले संस्थान बहुधा सेमिनार के रूप में ये कार्यक्रम चलाते हैं। यह कार्य मात्र सैद्धान्तिक ही रह जाता है। वस्तुतः कार्यक्षमता के विकास का मूल मंत्र है मानसिक एकाग्रता का अभ्यास। प्रेक्षा प्रणेता आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने एकाग्रता के विकास के लिए एक सरल तरीका प्रेक्षाध्यान में बताया है। वह है– श्वास प्रेक्षा। बच्चे से वृद्ध तक आसानी से उसका अभ्यास कर सकते हैं। इससे अपनी कार्यक्षमता को बढ़ा सकते हैं। अपने व्यक्तित्व व जीवन को संतुलित बनाकर सफल व सन्तुष्ट जीवन की दिशा में प्रस्थान कर सकते हैं।

19.5.1 ज्ञान और अभ्यास

मानसिक प्रशिक्षण के लिए दूसरी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है – मानसिक एकाग्रता के उपाय का निरन्तर अभ्यास। हमें यदि अपनी ***कार्यक्षमता को बढ़ाना है तो मन को इतना शक्तिशाली बना दें कि वह जो भी काम करे उसमें पूर्ण रूप से लगा रहे।*** अन्य कोई चिन्तन, स्मृति अथवा कल्पना उसे विचलित न कर सके। जिस कार्य में मन लगा है आवश्यकतानुसार उस समय उसी की स्मृति, उसी का चिन्तन एवं उसी की कल्पना रहे। यह सब सम्भव है। एक ही बात की आवश्यकता है। वह है अभ्यास, अभ्यास और अभ्यास। यदि हम अभ्यास कर लेते हैं तो निश्चित रूप से वह क्षमता प्राप्त कर सकते हैं जिसकी आज हम सबको आवश्यकता है। ऐसा क्यों नहीं कर पा रहे हैं ? पहला कारण है कि हमें उसका ज्ञान नहीं है। दूसरा कारण है ज्ञान होने पर भी अभ्यास नहीं कर पा रहे हैं।

19.5.2 अभ्यास से असम्भव भी सम्भव

अभ्यास में वह शक्ति है कि असंभव दिखने वाले कार्य संभव हो जाते हैं। अभ्यास करते करते व्यक्ति एक साथ 30 कि.मी. दौड़ जाता है। पर यह सब एक दिन में नहीं हो सकता। निरन्तर अभ्यास करने से सम्भव हो जाता है। जैसे दौड़ने के लिए मांसपेशियों को प्रशिक्षित किया जा सकता है वैसे ही मन को भी प्रशिक्षित किया जा सकता है। जिस काम में वह नियोजित है उसी में रहे, इधर–उधर नहीं भटके। प्रश्न केवल अभ्यास करने का है। अभ्यास से प्रत्येक कार्य सम्भव हो जाता है। कोई भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्यक्ति एक ही बार में साइकल चलाना नहीं सीख सकता है। उसको बार बार अभ्यास करना पड़ता है। एक व्यक्ति तैरना सीखना चाहता है। वह एक ही दिन में तैरना नहीं सीख सकता। उसको बार–बार अभ्यास करना पड़ेगा। एक ही दिन में अच्छा गायक नहीं बन सकता। अनेक कार्य ऐसे है जो केवल अभ्यास से ही संभव होते हैं। यदि हम मन को सही अभ्यास दे दें तो मन भी एकाग्र रह सकता है। जैसे प्रशिक्षण के द्वारा स्मृति का विकास किया जा सकता है वैसे ही मानसिक एकाग्रता का भी विकास किया जा सकता है।

एक व्यक्ति ने संकल्प किया कि मुझे एक पूर्ण वयस्क सांड (वृषभ) को उठाना है। क्या कोई सांड़ को उठा सकता है? कितना बड़ा होता है। वजन भी कितना अधिक होता है अनेक बार वह आक्रामक भी हो जाता है। फिर आदमी सांड़ को कैसे उठा सकता है? लोगों ने उसे बहुत समझाया; बहुत कुछ कहा। फिर भी उसने कहा कि मुझे तो उठाना ही है। वह अपने गुरु के पास गया। और कहा–गुरूदेव! मैं एक चमत्कार करना चाहता हूं। मैं एक वयस्क सांड़ को उठाना चाहता हूं। क्या कोई उपाय है? गुरु बहुत ज्ञानी और अनुभवी थे। उन्होंने अनेकान्त की भाषा में कहा कि उपाय बहुत सरल है पर अभ्यास कठिन है। आज ही अपनी गौशाला में बछड़े का जन्म हुआ है, आज से ही उसे उठाने का अभ्यास प्रारम्भ कर दो। तब तक धैर्य से अभ्यास करते रहो जब तक वह बछड़ा वयस्क सांड न बन जाये। शिष्य ने गुरु को प्रणाम किया। धैर्य से निरन्तर अभ्यास में लग गया। एक दिन ऐसा आया कि उसने व्यस्क सांड को उठाकर सबको आश्चर्य चकित कर दिया। अभ्यास से असम्भव भी सम्भव बन गया।

19.5.3 अभ्यास और निरन्तरता

निरन्तरता में बहुत बड़ी शक्ति होती है। पानी की एक–एक बूंद गिरती रहे, निरन्तर गिरती रहे तो बड़े से बड़ा घड़ा भी भर जाता है। एक बूंद आज गिरी, एक बूंद कल, एक बूंद परसों गिरी तो सभी बूंदें सूख जायेगी, शेष कुछ भी नहीं रहेगा। ***अभ्यास यदि निरन्तर चलता रहे तो मन इतना प्रशिक्षित हो जायेगा कि जो भी काम करेंगे, मन उस समय उसी में लगा रहेगा।*** हम हमारे मन की 80 प्रतिशत क्षमता का उपयोग करने में सक्षम हो जायेंगे।

19.5.4 अभ्यास का संकल्प

कार्यक्षमता के विकास के लिए प्रयोग के अभ्यास की बात समझ में आती है, पर इसमें मूल समस्या क्या है ? मूल समस्या मन की ही है। वह आपको अभ्यास करने ही नहीं देगा। अभ्यास के प्रतिरोध में वह आकांक्षाएं, आलस्य और दुश्चिन्ताओं को उत्पन्न कर देगा। वह आपको विचलित करने का प्रयास करेगा। यदि आपका संकल्प बल दृढ़ है तो फिर उसका दबाव भी निष्फल हो जायेगा। अतः आप ***संकल्प करें कि मैं छः महीने तक प्रतिदिन पांच मिनट लयबद्ध श्वास का अभ्यास करूंगा।*** यदि आपने छः महीने तक पांच मिनट के लिए मन को प्रशिक्षित कर दिया तो इसकी एक अच्छी आदत बन जायेगी। मन को जिस काम में भी लगायेंगे वह उसी कार्य में एकाग्र हो जायेगा। मन शान्त मिलेगा। ***संकल्प और अभ्यास से हमारा सम्पर्क अवचेतन मन से हो जाता है। विचार और आचार संस्कार का रूप ले लेते हैं।*** फिर उसको करने के लिए अधिक प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। वह कार्य स्वतः और सहज हो जाता है।

बोध प्रश्न

---

1. ''अभ्यास से सब संभव है।'' पर प्रकाश डालें।
2. अभ्यास में कौन–कौन सी बाधाएं आती हैं? उन्हें कैसे दूर करें।

19.6.0 प्रयोग–प्रविधि

19.6.1 दीर्घ श्वास प्रेक्षा

इसको हम एक मिनट तक की श्वास की गणना करके समझ सकते हैं। (1) सर्वप्रथम एक मिनट के लिए सामान्य श्वास की गणना करें। (लेने और छोड़ने को एक मानें) (2) इसके पश्चात् धीरे–धीरे श्वास छोंड़े एवं धीरे–धीरे श्वास लें। इससे आपकी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

श्वास की संख्या आधे से कम हो जाएगी। मानसिक एकाग्रता की अनुभूति होगी। (3) तीसरी बार ध्यान नाभि पर रखें। धीरे–धीरे पूरा पेट भीतर ले जाएं, धीरे–धीरे श्वास निकालें। धीरे–धीरे पूरा पेट फुलाएं। धीरे–धीरे श्वास भरें। एक मिनट तक प्रयोग करे। इस प्रयोग में श्वास की संख्या पहले से कम होगी। मानसिक एकाग्रता बढ़ेगी।

धीरे–धीरे श्वास छोड़ना एवं धीरे–धीरे लेना–यही दीर्घ–श्वास है। श्वास को लगातार देखने से, अनुभव करने से श्वास की गति और अधिक मन्द हो जाती है। मानसिक एकाग्रता में अभूतपूर्व वृद्धि होती है। यह श्वास को लेने की वैज्ञानिक प्रक्रिया है। मानसिक एकाग्रता का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

19.6.2 लयबद्ध श्वास प्रेक्षा

कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए एकाग्रता की भी आदत बनानी होगी। इसको बनाने के लिए एक मिनट में छः श्वास छोड़ने एवं लेने का अभ्यास करना होगा। घड़ी देखकर पांच सैकण्ड में श्वास छोड़ना एवं श्वास लेने का अभ्यास करें। एकाग्रता को परखने के लिए उसी दौरान यह भी देखें कि अन्य विचार कितने आये? उनकी गिनती भी रखें। इस प्रकार पांच मिनट तक अभ्यास करें। यह अभ्यास दिन में तीन बार करें। तीन बार न हो सके तो कम–से–कम दो बार अवश्य करें। अभ्यास क्रम निरन्तर छः महीने तक चले।

इस अभ्यास क्रम से लयबद्ध दीर्घश्वास की आदत बन जाएगी। मस्तिष्क में श्वसन–केन्द्र के द्वारा श्वास की गति का नियमन होता है। वहां पर एकाग्रता के लिए छः श्वास की प्रोग्रामिंग रिकार्ड हो जायेगी। इसका परिणाम यह होगा कि जब भी एकाग्रता की जरूरत होगी, श्वास की संख्या छः श्वास प्रति मिनट हो जायेगी। इससे मन एकाग्र हो जायेगा। एकाग्रता से पुनः श्वास की संख्या छः पर बनी रह सकेगी। यह एक एकाग्रता का चक्र बन जायेगा। ***छः श्वास प्रति मिनट से एकाग्रता की पुष्टि और एकाग्रता से पुनः छः श्वास की पुष्टि।*** छः श्वास रूपी दीर्घश्वास के अभ्यास से हमारे मस्तिष्क व स्नायुओं को अधिक ऑक्सीजन पहुंचती है। इससे वे लम्बे समय तक बिना थके अपने कार्य में नियोजित रहते हैं। अपनी कार्यक्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि करते हैं। अतः अभ्यास के साथ – साथ प्रस्तुत तालिका 19.1 जैसी तालिका बनावें, उसमें सामान्य श्वास, दीर्घश्वास व लयबद्ध श्वास में विचारों की संख्या लिखते रहें। इससे आप स्वयं परिणामों को देख भी सकेंगे। एकाग्रता में वृद्धि व अनावश्यक विचारों में कमी का साक्षात् अनुभव करेंगे।

तालिका 19.1

क्र.सं.	दिनांक	श्वास संख्या / मिनट		विचार संख्या / मिनट	
		सामान्य श्वास	दीर्घश्वास	सामान्य श्वास	लयबद्ध श्वास
1.					
2.					
3.					
4.					
5.					
6.					
7.					

बोध प्रश्न

1. दीर्घ श्वास प्रेक्षा से आप क्या समझते हैं ?
2. लयबद्ध श्वास प्रेक्षा का क्या अर्थ है ?

19.7.0 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- बढ़ती हुई तकनीक, अत्याधुनिकता, पैसे कमाने की लालसा के इस युग में जिस चीज पर सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ा है वह है मनुष्य की कार्यक्षमता। पहले कार्य की अधिकता नहीं थी। मनुष्य अपना कार्य दक्षतापूर्ण सही समय पर सम्पन्न कर लेता था। आज की स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है। कार्य का दबाव व्यक्ति पर निरन्तर बढ़ता जा रहा है लेकिन कार्यक्षमता नहीं बढ़ रही है। इससे कार्य समय पर पूर्ण नहीं होता और उसमें असंतोष (असंतुलन) की स्थिति पैदा हो रही है। इस असंतुलन को मिटाने के लिए कार्यक्षमता का विकास अत्यन्त आवश्यक है।

- व्यक्ति की कार्यक्षमता मुख्य रूप से दो बातों पर निर्भर है : – 1. संबंधित क्षेत्र का नवीनतम ज्ञान और एकाग्रता। व्यक्ति जिस क्षेत्र में कार्य कर रहा है यदि उसे उसका नवीनतम ज्ञान है तो वह कार्य को अच्छी तरह से संचालित कर सकता है, ज्ञान के अभाव में यह संभव नहीं है। इसी प्रकार किसी भी कार्यक्षमता का मूलभूत आधार मानसिक एकाग्रता है। इसी एकाग्रता के आधार से ही व्यक्ति किसी भी कार्य की कार्य प्रणाली का बोध एवं क्रियान्वयन सुगमता से कर लेता है। जहाँ एकाग्रता में कमी आती है, वहां पर ज्ञान व क्षमता होने पर भी कार्य कुशलता पूर्वक सम्पन्न नहीं हो पाता है। जो कार्य कर रहे हैं, उसमें पूरी मानसिक शक्ति लगे अतः आवश्यक है कि हम मन को प्रशिक्षित करें।

- मानसिक प्रशिक्षण का अर्थ है कि हम जिस कार्य को कर रहे हैं मन उसी कार्य में लगा रहे। अन्य बातें उस समय दिमाग में नहीं आये। यह दो बातों पर निर्भर है – 1. मानसिक एकाग्रता के उपाय का ज्ञान एवं 2. उसका निरन्तर अभ्यास।

- मानसिक एकाग्रता व्यक्ति की कार्यक्षमता में विकास के लिए एक अत्यन्त उपयोगी पहलू है। अध्यात्म शास्त्र का सिद्धान्त है कि मन का श्वास के साथ सीधा संबंध है ''मन चंचल है तो श्वास भी चंचल होगा।'' इस सिद्धान्त के अनुसार यदि हम श्वास की चंचलता को कम कर लें तो मन की चंचलता कम हो जायेगी। मानसिक एकाग्रता का तात्पर्य ही है कि वर्तमान में चलने वाली क्रिया पर ध्यान केन्द्रित करना, न अतीत की स्मृति और न भविष्य की कल्पना। यदि हम मन को एकाग्र करना सीख लें तो हम अपनी कार्यक्षमता का विकास सही ढंग से कर सकते हैं। इसके लिए श्वास प्रेक्षा का अभ्यास एक महत्त्पूर्ण उपाय है। इसकी दो विधियां हैं – 1. दीर्घ श्वास प्रेक्षा एवं 2. लयबद्ध श्वास प्रेक्षा।

19.8.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. मन की 80 प्रतिशत क्षमता का उपयोग कैसे संभव है ?
2. हमारे फेफड़ों की फुफ्फुसीय वायु क्षमता कितनी है ?
3. वैज्ञानिक दृष्टि से सम्यक् श्वास की क्या विशेषता है ?
4. फेफड़ों में श्वास प्रकोष्ठ की संख्या कितनी है ?
5. एक व्यक्ति एक मिनट में कितने श्वास लेता है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. श्वास प्रेक्षा का वैज्ञानिक आधार समझाते हुए कार्यक्षमता की वृद्धि में उसकी उपयोगिता को बताएं ?
2. कार्यक्षमता के विकास में एकाग्रता की भूमिका क्या है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. मनुष्य की कार्यक्षमता के आधार क्या हैं ? इनका विकास किस प्रकार कर सकते हैं ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 5 सक्षम व्यक्तित्व का विकास
पाठ – 20 अभिव्यक्ति कौशल का विकास

रूपरेखा

20.0.0 उद्देश्य
20.1.0 भूमिका
20.2.0 अभिव्यक्ति कौशल
20.2.2 अभिव्यक्ति कौशल का महत्त्व
20.2.2 अभिव्यक्ति का स्वरूप
20.3.0 अभिव्यक्ति के कारक तत्त्व
20.3.1 सौहार्दपूर्ण व सहयोगात्मक सम्बन्ध
20.3.2 आत्म–विश्वास
20.3.3 स्पष्टता
20.3.4 ग्रहण क्षमता
20.3.5 संवेग–नियंत्रण
20.3.6 सीखने की इच्छा
20.3.7 प्रामाणिकता
20.4.0 अभिव्यक्ति की दक्षताएं
20.4.1 निर्देशात्मक अभिव्यक्ति
20.4.2 सूचनात्मक अभिव्यक्ति
20.4.3 चुनौतीपूर्ण अभिव्यक्ति
20.4.4 विरेचनात्मक अभिव्यक्ति
20.4.5 प्रेरणात्मक अभिव्यक्ति
20.4.6 सहयोगात्मक सम्प्रेषण
20.5.0 सार्वजनिक भाषणकला
20.5.1 वक्तव्य की तैयारी
20.5.2 श्रोता की पहचान
20.5.3 सामग्री का संगठन
20.5.4 रोचकता
20.5.5 प्रस्तुति
20.5.6 अच्छी अभिव्यक्ति के बिन्दु
20.5.7 अच्छी अभिव्यक्ति : निषिद्ध बिन्दु
20.6.0 शारीरिक स्थिति और हावभाव
20.6.1 मुद्रा
20.6.2 अभिवादन
20.6.3 हाथ
20.6.4 दृष्टि सम्पर्क
20.6.5 पोशाक
20.6.6 आवाज पर नियंत्रण
20.6.7 बल देने का महत्त्व
20.6.8 भाषण की तैयार के महत्त्वपूर्ण मुद्दे
20.7.0 सारांश
20.8.0 अभ्यास प्रश्न

20.0.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों !

सक्षम व्यक्तित्व के विकास के तीन महत्त्वपूर्ण पहलू हैं – 1. स्वयं की क्षमताओं का विकास करना, 2. स्वयं की क्षमताओं का अधिकतम उपयोग करना, 3 दूसरों की क्षमताओं का भी उपयोग करना। दूसरों की क्षमताओं का उपयोग वही व्यक्ति सफलता से कर सकता है जिसकी अभिव्यक्ति क्षमता अच्छी हो। अभिव्यक्ति कौशल के माध्यम से व्यक्ति अपने आपको अच्छे ढंग से प्रस्तुत कर सकता है। इससे वह प्रत्येक कार्य में लोगों का सहयोग प्राप्त कर सकता है। इसलिये आवश्यक है कि हमें अपने को व्यक्त करने की कला भी आनी चाहिए अन्यथा कार्यक्षेत्र में हम अकेले पड़ जावेंगे एवं अनेक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बार अनेक विरोधियों को जन्म दे देंगे। अतः सक्षम व्यक्तित्व विकास हेतु आवश्यक है कि हम अभिव्यक्ति कौशल का विकास करें। इस पाठ से आप जान पाएंगे –

1. अभिव्यक्ति कौशल का महत्त्व
2. अभिव्यक्ति का स्वरूप
3. अभिव्यक्ति के कारक तत्त्व
4. अभिव्यक्ति की विभिन्न दक्षताएं
5. सार्वजनिक भाषणकला की तैयारी व शारीरिक स्थिति

20.1.0 भूमिका

आज के समय में अभिव्यक्ति की जितनी उपयोगिता है शायद भोजन की भी उतनी नहीं होगी क्योंकि बिना अभिव्यक्ति भोजन मिलना भी मुश्किल है। हम दैनिक जीवन में नित्य देखते हैं कि एक छोटे से फैरी वाले से लेकर एक मल्टीनेशनल कम्पनी के चेयरमेन तक सभी अपनी अभिव्यक्ति कौशल में माहिर होते हैं। अभिव्यक्ति कौशल से 1 पैसे की चीज को 1 रुपये में और 1 रुपये की चीज को 10 रुपये में बेच देते हैं और जीवन यापन के लिए अच्छा लाभ कमा लेते हैं।

अभिव्यक्ति कौशल सफलता की कुंजी है। व्यक्ति अपने कार्यक्षेत्र में सफलता का वरण करना चाहता है, उसके लिए औरों के साथ मधुर संबंध एवं मीठी बोली बहुत ही सहयोगी साबित होगी। मृदु भाषी सर्वप्रिय होता है। प्रताप नारायण मिश्र की बात, ''बात ही हाथी पाइये, बात ही हाथी लात'' सर्व सिद्ध है। मीठी वाणी के बल पर हम बहुत कुछ हासिल कर सकते हैं वहीं कड़वी बोली अपने मित्र को भी दुश्मन बना देती है।

कब बोलें ? क्या बोलें और कैसे बोलें ? यह विवेक मनुष्य के व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देता है। बहुत से लोग बहुत ज्ञानी होते हैं लेकिन उनकी वाणी व्यंग्यों से भरी होती है। कहा जाता है कि गोली का घाव भर जाता है परन्तु बोली का घाव नहीं भर पाता। महाभारत काल में द्रौपदी द्वारा कही गई बात 'अंधे का पुत्र अंधा ही होता है।' महाभारत जैसे विनाशकारी युद्ध का कारण बनी। अनेक ऐतिहासिक घटनाएं अभिव्यक्ति की महत्ता को दर्शाती है।

अभिव्यक्ति कौशल एक कला है जिसे अन्य कला की तरह सीखने की आवश्यकता होती है। इसलिये व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने के लिए अभिव्यक्ति कौशल में दक्षता होनी चाहिए।

20.2.0 अभिव्यक्ति कौशल

अभिव्यक्ति कौशल से व्यक्ति अपने आपको अच्छे ढंग से प्रस्तुत कर सकता है। इससे अनेक व्यक्ति उसके सहयोगी व मित्र बन जाते हैं। संगठन या संस्थान की संप्रेषण प्रणाली को समझकर कार्य करने से वहां वह अपनी सेवा सफलता से दे सकता है। अन्ततः वह अपने कार्यक्षेत्र में सफलता को प्राप्त करता है। कमजोर अभिव्यक्ति के दुष्परिणाम भी कष्टदायक होते हैं। इससे व्यक्ति अकेला पड़ जाता है। असमंजस की स्थिति में रहता है। निराश और उदास रहने लगता है। अपने आपको उपेक्षित अनुभव करने लगता है। उसके लिए सामान्य सम्बन्धों में मधुरता एवं सुदृढ़ता को बनाये रखना कठिन होता है। अतः जीवन में सफलता के लिए यह भी अनिवार्य है कि व्यक्ति संप्रेषण के स्वरूप को समझे और स्वयं में संप्रेषण दक्षता को विकसित करे।

अभिव्यक्ति कौशल के विकास का एक महत्त्पूर्ण सूत्र है–अनेकान्त। अनेकान्त सिद्धान्त का आधार भगवान् महावीर का यह सूत्र है–**'किं च नए के यं पुरिसे'** (आचारांग) अर्थात् ***वक्ता तभी सफल हो सकता है जब वह बोलते समय यह ध्यान रखे कि सामने सुनने वाला व्यक्ति कौन है ? उसका दृष्टिकोण क्या है ? मैं किस दृष्टिकोण से बात कह रहा हूं ?*** सर्वांगीण व्यक्तित्व के विकास के लिए अनेकान्त का व्यवहार में उपयोग किया जाये। सही परिप्रेक्ष्य में सही बात कहना व सामने वाले

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

को सही संदर्भ में ग्रहण करना सर्वतोमुखी विकास के लिए आवश्यक है। प्रायः व्यक्ति अपनी बात को अनेक माध्यमों से अभिव्यक्त करता है किंतु उसमें सबसे कठिन है आमने–सामने अपनी बात को प्रभावी ढंग से रखना। ***सामान्यतया व्यक्ति अपनी बात को कहते समय यह भूल जाता है कि कहने वाला एवं सुनने वाला एक व्यक्ति नहीं किंतु दो अलग–अलग व्यक्ति हैं। दोनों की रुचियां, प्रयोजन, लक्ष्य, आवश्यकताएं एवं दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न हैं।*** प्रशिक्षक को भी बोलते समय इन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

20.2.1 अभिव्यक्ति कौशल का महत्त्व

अभिव्यक्ति कौशल सफलता की कुंजी है। व्यक्ति अपने कार्यक्षेत्र में सफलता एवं पारस्परिक सम्बन्धों में मधुरता इसी अभिव्यक्ति कौशल से अर्जित करता है। दूसरों पर अपने अनुभवों एवं विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति इसी अभिव्यक्ति की क्षमता से की जाती है। दूसरों के अनुभवों एवं विचारों से भी व्यक्ति तभी लाभान्वित हो सकता है जब सामने वाले व्यक्ति की अभिव्यक्ति स्पष्ट हो।

यदि कोई व्यक्ति अपने भावों एवं विचारों को प्रभावशाली ढंग से लोगों के सामने प्रस्तुत करना चाहे तो उसे अभिव्यक्ति कौशल की दक्षता को विकसित करना होगा। ***अभिव्यक्ति एवं अभिव्यक्ति कौशल में वही अन्तर है जो जीने एवं कलापूर्ण जीवन जीने में है।*** संसार का प्रत्येक व्यक्ति जीवन जीता है किंतु सार्थक एवं कलापूर्ण जीवन कितने व्यक्ति जीते हैं। इसी प्रकार संसार का प्रत्येक व्यक्ति अभिव्यक्ति करता है किन्तु सार्थक व सोद्देश्यपूर्ण अभिव्यक्ति कितने लोग करते हैं ? ***सार्थक व सशक्त अभिव्यक्ति करना अपने आप में कला है, इसे भी अन्य कलाओं की तरह सलक्ष्य प्रयत्नपूर्वक सीखना होता है।*** जीवन में पारस्परिक सौहार्द के विकास के लिए भी सशक्त अभिव्यक्ति कौशल का विकास आवश्यक है।

20.2.2 अभिव्यक्ति का स्वरूप

अच्छी अभिव्यक्ति के लक्षणों को अच्छे वक्ताओं एवं प्रशिक्षकों की अभिव्यक्ति में देखा जा सकता है–

- ✡ वे जानते हैं कि उन्हें क्या कहना है?
- ✡ वे श्रोताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम होते हैं।
- ✡ वे श्रोताओं से तादात्म्य बनाने और बनाये रखने में कुशल होते हैं।
- ✡ वे श्रोताओं की पसन्द और रुचि को जानते हैं।
- ✡ वे अपने वक्तव्य और विषय–वस्तु का सावधानी से चुनाव करते हैं।
- ✡ वे अभिव्यक्ति कौशल में दक्ष होते हैं।
- ✡ वे कब और कहां क्या कहना है, इस बात का भी सावधानी से चुनाव करते हैं।
- ✡ वे अपनी अभिव्यक्ति को स्पष्ट, संक्षिप्त व समयानुकुल बनाये रखते हैं।
- ✡ वे वक्ता के साथ–साथ अच्छे श्रोता भी होते हैं।
- ✡ वे दूसरों के विचारों को समझने की क्षमता रखते हैं एवं आवश्यकता पड़ने पर उसे स्पष्ट भी कर सकते हैं।
- ✡ वे अपनी एकाग्रता को बनाये रखते हैं।
- ✡ वे अभिव्यक्ति को प्रारंभ करना व समाप्त करना भी जानते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दूसरी ओर एक ***कमजोर वक्ता यह नहीं जानता है कि उसे क्या कहना है? किसे कहना है? श्रोता की आवश्यकता व रुचि क्या है? किस समय और कहां क्या बात कहनी चाहिए?*** वे श्रोताओं की प्रतिक्रियाओं के प्रति बेखबर रहते हैं। उन्हें पता ही नहीं चलता या ध्यान ही नहीं देते हैं कि श्रोता क्या चाहते हैं?

बोध प्रश्न :

1. अभिव्यक्ति कौशल का महत्वपूर्ण सूत्र क्या है?
2. अभिव्यक्ति का स्वरूप क्या है?

20.3.0 अभिव्यक्ति के कारक तत्त्व

अनेक तत्त्व हैं जो संप्रेषण या अभिव्यक्ति को प्रभावित करते हैं। जैसे–सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध, आत्म–विश्वास, स्पष्टता, ग्रहण करने की क्षमता, भावनात्मक नियंत्रण, सीखने की इच्छा एवं सहयोग की इच्छा।

20.3.1 सौहार्दपूर्ण व सहयोगात्मक सम्बन्ध

निर्भीक व स्पष्ट अभिव्यक्ति में ये तत्त्व सहायक होते हैं। इन सम्बन्धों का पता वातावरण से लग जाता है। यदि वातावरण में उत्तेजना व खींचातानी हो या एकदम उदासीनता या नीरसता हो तो वहां व्यक्ति की अभिव्यक्ति अच्छी नहीं हो सकती। वहीं वातावरण सहयोगात्मक हो तो वहां अभिव्यक्ति के अच्छे होने की संभावना बढ़ जाती है।

सौहार्दपूर्ण सहयोगात्मक सम्बन्ध एवं वातावरण तब पैदा होता है जब व्यक्ति–

1. परस्पर प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्त करने व सुनने में तत्पर रहें।
2. एक दूसरे को महत्त्व देते हों।
3. एक–दूसरे की रुचि और आवश्यकताओं का सम्मान करते हों।
4. एक–दूसरे के बारे में खुले दिल से बेझिझक विचार–विमर्श करने के लिए इच्छुक हों।
5. एक–दूसरे में विश्वास हो कि समय आने पर एक दूसरे की सहायता करेंगे।
6. सभी एक दूसरे की स्वतंत्रता का, निर्णय शक्ति का सम्मान करते हों।
7. सभी यह भी स्वीकार करते हों एवं जानते हों कि उनकी सभी बातें सभी के द्वारा स्वीकार्य ही हों, यह आवश्यक नहीं है।

सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों के सूत्र – सौहार्दपूर्ण एवं सहयोगात्मक सम्बन्धों के विकास के लिए निम्नलिखित सूत्र सहायक हो सकते हैं–

1. **अनेकान्त दृष्टिकोण–**दूसरों के दृष्टिकोण से उसकी बात को सुनने व समझने का प्रयास करना।
2. **अहिंसा की भावना**– दूसरों की भावना, विचार, सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं अस्तित्व को जैसा है, वैसा स्वीकार करना, उसका सम्मान करना। उनकी कमियों को सहन करना।
3. **कथनी–करनी में एकरूपता–**व्यक्ति परस्पर जो कहे वैसा आचरण भी करे। छलनापूर्ण व्यवहार न करे।

जिस समुदाय में अधिकांश व्यक्तियों का दृष्टिकोण, भाव एवं विचारधारा उपरोक्त गुणों से युक्त होता है वहां संवाद व अभिव्यक्ति की सुदृढ़ता उभर कर आती है अन्यथा रिश्तों में मधुरता व सहृदयता नहीं रह पाती है। ***संवादहीनता में अभिव्यक्ति***

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की झिझक व भय को पनपने का मौका मिलता है। यह भी उतना ही सही है कि अभिव्यक्ति की दक्षता के बिना अच्छे सम्बन्ध टिक नहीं सकते और अच्छे सम्बन्धों के बिना अच्छी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

20.3.2 आत्म विश्वास

अभिव्यक्ति को प्रभावित करने वाले कारक तत्त्वों में एक प्रमुख तत्त्व है– आत्म–विश्वास। ***हम स्वयं को एवं स्वयं के विचारों को कितना महत्त्वपूर्ण मानते हैं इसका अभिव्यक्ति क्षमता पर गहरा प्रभाव पड़ता है।*** यदि हम स्वयं को एवं स्वयं के विचारों को जो कहना चाहते हैं उसको, महत्त्वपूर्ण एवं मूल्यवान नहीं समझते हैं तो उस बात की अभिव्यक्ति प्रभावी नहीं हो सकती।

जो व्यक्ति स्वयं के महत्त्व एवं उपयोगिता को जानता है उसमें आत्म–विश्वास व आत्म–संतोष का भाव रहता है। वह अपने को सुरक्षित अनुभव करता है। ऐसा व्यक्ति सकारात्मक और निषेधात्मक भावों को निर्भीकता से अभिव्यक्त कर सकता है। आलोचनाओं का आसानी से सामना कर सकता है। जो व्यक्ति स्वयं की उपयोगिता और महत्त्व का सही अंकन नहीं कर सकता उसका आत्म–विश्वास कमजोर होता है। वह हीन भावना से ग्रसित रहता है। अपने आपमें असंतोष का अनुभव करता है। ऐसा व्यक्ति अनुभव करता है कि लोगों की उसमें रुचि नहीं है। अतः वह उनसे वार्तालाप करने से कतराता है। आलोचना और समीक्षा से भी घबराता है।

20.3.3 स्पष्टता

इसका तात्पर्य है कि हम क्या कहना चाहते हैं एवं कैसे कहना चाहते हैं? एक अच्छा संप्रेषक या वक्ता वातावरण को भांपने की क्षमता रखता है एवं वह अपने आपमें भी स्पष्ट रहता है कि किससे क्या कहना है? ***जिन व्यक्तियों में अभिव्यक्ति कौशल का विकास नहीं होता वे अधिकांशतः अपने आप में स्पष्ट नहीं होते कि उन्हें कहना क्या है? वे क्या कहना चाहते हैं? उन्हें इस बात का अहसास नहीं है कि बात को कैसे कहना चाहिए?*** वे अपनी बात को स्पष्ट शब्द व भाषा का रूप नहीं दे पाते हैं। अतः उनकी बात में, उनका मन्तव्य स्पष्टता से अभिव्यक्त नहीं हो पाता है। वे अनेक बार यह मानकर भी चलते हैं कि सामने वाला व्यक्ति उनकी बात को समझता है क्योंकि वह स्वयं भी दूसरों की बात समझता है तो दूसरों को भी उसकी बात अवश्य समझ में आती होगी। इस प्रकार एक कमजोर अभिव्यक्ति दूसरों को अपने ढंग से अर्थ निकालने व समझने के लिए मजबूर करती है जिससे संवादहीनता व आपसी समझ की दूरी बढ़ती चली जाती है।

20.3.4 ग्रहण क्षमता

अच्छे वक्ता की ग्रहण क्षमता भी अच्छी होनी चाहिए। उसे अच्छे वक्ता के साथ अच्छा श्रोता भी होना चाहिए। ***अच्छे श्रोता का अर्थ केवल सुनना नहीं है, उसके भी आगे, सामने वाले व्यक्ति के दृष्टिकोण व भावों को पकड़कर समझने से है।*** दुर्भाग्य से अधिकांश व्यक्ति केवल सुनते हैं, कुछेक लोग ही गहराई तक जाकर चिंतन–मनन पूर्वक दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करते हैं। अधिकांश मौखिक अभिव्यक्ति को नजर अंदाज एवं उपेक्षित कर दिया जाता है या जल्दी ही उसे भुला दिया जाता है। प्रभावी ग्रहण क्षमता स्वतः नहीं होती है, उसके लिए–

- ✡ श्रोता के सामने सुनने का भी एक निश्चित प्रयोजन होना चाहिए।
- ✡ श्रोता को एकाग्रता से वक्ता की बात को सुनना चाहिए।
- ✡ उसे मौन रहना चाहिए, नहीं समझ में आता है वहां पूछना भी चाहिए।
- ✡ दूसरे व्यक्तियों को बोलने का अवसर देना चाहिए।
- ✡ अनावश्यक टीका–टिप्पणी से बचना चाहिए।
- ✡ वक्ता की बात को सुनकर दोहराने की क्षमता होनी चाहिए।
- ✡ उसे अपने शब्दों में रखने की क्षमता होनी चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

✡ श्रोता को वक्ता के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करना चाहिए।

20.3.5 संवेग नियंत्रण

मनुष्य अपने जीवन में निरंतर भावों और संवेगों में उतार–चढ़ाव का अनुभव करता रहता है। क्रोध जैसे संवेगों के नियंत्रण में आम व्यक्ति कठिनाई का अनुभव करते हैं। क्रोध या आवेशवश व्यक्ति को अपनी वाणी पर नियंत्रण करने में बहुत कठिनाई होती है। इससे व्यक्ति सही ढंग से अपने आपको अभिव्यक्त नहीं कर पाता है।

अधिकांश व्यक्ति अपने भावों को दबा देते हैं। अतः वे यह नहीं जानते कि उनमें किन भावों की प्रधानता है। वे यह भी नहीं जान पाते हैं कि भावों को परिष्कृत कैसे किया जाए? उन्हें कैसे रूपान्तरित किया जाए ?

संवेगों का रूपान्तरण एवं परिष्कार सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध एवं सशक्त अभिव्यक्ति के लिए बहुत आवश्यक है। संवेगों की अभिव्यक्ति इस ढंग से की जानी चाहिए कि उनका रूपान्तरण हो और वह स्वयं के एवं दूसरों के विकास में उपयोगी हो जाये। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए–

1. अपने संवेगों के प्रति जागरूक बनें। उनकी सही पहचान करें।
2. ध्यानावस्था में बैठकर कुछ समय तक द्रष्टा भाव से सम्बन्धित चैतन्य केन्द्र व लेश्याओं का ध्यान करें।
3. संवेगों को नकारें नहीं, उन्हें स्वीकार करें, यह भी आपके व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।
4. अपने संवेगों के परिष्कार के लिए गुरुजनों से मार्गदर्शन प्राप्त करें। संवेग–परिष्कार के बिना अच्छी अभिव्यक्ति क्षमता का विकास नहीं हो सकता।
5. अपनी भावना, संकल्प व इच्छा में संतुलन बनायें।

20.3.6 सीखने की इच्छा

जब हम किसी के साथ संवाद स्थापित करते हैं या समूह में भाषण देते हैं तो दो तरफ से प्रतिक्रियाएं प्राप्त होती हैं। एक तरफ बाह्य व्यक्तियों द्वारा एवं दूसरी तरफ अपने ही भीतर से। अच्छे वक्ता इन दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाओं से अपने भाषण, संवाद, उसके प्रभाव, श्रोता की आवश्यकता और स्वयं के बारे में सीखते रहते हैं। इसके अतिरिक्त अच्छे वक्ता दूसरे वक्ताओं को ध्यान से सुनते हैं, उनकी शैली व विशेषताओं को समझने का प्रयास करते हैं एवं उनसे ग्रहण करने के लिए तत्पर रहते हैं।

वक्तृत्व की अनुभूति वस्तुतः निरन्तर सीखने की अनुभूति है जो शनैः शनैः समृद्ध होती जाती है। अच्छे वक्ता अपनी कमियों से सीखते रहते हैं, नये–नये प्रयोग करते रहते हैं। अपनी शैली में परिष्कार करते रहते हैं। एक कमजोर वक्ता जो सीखने से घबराता है वह अनेक मूल्यवान तथ्यों से वंचित रहता है। इससे वह अपनी अभिव्यक्ति क्षमता, स्वयं की समझ व दूसरों के साथ मधुर सम्बन्धों को विकसित करने में सफल नहीं हो पाता है।

20.3.7 प्रामाणिकता

प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने आपको पूर्ण प्रामाणिकता व सरलता से प्रस्तुत करे। प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न अनुभवों, संवेदनाओं, विचारों व संवेगों से समृद्ध होता है। ***दूसरे व्यक्ति भी अपने विचारों से अवगत हों अतः यह आवश्यक है कि सही समय पर अपने अनुभवों को बांटने एवं दूसरों को सहयोग देने की इच्छा होनी चाहिए।*** जितना अधिक एक–दूसरे के बारे में जानेंगे उनके बीच उतना ही अधिक अच्छा संवाद स्थापित होगा।

अपने आपको अभिव्यक्त करने में अनेक बाधाएं हैं। अधिकांश व्यक्तियों में यह आशंका और भय रहता है कि दूसरा व्यक्ति मेरी बातों को सही अर्थों में लेगा कि नहीं? कहीं वह मेरा मखौल तो नहीं उड़ाएगा? ***अच्छे संवाद व अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक***

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है कि आशंका व भय के स्थान पर परस्पर विश्वास का वातावरण पैदा किया जाये। इससे प्रत्येक व्यक्ति अपने भावों, विचारों व संवेदनाओं को पूर्ण ईमानदारी व सरलता से प्रस्तुत कर सकेगा। उसकी अभिव्यक्ति सशक्त व प्रभावशाली बन सकेगी।

स्पष्ट है कि संप्रेषण या अभिव्यक्ति में स्पष्टता, संक्षिप्तता, पूर्णता, परिपक्वता, शालीनता, सहयोग, निरन्तरता, परिवर्तनशीलता, सद्विश्वास, अच्छे संबंध आदि तत्त्व होने चाहिए। इससे विचारों, भावनाओं एवं समझ का आदान–प्रदान दो व्यक्तियों अथवा दो पक्षों के बीच सम्यक् रूप से होता है।

बोध प्रश्न :

1. अभिव्यक्ति कौशल में संवेग नियन्त्रण क्यों आवश्यक है ?
2. अभिव्यक्ति कौशल में प्रामाणिक विषय पर एक परिच्छेद लिखिये।

20.4.0 अभिव्यक्ति की दक्षताएं

अभिव्यक्ति करते समय व्यक्ति के सामने एक स्पष्ट उद्देश्य होना चाहिए। उसके साथ अनेक छोटे–छोटे लक्ष्य भी हो सकते हैं। वक्ता द्वारा उन लक्ष्यों को अभिव्यक्ति काल में प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। विशेष उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अलग–अलग प्रकार की अभिव्यक्ति दक्षताओं का उपयोग करना होता है। ***अतः अच्छे वक्ता में उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार की दक्षताओं का विकास आवश्यक है।***

20.4.1 निर्देशात्मक अभिव्यक्ति

इसमें सम्प्रेषण निर्देश द्वारा दिया जाता है। इससे व्यक्ति को स्वयं अपनी सहायता करने में मदद मिलती है। ***निर्देशन के अन्तर्गत व्यक्ति के लक्ष्य प्राप्ति की प्रक्रिया, विशिष्ट व्यवहार या विशिष्ट मूल्यों का निर्देश किया जाता है।*** यह आवश्यक नहीं कि सामने वाला व्यक्ति उसे उसी रूप में ही क्रियान्वित करे। वह स्वतंत्र है कि अपने ढंग से क्रियान्वित करे या बिल्कुल ही नहीं करे। हो सकता है उसे इसके दुष्परिणामों को भोगना भी पड़े।

निर्देशात्मक सम्प्रेषण की भाषा में आदेश, सुझाव, प्रस्ताव या सलाह का समावेश किया जाता है। इससे व्यक्ति के कार्यों का मूल्यांकन एवं परिष्कार किया जाता है। व्यक्ति को दायित्व–बोध कराने के साथ उसे जिम्मेदारी भी दी जा सकती है एवं कार्यविधि भी समझायी जा सकती है।

निर्देश आदेशात्मक भाषा में भी हो सकते हैं या निर्देश देने से पूर्व सामने वाले व्यक्ति से सलाह–मशविरा भी किया जा सकता है। निर्देशात्मक अभिव्यक्ति का उपयोग तब तक ही होना चाहिए जब तक कि सामने वाला व्यक्ति स्वयं चलने में सक्षम न हो। दूसरों की स्वतंत्रता का पूरा सम्मान करना चाहिए।

20.4.2 सूचनात्मक अभिव्यक्ति

सूचनाओं की अभिव्यक्ति से व्यक्ति के ज्ञान में वृद्धि होती है एवं वह स्वतंत्र चिंतन की क्षमता को अर्जित करने में सफल होता है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति में कुछ खतरे हैं जिनसे बचना चाहिए। जैसे अवांछित, अस्पष्ट, अनिश्चित व अयथार्थ सूचनाओं की अभिव्यक्ति। रूढ़िवादी धारणाओं की अभिव्यक्ति से बचना चाहिए। सूचनात्मक अभिव्यक्ति में सफलता के लिए पहले स्वयं अपने आपमें स्पष्ट हो जाएं कि–

1. आप क्या सूचना सम्प्रेषित करना चाहते हैं?
2. सही समय व स्थान का चुनाव करें।
3. निश्चित करें कि यह किस प्रकार की सूचना है–तर्क प्रधान, व्याख्या प्रधान, विश्लेषणात्मक या प्रतिपुष्टि (Feed back)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. किस मात्रा में एवं किस स्तर तक की सूचना सम्प्रेषित करनी है?
5. किस रूप में सूचना देनी है–आमने–सामने, लिखित या फोन आदि साधनों से।

20.4.3 चुनौतीपूर्ण अभिव्यक्ति

ऐसी अभिव्यक्ति व्यक्ति के नकारात्मक दृष्टिकोण और व्यवहार को बदलने के लिए किया जाता है परन्तु यह निश्चित कर लेना चाहिए कि यह सामने वाले व्यक्ति के हित के लिए कर रहे हैं या स्वयं के लिए। हम सत्य को उजागर करने जा रहे हैं या टालमटोल कर उसे खुश करना चाहते हैं। ***सत्य को मृदुता से कहने पर भी वह सामने वाले व्यक्ति को आघात पहुंचाने वाला होगा। इससे उसे असुविधा होगी। अतः उसको सहायता की भी आवश्यकता है।*** इस प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए कुछ निम्नलिखित सूत्र महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं–

1. इस प्रकार से कहें कि अपनी गलती के प्रति उसकी जागरूकता बढ़े।
2. प्रश्नों के माध्यम से बात को प्रकट करें।
3. अच्छाई को जागृत करने के लिए उसके सामने चुनौती के रूप में रखें।
4. दृढ़ता से बुराई के परिणामों को बताएं।

20.4.4 विरेचनात्मक अभिव्यक्ति

इस प्रकार की अभिव्यक्ति से व्यक्ति को तनाव–मुक्ति में सहायता मिलती है। वह अपने भाव एवं संवेगों को सही प्रकार से व्यक्त करने में सफल होता है। वक्ता स्वयं ऐसे उपायों को काम में ले जिससे दूसरों को भी प्रेरणा मिलेगी। वे भी आत्मविश्वास के साथ उन उपायों को काम ले सकेंगे।

1. दूसरों को तनाव–मुक्ति व संवेगों के परिष्कार के उपाय बताएं।
2. उपायों को काम में लेने हेतु प्रोत्साहित करें।
3. व्यक्ति को अपनी रुचि के अनुरूप कार्यों में लगने हेतु सहयोग करें।

20.4.5 प्रेरणात्मक अभिव्यक्ति

इस प्रकार की अभिव्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को स्वयं से परिचित करवाया जाता है। यह उसके आत्मविश्वास को बढ़ाता है। स्वयं के निर्माण की जिम्मेदारी लेना सिखाता है। दूसरे व्यक्ति को कार्य करने हेतु प्रेरणा देना न कि उसके लिए काम करना। उसकी क्षमताओं को अधिक से अधिक काम में लेना चाहिए।

1. कार्यों की प्रशंसा द्वारा प्रेरित करना।
2. कार्य के प्रति समझ को विकसित करना।
3. प्रश्न या जिज्ञासा द्वारा मूल कार्य के प्रति ध्यान केन्द्रित करना।
4. स्व–क्षमताओं को समझने के लिए सहायता देना।

20.4.6 सहयोगात्मक अभिव्यक्ति

इस प्रकार की अभिव्यक्ति में वक्ता को धैर्य से दूसरों को सुनना और समझना चाहिए। अपने निर्णयों को उन पर नहीं थोपना चाहिए।

1. व्यक्ति को प्रोत्साहित करें, प्रशंसा करें, मूल्यांकन करें, समर्थन करें।
2. उनके विचारों, भावों, मूल्यों एवं व्यवहारों का स्वागत करें।
3. ईमानदारी से अपने भावों को अभिव्यक्त करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. स्नेह एवं वात्सल्य दें।
5. अपनी विशेषता एवं कमजोरियों से अवगत कराएं।
6. उसके विकास के लिए प्रयत्नशील रहें।

निर्देशात्मक, सूचनात्मक और चूनौतीपूर्ण अभिव्यक्ति यह दर्शाती है कि प्रशिक्षक अधिकृत रूप में या एक विशेषज्ञ के रूप में बात प्रस्तुत कर रहा है। शेष तीन में ऐसा कोई आभास नहीं होता है। अच्छी अभिव्यक्ति के लिए सभी प्रकार की दक्षता अपेक्षित है। भिन्न–भिन्न स्थिति व प्रयोजन के अनुरूप अत्यन्त सावधानी से अपने विचारों को अभिव्यक्त करना चाहिए।

बोध प्रश्न :

1. सहयोगात्मक अभिव्यक्ति विषयक टिप्पणी लिखिये।
2. चुनौतिपूर्ण अभिव्यक्ति के समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

20.5.0 सार्वजनिक भाषण कला

जनता में अपनी बात रखने के अनेक रूप हो सकते हैं, जैसे–भाषण, व्याख्यान, वाद–विवाद आदि। प्रत्येक वक्तव्य की अपनी अलग–अलग तकनीक होती है किंतु कुछ आधारभूत तथ्य सबके लिए समान होते हैं। वक्तव्य का उपयोग अलग–अलग दृष्टि से किया जाता है। जैसे–मनोरंजन करना, अपने विचारों से परिचित कराना, अपने कार्यक्रम को क्रियान्वित करवाना।

20.5.1 वक्तव्य की तैयारी

सामान्यतः वक्तव्य का एक मुख्य प्रयोजन होता है और अनेक छोटे–छोटे प्रयोजन भी होते हैं। वक्तव्य पूर्व तैयारी के साथ भी किया जाता है एवं कभी–कभी तत्काल भी दिया जाता है। ***वही वक्तव्य अच्छा होता है जिसका प्रभाव दूसरे पर पड़ता है, दूसरों की रुचि को बनाये रखा जाता है एवं दूसरों की अपेक्षाओं पर भी ध्यान दिया जाता है।*** एक अच्छे वक्तव्य को तैयार करने में निम्न बिन्दु सहायक हो सकते हैं–

- ✡ श्रोता और स्थान के अनुरूप विषय का चयन करना।
- ✡ अपने वक्तव्य को एक प्रयोजन तक सीमित रखना जो अपने ज्ञान एवं अनुभव के उपयुक्त हो।
- ✡ विषय को पुष्ट करने के लिए तथ्यों की खोज करना।
- ✡ विषय की रूपरेखा तैयार करना जो अपने वक्तव्य का सारांश रूप में हो।
- ✡ संकलित सामग्री का प्रभावी रूप में संगठित करना।
- ✡ वक्तव्य को अंतिम रूप देना जो रुचिपूर्ण एवं विविधता लिए हो तथा केन्द्रीय तत्व की पुष्टि करने वाला हो।
- ✡ अंतिम अवस्था है–वक्तृत्व को प्रभावी ढंग से लोगों के सामने रखना जो श्रोता के लिए सहज बोधगम्य हो।

20.5.2 श्रोता की पहचान

सभी वक्तव्य में श्रोता को पहचानना अत्यन्त आवश्यक होता है। वे क्या चाहते हैं? क्या वे सूचना चाहते हैं या मनोरंजन चाहते हैं? वे क्या जानते हैं? वे क्या नया जानना चाहते हैं? श्रोता की अपनी मान्यता या धारणा क्या है? आदि बातों की जानकारी होने से वक्ता अपनी बात को श्रोता तक अच्छे ढंग से पहुंचा सकता है।

20.5.3 सामग्री का संगठन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रदत्त वक्तव्य श्रोता को सहज रूप से बोधगम्य हो। अतः सामग्री को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। ***सामान्यतया भाषण का प्रारम्भ विषय परिचय से किया जाता है। मध्य में मूल बिन्दु का स्पर्श एवं अन्त में सारांश की प्रस्तुति की जाती है।*** इसके अतिरिक्त सामग्री को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने के लिए और भी अनेक तरीके हो सकते हैं–

1. विषयानुसार,
2. ऐतिहासिक रूप से,
3. स्थान के अनुसार,
4. तर्क के अनुसार,
5. आक्रामक तेवर के साथ,
6. समाधान परक,
7. भावात्मक,
8. मानवीयकरण।

विषयानुसार–विषयानुसार सामग्री को व्यवस्थित करना वहां उपयोगी होता है जहां विभिन्न सूचनाओं को सम्प्रेषित करना होता है। ऐसे वक्तव्यों में प्रत्येक विषय को छूते हुए उसे मूल विषय से जोड़ दिया जाता है।

इतिहास/कालक्रम से–जहां ऐतिहासिक वक्तव्य देना होता है वहां घटनाओं को कालक्रम से क्रमिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रशिक्षण के काल में इस प्रकार के वक्तव्य की विशेष उपयोगिता होती है।

स्थान के अनुसार–संग्रहालयों में वक्तव्य स्थान के क्रम से दिये जाते हैं। भौगोलिक स्थिति के अनुरूप क्रमशः वक्तव्य को ढाला जाता है।

कार्यकारण के अनुरूप–जहां वक्तव्य को तर्कयुक्त ठोस प्रमाणों के साथ प्रस्तुत करने की आवश्यकता हो वहां प्रत्येक बिन्दु को ठोस प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इसमें तर्क के नियमों का पूरा उपयोग किया जाता है।

20.5.4 रोचकता

वह वक्तव्य अधिक याद रह पाता है और प्रभावी बनता है जिसमें विचारों को मानवीय पहलुओं के साथ प्रस्तुत किया जाता है। मानवीयकरण का तात्पर्य है अपने विचारों को दृष्टान्त और उदाहरणों द्वारा समझाना। घटनाओं द्वारा पुष्ट करना। अपने जीवन्त उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत करना। अपने विचारों को पुष्ट करने के और भी अनेक तरीके हो सकते हैं–

1. अनुसंधानपूर्वक प्रमाणों को प्रस्तुत करना।
2. तथ्य और आंकड़ों को प्रस्तुत करना।
3. चित्रों का उपयोग करनाा।
4. महापुरुषों के वाक्यों का समावेश करना।
5. विशेषज्ञों की टिप्पणियों को जोड़ना।
6. तुलना करना।
7. दृश्य–श्रव्य साधनों का उपयोग करना।

श्रोताओं का ध्यान खींचने के लिए विषय–परिचय की आवश्यकता होती है। इसके माध्यम से आने वाले विषय एवं उसकी पृष्ठभूमि से परिचित कराया जाता है। वक्ता इस कार्य को अनेक तरीकों से विवादास्पद मुद्दे उठाकर, श्रोताओं के लिए चुनौती प्रस्तुत कर, महापुरुषों के शक्तिशाली व सामयिक वाक्यों को प्रस्तुत कर या चुटकला कहकर श्रोताओं का ध्यान बहुत अच्छी तरह से खींच सकता है।

20.5.5 प्रस्तुति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लिखकर तैयार वक्तव्य को प्रस्तुत करने से पूरी बात तो कह दी जाती है किंतु वह बेजान और उबाऊ हो जाती है। वक्तव्य तो जीवन्त और विविध होना चाहिए। सामान्यतया श्रोता की एकाग्रता बहुत थोड़ी होती है। वक्तव्य के प्रारम्भ और अंतिम ही उन्हें याद रहने की संभावना होती है। अतः यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि ***वक्तव्य के प्रारम्भिक और अंतिम चरण में वक्तव्य का सार या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संदेश श्रोता तक पहुंचना चाहिए वही पुनरावर्तित होना चाहिए।***

वक्तव्य को गति देने के लिए वक्ता अपने पास नोट्स एवं वाक्यांश रख सकता है। उसे आवाज, लय और गति में प्रसंगानुसार उतार–चढ़ाव बनाना चाहिए जिससे श्रोता जागरूक रह सके। सामान्यतया व्यक्ति जो सुनता है उसका अधिकांश अंश वह भूल जाता है। अतः वर्तमान युग में दृश्य साधनों का अधिकतम उपयोग करना लाभदायक होता है। इससे याद रहने की संभावना बढ़ती है।

मुख्य बिन्दुओं पर बल देने के लिए विराम लेना, आवाज को धीमा करना और हाव–भाव व गति को कम करना उपयोगी होता है। यदि वक्ता वास्तव में अपने वक्तव्य को स्मरणीय बनाना चाहता है तो उसके मुख्य बिन्दुओं को (या पूर्ण रूप को) लिखित रूप में श्रोता तक पहुंचाना चाहिए।

अच्छे वक्तव्य के लिए यह आवश्यक है कि वक्ता अपने आप में स्पष्ट बने। स्वयं अपने आप को पूछें–मैं क्या कहना चाहता हूं ? मेरा मुख्य संदेश क्या है? कौन–से वाक्य मेरे संदेश को अच्छी तरह से पहुचाने वाले हैं? मैं क्या पाना चाहता हूं? मैं वक्तव्य क्यों दे रहा हूं ?

20.5.6 अच्छी अभिव्यक्ति के बिन्दु–संक्षेप में

1. स्वच्छ पोषाक में रहें, भाषण–मंच तक ठाठ से चलकर पहुंचें और सीधे खड़े हों। आपकी आंखों और भावों में आत्मविश्वास नजर आए।
2. आत्मीय, सद्भावपूर्ण मुस्कराहट से प्रारम्भ करें।
3. सभी व्यक्तियों से सीधी बात करें। उनके सिरों के ऊपर से, खिड़की के बाहर, माइक्रोफोन की तरफ या पूरे समय एक ही व्यक्ति की ओर न देखें।
4. इतनी ऊंची आवाज में बोलें की सब सुन सकें।
5. आवाज में उतार–चढ़ाव और समय–समय पर विविधता लाएं।
6. अपने भाषण को रटें नहीं। हो सकता है आप भूल जायें, फिर आप कहां होंगे? रूपरेखा को पूरी तरह समझ लें और उससे अभ्यस्त हो जाएं। यदि विचार का केन्द्रीय शब्द छूट जाए तो भी आपके अलावा इस गलती को कोई नहीं पकड़ पाएगा।
7. श्रोताओं को भाषण पढ़कर कभी न सुनायें। कभी–कभार कोई अंश या उद्धरण पढ़ना पड़ सकता है पर पूरा भाषण कभी नहीं।
8. वार्तालाप में विचार एकत्र करें, शब्द नहीं।
9. मंच पर जाने के भय से ग्रसित न हों। यह सामान्य बात है। इसे कभी न कभी सभी महसूस करते हैं। दिये गये परामर्श का पालन करें तो वह आत्मविश्वास जो यह जानने से मिलता है कि आप कुछ महत्त्वपूर्ण बात कहने जा रहे हैं, आप में संचारित होगा। अपने विषय को समझें और ऐसी बात कहें जो श्रोता सुनना पसन्द करें। याद रखें मंच का भय देखने से ज्यादा अनुभव करने में बुरा होता है।
10. तत्पर नजर आएं, खुश रहें। आत्मविश्वास रखें, उत्साह से बोलें।

20.5.7 अच्छी अभिव्यक्ति : निषिद्ध बिन्दु

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. बिन्दुओं को दोहराएं नहीं।
2. अनावश्यक तथ्यों का प्रयोग न करें।
3. अधिक भावुकता नहीं दिखाएं।
4. बात को बढ़ा–चढ़ा कर न कहें।
5. भाषा अनुचित या व्यंगात्मक न हों।
6. मंच पर जाने से न डरें।
7. विषय से दूर न जाएं।
8. श्रोताओं का समय खराब न करें।
9. अनुचित हल–चल न करें।
10. आवाज को अप्रिय एवं अस्पष्ट न बनाएं।
11. सुस्त या मंद न हों।
12. सन्देह न करें।

बोध प्रश्न :

1. कौनसा वक्तव्य अच्छा होता है ?
2. अच्छी अभिव्यक्ति के निषिद्ध बिन्दु क्या हैं ?

20.6.0 शारीरिक स्थिति और हाव–भाव

जब वक्ता की कथनी और करनी में अन्तर होता है तब श्रोता वक्ता की शारीरिक अभिव्यक्ति व हाव–भाव पर अधिक निर्भर रहता है।

उस समय शारीरिक अभिव्यक्ति निर्णायक सिद्ध होती है। वह वक्ता के कथन और हाव–भाव में विसंगति का स्पष्ट संकेत होती है। व्यक्ति की मुद्रा, उसका चेहरा, हाव–भाव आदि निरन्तर संदेश प्रसारित करते रहते हैं। अतः यह कहावत बन गई है कि व्यक्ति कोई बात छुपाना चाहता है तो भी उसका चेहरा चुगली खा जाता है। ***व्यक्ति के हाव–भाव उसकी कथनी के साथ सामंजस्य एवं संगति रखते हैं तो उसकी कथनी में शक्ति और विश्वसनीयता आ जाती है*** अन्यथा व्यक्ति की बात को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। अतः अच्छे वक्ता अपने वक्तव्य के साथ–साथ शारीरिक हाव–भाव और मुख–मुद्रा पर भी सलक्ष्य ध्यान देकर अपनी वक्तृत्व कला को सशक्त बनाने का प्रयत्न करते हैं।

कुछ विशेष बिन्दुओं पर ध्यान देकर वक्ता अपने कथन और हाव–भाव की विसंगति से बच सकता है। अतः अभिव्यक्ति के समय शरीर व आकृति पर निम्नानुसार ध्यान दें–

मुद्रा–विश्राम की आरामदायक स्थिति में रखें।
हाथ–प्रभावी संकेत का माध्यम बनाएं।
मुंह–हमेशा प्रफुल्लित रहे।
आंख–श्रोताओं से मिलाप बनाए रखें।
वस्त्र–सामान्य वस्त्र पहनें।
स्थिति–खड़े होने में आगे की ओर झुकाव रखें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

20.6.1 मुद्रा (भाव–भंगिमा)

दोनों पैरों के बीच कुछ इंचों का अन्तर रखते हुए पूरी तरह संतुलित होकर खड़े हों और एक पैर दूसरे से थोड़ा–सा आगे रहे। जब मंच से बोलने को पुकारा जाये, संतुलित चाल से मंच तक जायें, फिर स्वाभाविक ढंग से खड़े हों, श्रोता जब तक करतल ध्वनि (तालियां बजाना) बन्द न कर दें तब तक रुकें। अपने श्रोता वर्ग को निहार लें और श्रोताओं को भी आपको निहार लेने का पूरा अवसर दें। भाषण के दौरान पैरों की थोड़ी हरकत तो की जा सकती है पर अधिक हरकत होने पर श्रोताओं का ध्यान भंग होता है।

20.6.2 अभिवादन

प्रत्येक वक्ता को सही अभिवादन के साथ भाषण प्रारम्भ करना चाहिये। साधारणतया यह होगा– ''अध्यक्ष महोदय, भाइयों और बहनों।'' इस अभिवादन में केवल पांच शब्द हैं परन्तु भाषण देने वाले व्यक्ति की अभिव्यक्ति और तरीके से श्रोताओं पर शब्दातीत (शब्दों के अर्थ के परे) असर पड़ता है। स्पष्ट रूप से कहा गया–अध्यक्ष महोदय (विराम 1, 2, 3), भाइयों और बहनों (विराम 1, 2, 3) से भाषण प्रभावी प्रारम्भ होता है।

जब कोई सम्मानित अतिथि उपस्थित हो, उसे अभिवादन में नाम सहित सम्मिलित करना चाहिये (यदि वह व्यक्तिगत हैसियत से ही वहां उपस्थित हो), उसका नाम और पद (यदि वह सरकार या किसी संस्थान के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हो)। ऐसी स्थिति में अभिवादन होगा–अध्यक्ष महोदय, मि. एक्स (यदि निजी हैसियत से हो), भाइयों और बहनों या फिर अध्यक्ष महोदय मि. व्हाई (यदि आधिकारिक हैसियत से हो), भाइयों और बहनों।

20.6.3 हाथ

भुजाओं और हाथों की स्वाभाविक स्थिति बाजू में लटके रहने की ही होगी। हाथों को जेबों से बाहर रखें। यदि हाथ बाजू में रहेंगे तो उनका प्रयोग आसान होगा। ***सिक्कों, चाबियों आदि से न खेलें, इससे आपके भाषण के प्रति श्रोताओं का ध्यान भंग होता है।*** दूसरे ध्यान बँटाने वाले हाव–भाव – हाथ मारना, सिर खुजलाना, चश्मा उतारना व फिर पहनना या नोट्स को उलटना–पलटना आदि से बचें। हाव–भाव दो प्रकार के होते हैं–

1. स्पष्टीकरण के लिए –आकार, संख्या, स्थान या भाषण में आने वाले अन्य भौतिक आयाम हाव–भाव द्वारा व्यक्त होते हैं। उदाहरण–एक ओर पहाड़ था और नीचे थी खूबसूरत झील। मैंने पहले कभी नहीं देखी थी।

2. बात पर जोर देने के लिए –ये भाव शब्दों के प्रति आपकी भावना व्यक्त करेंगे। आपका मूड और आपकी भावना मुट्ठी बांधने और खोलने से व्यक्त हो सकती है।

20.6.4 दृष्टि सम्पर्क

श्रोताओं को देखें और उन्हें ही अपनी बात कहें, उनकी ओर नहीं। अपनी नजर किसी के जूतों या छत पर न टिकायें, खिड़की के बाहर भी न निहारें, किसी एक व्यक्ति को न घूरें, सभी को भाषण के दौरान साथ लेकर चलें। कभी–कभी मुस्कराना न भूलें ताकि आप इतने दुःखी (बीमार) न लगें जितने आप स्वयं को भले अनुभव कर रहे हैं।

20.6.5 पोशाक

ध्यान बंटाने वाले कपड़े न पहनें। यदि आप साफ–सुथरे कपड़े पहनें और बाल संवारे हुए हैं तो आपको संतुलन और आत्मविश्वास बनाये रखने में सहायता मिलेगी। पेन या पेन्सिल को सीने पर लगी जेब से बाहर न निकाले रखें। लम्बे नोट्स या कागज अपने साथ न रखें, उन्हें जेबों में भरे हुए भी न दिखने दें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

20.6.8 आवाज पर नियंत्रण

सार्वजनिक वक्ता के नाते आपकी आवाज आपके उपकरणों में से सर्वाधिक प्रभावी औजार है। यदि आप इसे प्रभावी ढंग से उपयोग में न लायें तो इसका परिणाम हानिकारक भी हो सकता है। अपनी आवाज को इस प्रकार नियंत्रित करें कि सबसे पीछे की सीटों पर बैठे लोग भी आपको बिना कठिनाई सुन सकें। भाषण के दौरान आवाज में विविधता (उतार–चढ़ाव) भी लायें। यह उतार–चढ़ाव महत्त्वपूर्ण बात पर जोर देने व अनावश्यक को दबाने के लिए हैं।

20.6.7 बल देने का महत्त्व

बल देकर आप अपने भाषण को प्रभावी बना सकते हैं और आपको अपने मुख्य बिन्दु श्रोताओं तक पहुंचाने में सहायता मिल सकती है। निम्नलिखित वाक्यों में रेखांकित शब्दों पर जोर देकर उच्चारण करें और अन्तर नोट करें–

1. **हमें** तो यह अवश्य करना चाहिये–दूसरे नहीं करेंगे।
2. हमें तो यह **अवश्य** करना चाहिये–यह आवश्यक है।
3. हमें तो यह अवश्य **करना** चाहिये–दूसरे चाहे न करें।
4. हमें तो **यह** अवश्य करना चाहिये–पर दूसरा कुछ नहीं।

निम्नलिखित गद्य का अभ्यास करें और देखें कि विरामों का प्रयोग किस प्रकार किया गया है और किस प्रकार श्रोताओं पर पड़ने वाले प्रभावों में वृद्धि होती है।

''वह मर गयी। कोई भी नींद इतनी सुन्दर और शांत नहीं, पीड़ा के लेशमात्र से मुक्त, देखने में सुकोमल। हां, वह मर गयी।''

20.6.8 भाषण की तैयारी के महत्त्वपूर्ण मुद्दे

भाषण की तैयारी करते समय निम्नांकित सूत्रों पर विशेष ध्यान दें–

1. विषय के अनुसार विचारों को पूर्ण रूप से लिखें।
2. उन्हें क्रमानुसार करें।
3. भाषण को रटें नहीं।
4. पूर्वाभ्यास अवश्य करें, उच्च स्वर में बोलें।
5. 3X5 इंच के कार्ड पर बिन्दुओं को लिखकर हाथ में रख सकते हैं।
6. श्रोता समुदाय पर नजर जमाए रखें।
7. भाषण का प्रारम्भ व अन्त सौम्यता व विशिष्टता से करें।
8. दर्पण के सामने पूर्वाभ्यास करने से आत्म–विश्वास बढ़ता है।

बोध प्रश्न :

1. भाषण की तैयारी करते समय महत्त्वपूर्ण मुद्दे क्या हैं ?
2. व्यक्ति के हाव–भावों का उसकी कथनी से क्या संबंध है ?

20.7.0 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- अभिव्यक्ति कौशल के विकास का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है – **अनेकान्त।** इस सूत्र के अनुसार व्यक्ति को अभिव्यक्ति करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि सामने वाला कौन है, स्थान, समय और अपने ***वक्तव्य की उपयोगिता*** को ध्यान में रखते हुए बोलना चाहिए। इससे वह सही–सही अपने विचारों को दूसरे (श्रोता) के सामने प्रस्तुत कर सकेगा।

- वक्ता व्यक्ति आत्म विश्वास से भरा हुआ होना चाहिए। जब वह बोले तो ऐसा नहीं लगना चाहिए कि वह संवाद कर रहा है। पहले वह अच्छा श्रोता बने। दूसरों की शिकायतों को सुनने के बाद धैर्यपूर्वक उनका जवाब आराम से सोच कर दे। दूसरों की समस्या का समाधान करते हुए अपनी बात की महत्ता को बनाये रखे। यदि वह ऐसा नहीं कर पाया तो कमजोर अभिव्यक्ति दूसरों को अपने ढंग से अर्थ निकालने व समझने के लिए मजबूर करेगी। इससे संवादहीनता व आपसी समझ की दूरी बढ़ती चली जाएगी।

- अभिव्यक्ति के कुछ महत्त्पूर्ण कारक तत्त्व हैं जैसे –1. सौहार्दपूर्ण संबंध, 2. आत्मविश्वास, 3. स्पष्टता, 4. ग्रहण क्षमता, 5. संवेग नियंत्रण, 6. सीखने की इच्छा, 7. प्रामाणिकता। यदि आपकी अभिव्यक्ति में ये सब गुण हैं तो आप सामने वाले को एक बहुत अच्छी अभिव्यक्ति दे पाएंगे। वह सामने वाले को अधिक समय तक याद रहेगी और वह आपसे अधिक संतुष्ट होगा।

- निर्देशात्मक अभिव्यक्ति, सूचनात्मक अभिव्यक्ति, चुनौतिपूर्ण अभिव्यक्ति, विरेचनात्मक अभिव्यक्ति, प्रेरणात्मक अभिव्यक्ति एवं सहयोगात्मक अभिव्यक्ति – ये कुछ अभिव्यक्ति की दक्षताएं हैं। इनके होने से व्यक्ति आसानी से अपने उद्देश्य की पूर्ति कर पाता है और जीवन में सफलता के सेतु बनाते चला जाता है।

- समूह में या जनता में सफलतापूर्वक अपनी बात रखने के लिए वक्तव्य की तैयारी, श्रोताओं की पहचान, सामग्री को सुसंगठित करना, रोचकता को बनाए रखना व अपनी महत्त्वपूर्ण या सारभूत बात को प्रभावी बनाना आदि बातों पर ध्यान देना जरूरी है।

- व्यक्ति के हाव–भाव उसके कथनानुसार होने चाहिए। भाषण प्रस्तुत करते समय व्यक्ति को अपनी मुद्रा, अभिवादन, हाथ, दृष्टि, पोशाक, आवाज व शब्दों पर बल आदि बिन्दुओं पर भी ध्यान देना चाहिए। इससे भाषण प्रभावी बनता है।

20.8.0 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. 'किं च नए के यं पुरिसे' पंक्ति का क्या अर्थ है ?
2. अभिव्यक्ति को प्रभावित करने वाले कारक क्या हैं ?
3. अभिव्यक्ति की किन्हीं तीन दक्षताओं के नाम लिखें।
4. प्रेरणात्मक अभिव्यक्ति के कोई दो उपाय बताइये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अच्छी अभिव्यक्ति के लक्षण क्या हैं? संक्षिप्त में लिखें।
2. सौहार्दपूर्ण संबंधों के कितने सूत्र हैं, वे क्या हैं ? संक्षिप्त में बताएं।

निबंधात्मक प्रश्न

1. अभिव्यक्ति कौशल का मनुष्य जीवन में क्या महत्त्व है? बताते हुए अभिव्यक्ति की दक्षताओं का वर्णन करें।
2. सार्वजनिक भाषण कला के महत्त्व को रेखांकित करते हुए अच्छी अभिव्यक्ति के बिन्दु संक्षेप में लिखें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य महाप्रज्ञ– नया मानवः नया विश्व (तीसरा संस्करण, 1996) आदर्श साहित्य संघ, चुरू
2. आचार्य महाप्रज्ञ, प्रेक्षाध्यान : सिद्धान्त और प्रयोग, जैन विश्व भारती, लाडनूँ
3. आचार्य महाप्रज्ञ, मैं कुछ होना चाहता हूं ,जैन विश्व भारती, लाडनूँ
4. आचार्य महाप्रज्ञ, तुम स्वस्थ रह सकते हो ,जैन विश्व भारती, लाडनूँ
5. डेल कारनेजी, लोक व्यवहार, तारा पोरवाल सन्स एण्ड कम्पनी, बम्बई
6. एम.एल. दशोरा, संगठन : सिद्धान्त एवं व्यवहार (1994), हिमांशु पब्लिकेशन, उदयपुर
7. मुनि किशनलाल, प्रेक्षाध्यान : यौगिक क्रियाएं, जैन विश्व भारती, लाडनूँ
8. मुनि किशनलाल, नशामुक्ति और प्रेक्षाध्यान, जैन विश्व भारती, लाडनूं
9. मुनि प्रशान्तकुमार, सफलता का सूत्र : स्वप्रबन्धन, प्रकाशक– आदर्श साहित्य संघ, दिल्ली
10. मुनि धर्मेश कुमार, प्रेक्षा संदर्शिका, जैन विश्व भारती, लाडनूँ
11. मुनि धर्मेश कुमार, प्रेक्षाध्यान : व्यक्तित्व विकास, जैन विश्व भारती, लाडनूँ, 2008 तृतीय संस्करण
12. डॉ0 एस.एन.शर्मा, हरप्रसाद भार्गव, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञानए 4/230 कचहरी घाट, आगरा
13. शिव खेड़ा– (प्रथम संस्करण 2000), जीत आपकी, फुल सर्कल, दिल्ली–32
14. राम बजाज, ऊँची उड़ान – एक कामयाबी, RNB Merchantile Pvt. Ltd., AE 17, Second Floor, Tagore Garden, New Delhi – 27 (India) +91-11-25166761
15. प्रमोद बत्रा, विजय बत्रा, प्रबन्धन विचार सागर, Think inc F-8, Nizamuddin West, New Delhi – 13
16. प्रमोद बत्रा, जो जीता वही सिकन्दर, फुलसर्कल पब्लिशिंग, जे.–40 जो बाग लेन, नई दिल्ली 110003
17. डेविज जे. श्वार्टज़, बड़ी सोच का बड़ा जादू, Manjul Publishing House Pvt. Ltd. 10, Nishat Colony, 74 Bunglows, Bhopal – 462003, First Inpression, October 2002
18. मुनिश्री धर्मेश कुमार, सफलता की राह, जैन विश्व भारती, लाडनूँ
19. डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव, व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1999
20. अरुण कुमार सिंह, आशीष कुमार सिंह, व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, 2004 तृतीय संस्करण
21. डॉ. सीताराम जायसवाल, व्यक्तित्व सिद्धांत, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1981 प्रथम संस्करण
22. डॉ. प्रीति वर्मा, डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, 2003 तृतीय संस्करण
23. श्री अरुण झवेरी तथा श्रीमती मयूरी झवेरी, ध्यान चिकित्सा पद्धति, अर्हम् सेन्टर, मुम्बई 19, 2008 प्रथम संस्करण
24. Anthony Robbins, (1996), Unlimited Power, Simon & Schuster Ltd. London.
25. Arun Zaveri & Mayur, Therapeutic Thinking.
26. B.P. Gaur, Personality and Transcedental Meditation, A Jainsons Publication, East of Kailash, New Delhi
27. Bajrang Jain & Kavita Saravgi, Develop thyself, B. Jain Pub. (pvt) Ltd.
28. David S Stephen (3rd Ed.) Personal/Human Resource Management, Prentice Hall of India.
29. Jack Black (1994), Mind store, Thorsons An imprint of Hosper Collins Publishers.
30. John Mulligaun, Personal Management Hand Book (1988) Human Potential Resource Group University of Surrey.
31. Zibardo– Psychology and Life, Harper and Collins.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun